इस पौराणिक उपन्यास मे 'चन्द्र राजा का रास' के आधार पर उपन्यास शैली मे 'चन्द्र चरित्र' का प्रस्तुतीकरण हुआ है। मनीषी प्रवर श्री मधुकर मुनिजी महाराज का आलेखन तथा सरस साहित्य लेखक-सम्पादक श्री श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' का सम्पादन पाठको के लिए चिर परिचित है। हमे विश्वास है कि पूर्व प्रकाशनो की भांति इसे भी पाठक उत्साह के साथ अपनायेंगे।

—अमरचन्द मोदी
मन्त्री
मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन
ब्यावर



द्वितीय संस्करण

'पिजरे का पछी' का यह द्वितीय सस्करण पाठको की सेवा मे प्रस्तुत है। प्रथम सस्करण इतना शीघ्र समाप्त हुआ और सतत उनकी मांग आती रही। यही इसकी लोकप्रियता का स्पष्ट प्रमाण है। इस सस्करण मे काफी सशोधन किया है तथा चन्द्र राजा के पूर्वभव की घटना का परिवर्धन भी किया है।

आशा है पाठक इसे पूर्ण चाव से पढ़ेंगे।

सम्पादकीय

'पिंजरे का पछी' एक पौराणिक उपाख्यान है, जिसे आज की भापा मे कुतूहल एव प्रेम-प्रधान उपन्यास कहा जा सकता हैं। आज के उपन्यास मे प्रेम सिर्फ मानसिक उत्तेजना और प्रणय गन्थि की क्षणिक परितृप्ति के लिए ही होता है, वहां प्राचीन उपाख्यानो की प्रणयकथा मनुष्य की काम ग्रन्थि के परिष्कार और ऊर्ध्वमुखी विकास के लिए रची जाती थी। कुतूहल सिर्फ मनोरजन के लिए या पाठक को कुछ घण्टो तक उलझाये रखने के लिए नही होता था किन्तु उस कुतूहल के माध्यम से भी एक शाश्वत तथ्य का दर्शन व अनुभव कराने का ध्येय रहता था। आज का उपन्यास पाठक को दिशाहीन या मँझधार मे छोड देता है, जवकि ये प्राचीन उपाख्यान कुतूहलो की लम्बी यात्रा के वाद एक मजिल पर पहुँचा देते हैं, एक दिशा देते है। उनकी परिणति जीवन की अन्तिम सार्थकता पर निर्भर है।

'चन्द्र राजा' जैन पुराण-गाथाओ का रसनायक है, उसका जीवन घटनाबहुल, उतार-चढाव से परिपूर्ण और विचित्र आश्चर्यवर्धक मन को खीचे रखने वाले दृश्यो से भरापूरा है। प्रारब्ध की विचित्रलीला, कर्म-विडम्बना और पुरुपार्थ की विजय यात्रा का कुतूहल पूर्ण अकन इस कथानक की विशेपता है। उसके जीवन मे उदारता, अभय,' परोपकार सकटो से जूझने की वृत्ति, परिस्थिति मे स्वय का सतुलन बनाये रखने की साहसिकता,

चतुरता और अवसर पर अपने आपको मोडने की क्षमता आदि अनेक ऐसे गुण हैं, जो किसी एक ही व्यक्तित्व मे दुर्लभ कहे जा सकते हैं। इसी के साथ ही वह एक कुशल शासक, आदर्श प्रेमी और आदर्श पति की भूमिका भी निवाहता है। चन्द्र का चरित्र एक बहुरगी, बहुआयामी चरित्र है, जिसमे आदि से अन्त तक जिज्ञासा, कुतूहल और नव-नव अर्जन की वृत्ति जगती रहती है। इसी के साथ चन्द्र की सौतेली मां वीरमती, पत्नी गुणावली और रात को व्याह कर सुवह छोडी जाने वाली पत्नी प्रेमला का चरित्र भी अनेक प्रकार के आश्चर्यों के वीच मानव स्वभाव की विचित्र ग्रन्थियो का अच्छा विश्लेषण करते हैं। हिंसक मन्त्री की कुटिल चालो का दृश्य तो आज की कूटनीति को भी फीका कर देता है। जैन साहित्य के प्रेमाख्यानो में 'चन्द्र चरित्र' वहुत ही प्रसिद्ध व लोकप्रिय उपाख्यान है।

इसका घटनाचक्र वीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी के युग से जुडा हुआ है अर्थात् लगभग राम युग के निकट जाता है। किन्तु आश्चर्य है, इतना प्राचीन घटनाचक्र भी वर्तमान जीवन की समस्याओ के सन्दर्भ मे काफी निकट और सम सामयिक सिद्ध होता है।

'चन्द्र चरित्र' पर अनेक विद्वान आचार्यो ने अपनी कलम चलाई है। अठारहवी शताब्दी के प्रसिद्ध कवि विद्वान श्रीमोहन विजयजी के युग मे भी प्राचीन 'चन्द्र चरित्र' की कोई कृति विद्यमान थी, जिसकी सरसता एव रोचकता की उस युग मे अच्छी धाक थी। जब उन्होंने किसी विद्वान मुनि से उस कृति की माँग की तो समय पर उन्हे प्राप्त नही हुई। वदले मे नई रचना करने की चुनौती मिली तो उसी से प्रेरित होकर कविवर

ने 'चन्द्र रास' नामक नये अद्‌भुत और श्रेष्ठ काव्य की रचना की, जो उस समय की गुजराती भाषा का श्रेष्ठ रास काव्य सिद्ध हुआ। इसकी रचना का समय वि० स० १७८३ है। मोहन विजय जी के इसी चन्द्रचरित्र रास के आधार पर बाद मे सस्कृत मे 'चन्द्रराज चरित्र' नाम का ग्रन्थ गुणरत्न-सूरि ने लिखा। बीसवी सदी मे विजयभूपेन्द्र सूरि ने भी २८ अध्यायो मे सस्कृत गद्य मे 'चन्द्र राज चरित्र' की रचना की। बाद मे राजस्थानी, हिन्दी मे भी इसके कई सस्करण प्रकाशित हुए और आज भी चन्द्र चरित्र के प्राचीन श्रोता एव पाठक उसकी सरसता का बखान करते नही अघाते।

मधुर व्याख्यानी, कवि एव लेखक श्री मधुकर मुनिजी म० ने वर्तमान मे आधुनिक भाव-भाषा शैली के परिवेष मे इस 'चन्द्र रास' को 'पिजरे का पछी' शीर्षक से लिखकर इसे प्रस्तुत किया है। मुनिश्री से जनहितार्थ इसके प्रकाशन की मांग की गई तो उन्होने मुझे इसका सपादन करने का आदेश दिया।

आशा है, पाठको को मेरे इस प्रयत्न से सन्तोष होगा।

१२-७-७६ —श्रीचन्द सुराना 'सरस'



पिंजरे का पंछी

: १ :

आभानरेश महाराज वीरसेन अपनी राजसभा मे विराजमान है। उनके रत्नजटित सिंहासन का पृष्ठभाग नृत्य करते हुए मयूर के पखो की आकृति का है, जो उत्तराभिमुख है। नरश्रेष्ठ वीरसेन की पूर्वाभिमुख पक्ति के आसनो पर शासन-वर्ग के और दायी ओर पश्चिमाभिमुख पक्ति के आसनो पर व्यवस्था-वर्ग के प्रधानाधिकारी बैठे हुए है। महामात्य का आसन राजा के समीप दाहिने हाथ पर है और महामात्य की बायी ओर उन्ही के बराबर—उतना ही ऊँचा, गृहामात्य का आसन है। भवन के दक्षिणी द्वार के समीप अभ्यागत-अतिथियो के आसन है, जिनमे अधिकाश रिक्त है। राजा के दाहिने हाथ, कुछ दूरी पर उतने ही ऊँचे भूमिमच पर गुरुजनो के आसन हैं और उतनी ही दूरी पर बाये हाथ, किन्तु कुछ नीचे भूमिमच पर न्यायार्थियो के आसन हैं। राजसभा के दायें बायें दर्शको और प्रजावर्ग के लिए दीर्घाएँ (गैलरी) बनी हैं, जो इस समय खाली हैं। किसी अभियोग का न्याय-निर्णय होते समय ये खचाखच भर जाती है। राजसभा के सभी द्वारो पर द्वारपाल और दौवारक यथास्थान बैठे है। द्वारपाल द्वार के बाहरी भाग मे है और दौवारक भीतर की ओर। नरपाल वीरसेन की राजसभा मे पाँच सौ पण्डितो के अलग आसन हैं। इस समय वे भी रिक्त हैं।

× × ×

यह विश्व सिनेस्क्रीन की तरह है, जहाँ विविध प्रकार के दृश्य आते-जाते रहते हैं। रत्नगर्भा वसुन्धरा पर अनेक नररत्नो ने जन्म लिया और पूर्वकृत कर्मो मे प्रेरित-प्रभावित कर्मलीला करके इसी रत्नगर्भा वसुन्धरा मे समा गये। हमे कुछ बताने-कहने के लिए आज उनकी कथा-कहानी ही शेष रह गयी है।

आज मे हजारो वर्ष पहले इस भरतक्षेत्र मे आभापुरी नामक एक सुरम्य-शोभा सम्पन्न नगरी थी। भीतर-बाहर मे वह आभामय थी। उसमे चौरासी चौराहे थे और राजमार्ग स्वच्छ तथा साफ-सुथरे थे। मार्गो के दोनो ओर थोडी-थोडी दूरी पर छायादार वृक्ष थे—कही छाया और कही धूप। जैसे जीवन मे सुख-दुख—दोनो ही आते हैं, इसी तरह आभापुरी के राजमार्गों पर चलते समय—जेठ की दोपहरी मे कभी शीतल छाया मिलती थी और कभी चिलचिलाती धूप। कोई पथिक धूप मे चलते हुए सामने दिखायी देने वाली छाया को देखकर कहता था—"अब तो दस कदम ही धूप मे चलना पडेगा। थोडी ही देर बाद छायापथ आ रहा है" और कोई पथिक छाया मे चलते हुए सोचता था—"ओफ्! कितनी कडी धूप थी—शरीर झुलसा जा रहा था। अभी धूप मे चला और सामने फिर वही धूप का पथ आ रहा है।"

जीवन धूप-छाँव की तरह है। एक को आने वाली छाया दीखती है और दूसरे को सामने वाली धूप। वस्तुस्थिति एक ही है। दृष्टिकोण का अन्तर है।

आभापुरी के भवन ऊँचे-ऊँचे बने हैं। कुछ छोटे घर भी हैं, पर हैं वे भी भव्य। नगर के बाहर खेतो के आस-पास फूंस के छाजन के घर भी हैं। वे इसलिए हैं कि दोपहर तक खेत मे

काम करने के वाद किसान लोग दोपहरी मे कुछ देर विश्राम प्राप्त करते हैं। सभी लोक सुखी व सम्पन्न है। सभी बरावर के धनी नही है, पर सन्तोष धन प्राय सभी को वरावर बना रहा है। ज्यादातर श्रेष्ठि वर्ग—व्यापारी लोग रहते हैं। यहाँ का राजा साधारण रूप से धर्मनिष्ठ है और प्रजा भी धर्म-कर्म मे रुचि लेती है—यथाराजा तथाप्रजा। हिन्दू-धर्म और निर्ग्रन्थ-श्रमण-धर्म के मतानुयायी यहाँ रहते हैं। नगरी से कुछ दूर गगा नदी वहती है। हिन्दू लोग प्रात स्नान-ध्यान करने भागीरथी तट पर जाते है और निर्ग्रन्थ धर्मावलम्वी भी प्रात कृत्य से निवृत्त होकर सामायिक, प्रतिक्रमण तथा नवकार मन्त्र का जाप करते है। लोगो मे दान देने की प्रवृत्ति है। राजा की ओर से भी दानशालाएँ खुली हुई है। नगर के वाहर हरितश्री की शोभा भी दर्शनीय है। छोटे-वडे अनेक सफल वृक्षोवाले उद्यान हैं। राजोद्यान की छटा विशेष दर्शनीय है। राजोद्यान मे ऐसे वहुत पुराने वृक्ष भी है, जिन्होने वहुत से उलट-फेर देखे हैं। धरती पर फैली हरी दूव वडी अच्छी लगती है। जगह-जगह स्फटिक सीढियो वाले जल-विहार कुण्ड, तडाग और वापियाँ वनी हुई है। छोटे-छोटे लता-मण्डप भी हैं और इतने वडे भी कि जनसमूह उनके नीचे वैठ सकता है। राजोद्यान मे एक रथमार्ग ऐसा है, जो कुछ दूर तक सीधा जाकर आगे धनुषाकार हो जाता है। राजा वीरसेन और राजपरिवार का रथ इस मार्ग से उद्यान मे प्रविष्ट होता है और प्राय एक आम्र वृक्ष के नीचे रुकता है। यह आम्र वृक्ष वहुत पुराना है। इसके तने मे—मूल भाग से लगभग चार हाथ ऊँचा एक कोटर (खोखला भाग) भी है, जिसमे एक आदमी वडे आराम से वैठ सकता है।

पैरो की ओर देखती है और पुरुष नाक की सीध मे राजा के आने का उसे कोई भान नही हुआ। राजा ने वहाँ का दृश्य देखा तो सब कुछ उसकी समझ मे आ गया। लतामण्डप के नीचे एक कुण्ड मे अग्नि प्रज्ज्वलित थी। अग्नि-कुण्ड से सटी हुई श्वेत प्रस्तर से मढी चौकोर वधस्थली थी, जो चारो ओर ऊँची मेड से घिरी हुई थी। अग्नि-कुण्ड और वधस्थली को घेरे हुए चारो कोनो पर चार कदली स्तम्भ खडे थे। वधस्थली के पास ही एक बलिकन्या बैठी रो रही है। उसके सिर पर लाल कपडा बँधा है तथा मन्त्राभिषिक्त रोली-चावल उस अरुण चीर पर छिटके हुए है। पास मे ही खड्ग रखा है। एक योगी आँखे बन्द किये, ध्यान-मग्न है। बलिकन्या खड्ग की ओर देख-देख कर रो रही है।

राजा वीरसेन ने हस्त-लाघव से कुण्ड के समीप रखा खड्ग उठा लिया। राजा को अपने समीप देखकर बलिकन्या ने आशा भरी वाणी मे कहा—

"हे आभानरेश! मेरी रक्षा कीजिए। मुझे इस नराधम योगी से बचाइए।"

वीरसेन ने बलिकन्या की बात कानो से सुनी, पर उसका ध्यान कही और था। योगी भी मौन! मन्त्र पूरा करने से पहले कुछ कहना नही चाहता था। उसकी आँखें बन्द थी। बलिकन्या के बोलने पर उसने समझा, वैसे ही बडबडा रही है राजा वीरसेन विचार कर रहा था—

'कैसी विडम्बना है कि हम सब आँखे बन्द करके लकीर के फकीर बने है। हमारे कुछ समर्थ पूर्वजो ने अपना शरीर काट-काटकर उसका रक्त अपने बलिभोक्ता देवताओ को भेंट किया

था। नरबलि या पशुबलि के रूप मे यह पर-बलि आत्मबलि का स्थानापन्न प्रतीक है। अपने शरीर की बलि देने मे स्वय को असमर्थ और अनिच्छुक पाकर ही हम पर-बलि देते है। रक्तदान मे जो पीडा है, उससे भयभीत होकर हम अपने रक्त के स्थान पर दूसरो का रक्त बलिदेव को भेंट करते है। हम सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। योगी का यह कृत्य देखकर मुझे भी लग रहा है कि मेरा या मेरी ही तरह और राजाओ का आखेट-मोद मनाना कैसा क्रूर और निन्दनीय कर्म है? दूसरो को पीडा देकर सुख मनाना कैसी मानवता है?'

अब अधिक सोचने का समय नही था। योगी ने आँखें खोली और बाधास्वरूप राजा वीरसेन को खडे पाया तो कुछ खीझा और सकपकाया भी। राजा ने उसे ललकारा—

"अरे नीच, पाखण्डी! मैं अभी तेरी बलि देकर तेरी साधना पूरी करता हूँ। ठहर, अब तेरा अन्त समय आ गया।"

भागने के सिवाय योगी के पास कोई चारा नही था। वह एकदम भाग खडा हुआ। राजा ने कुछ दूर तक उसका पीछा किया और फिर अभयदान देकर छोड दिया। बलिकन्या के पास आकर राजा ने उसके दोनो हाथ खोले। उसे अचानक उक्त कन्या का कथन याद आ गया। आश्चर्यपूर्ण-जिज्ञासा के साथ राजा ने पूछा—

"सुन्दरी! तुम कौन हो और इस योगी के फन्दे मे कैसे फँसी यह बताने से पहले मुझे यह बताओ कि तुमने यह कैसे जाना कि मैं आभानरेश हूं। तुम्हारे इस कथन से मुझे बहुत आश्चर्य हुआ है।"

चन्द्रावती नाम की उस राजकन्या ने कहा—

"आभापति ! अब मैं पूर्ण सुरक्षित हूँ। आपने मेरे प्राणो की रक्षा करके मुझ पर ही नही, मेरे माता-पिता पर भी बडा उपकार किया है। अब तो बस बताना ही बताना है। मैं आपको सब कुछ बताऊँगी। पर अब यहाँ से चलकर कही और बैठकर बाते करेगे।"

राजा ने कहा—

"तो चलो, ऊपर चलकर वट वृक्ष के नीचे बैठेंगे। वही मेरा घोडा भी बँधा है।"

दोनो ऊपर पहुँचे और वट-तरु की शीतल छाया मे बैठकर बातें करने लगे। राजकुमारी चन्द्रावती आभानरेश वीरसेन से कह रही थी—

"स्वामी ! आभा नगरी से पच्चीस योजन दूर पद्मपुरी नामक नगरी है। वहाँ राजा पद्मशेखर राज्य करते है। मैं उन्ही की पुत्री चन्द्रावती हूँ। राजमहिषी रतिरूपा मेरी जन्मदात्री हैं। निर्ग्रन्थ धर्म मे मेरी विशेष आस्था है।"

"राजन् ! जब मैं विवाह योग्य हुई तो मेरे पिता राजा पद्मशेखर को मेरे अनुकूल वर की तलाश हुई। उन्होने एक ज्योतिषी से पूछा कि राजकुमारी चन्द्रावती का विवाह किसके साथ होगा। ज्योतिषी ने बताया कि आपकी पुत्री आभापुरी के राजा वीरसेन को ब्याही जायेगी। ज्योतिषी की भविष्यवाणी से मेरे पिता को बहुत प्रसन्नता हुई। आपको अपना जामाता मान वे समय की प्रतीक्षा करने लगे। मैंने भी मन-ही मन आपका वरण किया और आपको अपना प्राणाधार मान लिया। ज्योतिषी के उक्त कथन के कुछ ही दिन बाद मैं सखियो के सग उद्यान-भ्रमण

के लिए गयी। वहाँ यह योगी आया। इसने इन्द्रजाल-विद्या के बल से मेरी सखियो की नजर बाँध दी और मुझे यहाँ उडा लाया। इसके क्रिया-कलाप और पूजा-विधि देखकर मै समझ गयी कि यह मेरी बलि देगा। ऐसे सकट के समय एक प्राणनाथ ही अपनी प्रिया के प्राणो की रक्षा कर सकता है। इस अनुमान-प्रमाण मे मेरे अन्त करण से आवाज उठी कि मेरे प्राणरक्षक और प्राणाधार आभानरेश ही मुझे बचाने आये हैं। अन्त करण की आवाज ही जबान पर आ गयी।"

राजकुमारी चन्द्रावती और राजा वीरसेन बाते कर ही रहे थे कि उनका आखेट दल भी उन्हे ढूंढता-खोजता वहाँ आ गया। राजा को सकुशल पाकर सभी को प्रसन्नता हुई। राजा ने सबको चन्द्रावती का परिचय दिया और सब लोग आभापुरी लौट आये। आभापुरी आकर राजा वीरसेन ने पद्मपुरी को एक दूत भेजा, जिसने राजा पद्मशेखर से राजा वीरसेन का सन्देश इस प्रकार कहा—

"राजन्! आपकी पुत्री चन्द्रावती मेरे सरक्षण मे है। वह एक योगी के चगुल मे फँसी हुई थी। सयोगवश और दैवेच्छा से मैं उसका सहायक बना। अब आप अपनी पुत्री को दर्शन देने की कृपा करें। आभापुरी मे आपका स्वागत-सत्कार करके मुझे प्रसन्नता होगी। आशा है मेरी नगरी मे आकर आप मेरा मान बढायेंगे।"

चन्द्रावती के गुम हो जाने से राजा पद्मशेखर और रानी रतिरूपा बहुत चिन्तित और शोक सतप्त थे। दूत के मुँह से यह शुभ सवाद सुनकर उनको अयाचित प्रसन्नता हुई। उन्होने रानी से कहा—

पांच धायों के संरक्षण में चन्द्रकुमार का पालन-पोषण होने लगा। द्वितीया के चन्द्र की तरह वह दिन-दिन वृद्धि को प्राप्त होने लगा। ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता जाता था, त्यों-त्यों वीरमती की कुढ़न बढ़ती जाती थी। उसे इसका भी बहुत मलाल था कि किसी दिन चन्द्रावती ही राजमाता बनेगी।

राजा वीरसेन और रानी चन्द्रावती—दोनों ही यह जानते थे कि वीरमती की नजरों में कुमार बहुत खटकता है। अवसर मिलते ही वह कुमार का अनिष्ट कर सकती है। अतः राजा उसकी ओर सजग-सावधान रहता था।

धीरे-धीरे राजकुमार चन्द्र आठ वर्ष का हुआ। अतः उसका विद्यारम्भ हुआ। एक योग्य गुरु-कलाचार्य के निकट चन्द्रकुमार विद्याध्ययन करने लगा। पूर्व पुण्यों से वह एक के बाद दूसरा विद्या-सोपान चढ़ता गया और जैसे-जैसे समय बीता, कुमार बहत्तर कलाओं में निष्णात और सकल विद्याओं में दक्ष हो गया। विद्याध्ययन के साथ-ही-साथ उसने धर्मगुरुओं से धर्म और अध्यात्म का ज्ञान भी ग्रहण किया। विद्याध्ययन समाप्त करके राजकुमार महलों को लौट आया। राजा वीरसेन ने एक समारोह के साथ उसके युवराज पद पर अभिषेक किया। अब राजसभा में एक आसन युवराज का भी सम्मिलित हो गया।

जब कभी राजकुमार चन्द्र घोड़े पर चढ़कर नगर भ्रमण को निकलता था तो छज्जों पर चढ़कर नारियाँ देखने लगतीं। लज्जावन्ती कुलवधुएँ झरोखों से निहारतीं और बूढ़ी माताएँ उसे देख तिनका तोड़कर कहतीं—कहीं युवराज को किसी की नजर न लग जाय। उसके गौर वर्ण को देखकर ऐसा लगता था, मानो उसकी काया कंचन से बनी हो। वह आभापुरी का युवराज था

और उसका रूप-रंग आभामय था। युवराज चन्द्र आभापुरी की आभा था। उसे देखकर कामदेव भी लज्जित होता था। वृषभ-स्कन्ध, हाथी की सूंड जैसे आजानु बाहु, चौडा वक्षस्थल, काम्बु-ग्रीवा, शुकनाशा, अधरो पर सदा खिंची रहने वाली सहज मुस्कान रेखा और अद्भुत रूप-लावण्य। जब तक वह कुछ बोलता न था, लोग उसे अपलक देखते रहते और जब वह कुछ कहने लगता तो दर्शको की आंखो का स्थान कान ले लेते।

चन्द्रकुमार गुणी, सदाचारी, विद्याव्यसनी, परोपकारी, वीर, धीर और साथ ही विनयी भी बहुत था। युवराज होते हुए भी वह सभी अमात्यो का पिता की तुल्य आदर करता था। विद्या का गुण ही यह है जो विनय को जन्म देती है। पढ-लिख कर भी अहकारी बना रहने वाला तो मात्र शास्त्रो का भार ढोने वाला गर्दभ तुल्य ही है।

× × ×

वसन्तोत्सव के दिन राजोद्यान मे दिन-भर आमोद-प्रमोद होता है। सन्ध्या को दिया जले तक सभी अपने-अपने घरो को लौट आते है। एक बार वसन्तोत्सव के दिन राजपरिवार के साथ आभापुरी के नर-नारी भी जगल मे मगल मना रहे थे। कोई-कोई उसे मदनोत्सव भी कहते हैं। अबीर, गुलाल और रग की पिच-कारियां छूट रही थी। अपनी-अपनी धुन मे सभी मस्त थे। छोटे-छोटे बालक अपनी ही टोली मे मस्त थे। हँसते-खेलते और किल-कारियां भरते बच्चे उद्यान की फुलवाडी से भी बढकर सुन्दर लग रहे थे। बच्चो की चुहलबाजी देखकर कुछ बडे भी उनके साथ बालक बने हुए थे। प्रौढ और वयस्क होकर भी जो बच्चो के सरल-सात्त्विक स्तर पर उतर कर उनकी क्रीडा का आनन्द नही

ले सकता, ऐसा व्यक्ति या तो बहुत दुखी अथवा चिन्तित है, अथवा जड हृदय किंवा योगी।

बच्चो को उछलते-कूदते देख पटरानी वीरमती का मन और भी अधिक उदास हो गया। जब भीतर के हृदय-प्रदेश मे ही दु खो और अभावो का पतझड हो तो बाहरी बसन्त किसे मस्त बना पाता है? फिर ऐसी बात नही थी कि वीरमती को बच्चो से प्रेम नही था, पर उसे अपनी गोद का सूनापन रह-रह कर अखर रहा था। बैठी-बैठी वीरमती सोच रही थी—

'बेमन का बनावटी प्रेम जैसे निस्सार होता है, वैसे ही एक पुत्र के बिना मेरा जीवन भी किस काम का? जैसे निष्प्राण शरीर, दीपकहीन गृह, गन्धहीन पुष्प, जलहीन मेघ, ज्ञानहीन दया, मान-हीन दान, प्रतिमाहीन मन्दिर, मन्त्रहीन जाप, दन्तहीन भोजन और चन्द्रहीन रात्रि व्यर्थ है, उसी तरह पुत्रहीन कामिनी भी शोभा नही पाती। मै आभापुरी की पटरानी हूँ—मेरा वैभव अलका-पुरी की महारानी शची से भी बढकर है, पर पुत्र के बिना यह सब किस काम का? पुत्ररहित घर मे मुनि-अतिथि भी प्रवेश नही करते। जो नारी कभी माता नही बन पाती, उसका नारी जन्म ही वृथा है।'

वीरमती अपने दुख मे दुखी थी। जिस पेड के नीचे एकान्त मे बैठी—सबसे अलग वीरमती विचारमग्न थी, उसी पेड पर एक तोता बैठा था। उसका ध्यान वीरमती की ही ओर था। यो चुपचाप और उदास वीरमती को देख तोते ने मानववाणी मे कहा—

"सुन्दरी! ऐसे रग भरे दिन जबकि पशु-पक्षी तक भी किलोलें कर रहे हैं, तू ही इस तरह शोक मे क्यो डूबी हुई है?

आखिर ऐसा कौन-सा दुख है, जो आज तुझे भी रुला रहा है ? अपने मन की बात मुझे भी तो बता ।"

एक पक्षी को मानववाणी मे बातें करते देख वीरमती को बहुत आश्चर्य हुआ और शुक ने जो सहानुभूति दिखायी, उससे उसे तसल्ली भी हुई । तोते की बात सुनने के बाद वीरमती ने कहा—

"रे भाई शुक ! तुझे बताने से लाभ भी क्या है ? सिवा सुनने के कर भी क्या सकता है तू ? जिससे दैव रूठ जाता है, उसका उजडा ससार कोई नही बसा सकता । मुझसे बाद मे आई मेरी सौत चन्द्रावती का पुत्र चन्द्रकुमार आज तरुण भी हो गया और मैं अभी तक शिशुमती नही हो पायी । मेरे दुख की बात पूछकर तू क्या करेगा ?

तोते ने कहा—

"रानी ! भाग्य की गति बडी विचित्र है, यह मैं मानता हूँ और यह भी मानता हूं कि भाग्य के आगे किसी का वश नहीं चलता । लेकिन इतना तू भी मानले कि भाग्य कब अनुकूल हो जाय, इसका कोई भरोसा नही । यह सब भाग्य की ही लीला माननी चाहिए कि तू इसी पेड के नीचे बैठी है, जिसकी एक शाखा पर मैं बैठा हूं । दैवयोग से ही मैंने तुझसे प्रश्न किया है । कभी-कभी जो काम मानव नही कर पाता, उसे एक नाचीज पछी कर देता है, यह भी दैवेच्छा है । तेरा दुख मैंने जान लिया । तुझे एक पुत्र की जरूरत है ।

"वीरमती ! मैं तुझे एक उपाय बताता हूँ । तू उसे करके देख ले । अगर तेरे किंचित् भी पुण्य शेष हुए तो तेरी कामना पूर्ण

होगी। प्रयत्न करना मनुष्य का कर्तव्य है—सफलता या विफलता दैवाधीन है।"

शुक की बातें सुनकर वीरमती ने कहा—

"शुकराज! पछी होकर भी तुममे इतना विवेक है। यह सब तुमने कहाँ से सीखा? मुझे पहले अपना परिचय तो दो, फिर मुझे वह उपाय बताना जिस पर मेरा मनोरथ टिका हुआ है।"

तोते ने कहा—

"रानी! मुझे एक विद्याधर ने पाल लिया था। सोने के पिंजडे मे वह मुझे रखता था और नई नई बातें मुझे बताता था। एक दिन मुझे साथ लेकर मेरा पालक विद्याधर एक मुनि की धर्म-सभा मे पहुँचा। मुनि को वन्दन-नमस्कार कर वह मुनि का कल्याण-कारी उपदेश सुनने लगा। मुझे पिंजडे मे बन्द देख मुनिराज ने तिर्यञ्च-बन्धन मे लगने वाले दोषो पर प्रकाश डाला। मुनि के उपदेश से प्रभावित हो करुणावान विद्याधर ने मुझे मुक्त कर दिया। तभी से मैं मुक्त गगन मे विचरण करता हूँ। आज उडता हुआ इधर आ निकला सो तुमसे भेंट हो गयी।

"रानी! जो सुख मुझे आकाश विहार या वृक्ष की डालियो पर मिलता है, उससे हजारो गुना ज्यादा दुख मुझे स्वर्ण-पिंजर मे मिला। पर मनुष्य अपने सुख के लिए दूसरो को पीडा देने मे भी नही झिझकता। एक की पीडा दूसरे का सुख कैसे बन जाती है, यह घोर आश्चर्य की ही बात है। इतना ही नही, कुछ तो हम दीन और मूक पशुओ की बलि भी दे डालते हैं। जो लोग पशुओ के रक्त की भेंट देवताओ को देते हैं, उनकी यह भेंट बलि उन देवताओ को प्रिय एव अगीकृत होती ही है इसका कोई निश्चय नही। यह बलि उन्हे सर्वथा अयाचित भी हो सकती है।

यदि कोई देवता पीड़ा और मृत्यु की भेंट स्वीकृत करता भी है तो वह रक्तलोलुप, पीड़ा व मृत्युपक्ष का देवता ही हो सकता है। ऐसे देवता से सुख की कामना व्यर्थ है यह कैसी विडम्बना है कि मनुष्य को सुख और शान्ति की कामना है, किन्तु उसका संसार पीड़ाओं से निर्मित है।"

कुछ देर मौन रहकर तोते ने पुनः कहा—

"रानी ! बातों-ही-बातों में मैं कहाँ पहुँच गया। तिर्यंच-बन्धन दोष की बातें करते-करते कितना आगे बढ़ गया। अब मैं मूल प्रसंग पर आता हूँ।"

"रानी ! आज से तुम मेरी धर्म-माता हो। मैंने तुम्हारी कोख से जन्म नहीं लिया, फिर भी श्रद्धा भावना के कारण तुम मेरी माँ हो। तुम्हारा दुःख मेरा दुःख है। मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ। इस वन की उत्तर दिशा में एक सुन्दर बावड़ी है। वहाँ एक मन्दिर है। वहाँ चैत्रपूर्णिमा के दिन अप्सराएँ (परियाँ) आती हैं। अपने-अपने वस्त्र उतारकर सभी अप्सराएँ वहाँ जल-विहार करती हैं। उन की प्रधान नायिका (नीलम परी) नीलरत्न के वस्त्र धारण करती है। किसी तरह तुम उस प्रधान अप्सरा के नीलरत्न के वस्त्र प्राप्त कर लो तो तुम्हारा काम बन जायेगा। एक बात का ध्यान रखना कि यह काम तुम्हें अकेले ही करना है। किसी को साथ मत ले जाना। एक बार मैं भी सोने के पिंजड़े में अपने स्वामी विद्याधर के साथ वहाँ अप्सराओं का उत्सव देखने गया था। उन विद्याधर ने ही मुझे ये सब बातें बतायी थीं। रानी ! रोगी की चिकित्सा करना मनुष्य के हाथ की बात है और रोगी को स्वस्थ करना अथवा न करना दैव की इच्छा। इसलिए तुम प्रयत्न अवश्य करो।"

यथासमय वसन्तोत्सव समाप्त हुआ तो रथ में बैठकर वीरमती सबके साथ रनिवास में आ गयी। आज उसे बहुत प्रसन्नता थी। जो प्रसन्नता फल प्राप्ति में होती है, उससे भी ज्यादा फल प्राप्त करने की सुनिश्चित आशा से। वीरमती आज तक निराशा से दुःखी थी। आज आशा का सहारा पाकर वह बहुत खुश थी।

समय जाते देर नहीं लगती। चैत्रपूर्णिमा का दिन भी आ पहुँचा। धीरे-धीरे सन्ध्या हुई और रात्रि का प्रवेश भी हो गया। वीरमती अकेली ही जंगल की ओर रवाना हो गयी। समय पड़ने पर अथवा घोर स्वार्थ-लिप्सा के समय जो वीरता और निर्भीकता नारी में होती है, पुरुष उससे पीछे रह जाता है। आज तक राजमहिषी वीरमती ने अकेले महलों से बाहर पैर नहीं रखा था और आज सुनसान जंगल में अकेली थी। यह वह अबला थी, जो बिजली की कड़क सुनकर प्रिय के वक्ष में चिपट जाती है।

समय से कुछ पहले ही वीरमती मन्दिर में पहुँच गई और मन्दिर के एक कोने में छिप गई। पूनम का चन्द्र पूरी आभा के साथ धवल चन्द्रिका छिटका रहा था। वन का हर पेड़, हर डाली, हर टहनी और हर पत्ता चाँदनी में स्नान कर रहा था। थोड़ी ही देर बाद अप्सराओं का दल भी वहाँ रुन झुन करता आ पहुँचा। अप्सराओं ने नृत्य भूमि में गायन वादन का समारोह प्रारम्भ किया। वीरमती निश्चल भाव से सब देखती रही। यथासमय सब अप्सराओं ने अपने-अपने वस्त्र उतारकर मन्दिर के बाहर रख दिये और पास ही बनी पुष्करिणी में पैठ कर स्नान-क्रीड़ा करने लगीं। वीरमती ने अवसर देखा और नीलरत्न के

वस्त्रो का हरण कर मन्दिर मे आ बैठी तथा भीतर से किवाड वन्द कर लिये।

काफी देर तक स्नान-क्रीडा करने के वाद वे सव अप्सराएँ वाहर निकली और अपने-अपने कपडे उठाये, पर प्रधान अप्सरा तो नग्न रह गयी। उसके कपडे वहां न थे। "अव क्या हो ? न मरी न जिन्दी ? विना कपडो के अपने लोक को कैसे जाऊँगी ? और रात भर से अधिक यहां ठहर भी नही सकती।" प्रधान अप्सरा ने साथ वाली अप्सराओ से कहा—"आखिर यहां कपडे लेने आयेगा भी कौन ?" सवने मिलकर इधर-उधर खोजा। पर कपडे कहां मिलते ? तभी एक अप्सरा का ध्यान मन्दिर की ओर गया। उसने कहा—

"निश्चय ही कोई कपडे लेकर मन्दिर मे छिपा वैठा है। क्योंकि पहले इसके सभी द्वार खुले थे और अव सभी दरवाजे भीतर से वन्द हैं।"

"हां-हां चोर मन्दिर मे ही है।"

निश्चय के स्वर मे सवने कहा। मन्दिर के द्वार खटखटाये, पर वीरमती ने कोई उत्तर नही दिया। अन्त मे, हारकर सिकुडी-सकुचाती प्रधान अप्सरा ने कहा—

"मेरे वस्त्र लेकर जो मन्दिर मे वैठा है, वह वाहर आये। रात वहुत थोडी है। हम ज्यादा देर यहां नही रह सकती। इसके अलावा देवताओ के वस्त्र मनुष्य के काम मे नही आ सकते। यद्यपि मेरे वस्त्र चुराये गये है, फिर भी वस्त्र लौटाने वाले का मैं उपकार मानूंगी और वदले मे कुछ मनचाहा देने का वचन भी देती हूं।"

यही तो वीरमती चाहती थी। अप्सरा का निश्चय सुनकर वह बाहर आयी और उसे उसके वस्त्र देकर पैरो मे गिरकर फफक-फफक कर रो पडी। रोते-रोते बोली—

"देवी ! मैं चोर नही हूँ। एक दुखिया हूँ। मेरा दुख दूर करो। अपने दुख-निवारण की आशा से मैने आपके वस्त्रो का हरण किया था। आप देवी है, मनुष्यो का दुख दूर करने मे समर्थ हैं।"

अपने वस्त्र धारण कर प्रधान अप्सरा ने कहा—

'रानी ! दीपक जलाने से रात दिन मे नही बदल जाती। हाँ, इतना जरूर है कि दीपक के सहयोग से रात का अधेरा दुखदायी नही रहता, उसकी कालिमा कम हो जाती है। दिन की तरह साफ तो नही, पर दीपालोक से कुछ दीखने अवश्य लगता है। दिन तो दिनकर से ही होता है। पाप-पुण्य के फल स्वरूप जो भाग्य मे लिखा जाता है, उस भाग्य रूपी रात को कोई भी देवी-देव रूपी दीपक दिन मे नही बदल सकता। दिन का सा प्रकाश तो पुण्य रूपी सूर्योदय से ही मिलता है। हम देवी-देव तो तुम्हारे दुख भार को इतना हल्का कर सकते है कि दुख का बोझ न लगे—फूल-सा हल्का हो जाये।

"रानी ! वस्त्र लेने से पहले ही मै वचन दे चुकी थी कि तुम्हारा काम करूँगी। इसके अलावा तुम नारी भी हो और साथ ही दुखिया भी। मैं स्वय नारी हूँ। इसलिए तुम्हारे प्रति मेरी हमदर्दी व अनुकम्पा भी है। अपना दुख कहो। मैं उसे शक्ति भर दूर करूँगी।"

अप्सरा से आश्वासन पाकर वीरमती ने कहा—

"देवी ! मै निस्सन्तान हूँ। बीस वर्ष के विवाहित जीवन

मे मैं अभी तक वन्ध्या ही हूँ । मैं भी पुत्रवती बनकर जीवन को सुखी करना चाहती हूँ । मेरी गोद भर दो । बस, यही एकमात्र मेरी लालसा है ।"

वीरमती की दुःखद दशा देखकर अप्सरा ने अवधिज्ञान के प्रयोग द्वारा उसका प्रारब्ध देखा और कहा—

"रानी ! तेरे भाग्य मे सन्तानयोग नही है । प्रारब्ध के विरुद्ध मैं तुझे पुत्र देने मे असमर्थ हूँ । फिर भी तू निराश मत हो । मैं तुझे ऐसी विद्याएँ देती हूँ, जिनसे राजा और प्रजा तेरी मुट्ठी मे रहेगे । चन्द्रकुमार भी तेरा ही होकर रहेगा । तू चन्द्रकुमार को ही अपना पुत्र मान ले । सौतेला बेटा होने पर भी वह विद्याबल से तेरा आज्ञानुवर्ती रहेगा ।

"रानी ! आकाशगामिनी, शत्रुबल-हरणी, अवस्वापिनी (नींद दिलाने वाली) तथा विविध कार्यकरणी—ये चार विद्याएँ तुझे दे रही हूँ । इनको सिद्ध करने पर जीवन के सब सुख तेरी मुट्ठी मे रहेगे । राजा वीरसेन तेरे होकर रहेंगे, चन्द्रकुमार तेरा होगा, प्रजा तेरे सामने झुकेगी और तुझे क्या चाहिए ? इस तरह पुत्रहीन होकर भी तू पुत्रवती होने से अधिक सुखी रहेगी ।

"रानी ! लेकिन इतना सावधान तुझे अवश्य रहना है कि चन्द्र को पुत्र ही मानना—दास नही । कभी यह विचार मत करना कि यह मेरी सौत का लडका है, मेरा नही । भूलकर भी चन्द्र को मत सताना, वरना ये विद्याएँ तेरे लिए विपरीत हो जायेंगी, अर्थात् तेरा ही अकल्याण होगा । ससार मे अपना पराया कोई नहीं, फिर दूसरा कैसे अपना हो ? लेकिन जिसे अपना मानो, वही अपना है ।"

वीरमती ने चारों विद्याएँ ग्रहण कर सन्तोष की साँस ली। अप्सरा को नमस्कार कर वीरमती घर लौट आयी। दूसरे दिन से ही रानी ने गुप्त रूप से विद्याओं की साधना प्रारम्भ कर दी और यथासमय उन्हें सिद्ध कर लिया। अब तक वीरमती नाम की ही वीरमती थी, अब वह गुणों से भी साक्षात् वीरमती और विद्यावती हो गयी थी। उसे अपनी विद्याओं पर भरोसा तो था ही, पर अहंकार भी था। उसे विद्या क्या मिली, चींटी के पंख ही निकल आये। जैसे किसी चूहे को हल्दी की एक गाँठ मिल गई तो अपने को पसारी ही समझ बैठा। यही हाल रानी वीरमती का था। विद्याओं की अकड़ में वह किसी को कुछ समझती ही न थी। उसके पैर धरती पर न टिकते थे। अहंकार का यह स्वभाव है कि इतना अनिष्ट वह दूसरों का नहीं करता, जितना कि अहंकारी का करता है।

इधर जब राजकुमार चन्द्र सब तरह से योग्य हो गया और युवराज पद ग्रहण करके राजसभा में बैठने लगा तथा राजकाज में राजा वीरसेन का हाथ बँटाने लगा तो राजा ने उसके विवाह का निश्चय किया। राजा गुणशेखर की एकमात्र कन्या गुणावली को सब विधि उपयुक्त और अनुकूल समझ चन्द्रकुमार का विवाह उसके साथ किया गया।

गुणावली रूप में तो साक्षात् देव-कन्या जैसी थी ही, गुणों का भी आगार थी और अपनी 'गुणावली' संज्ञा को सार्थक करती थी। रूप और गुण का ऐसा कठिन संयोग सोने में सुगन्ध के समान था। चन्द्रकुमार और गुणावली की जोड़ी भी चन्द्र और रोहिणी की जोड़ी थी। ऐसा लगता था, विधाता ने एक-दूसरे के लिए ही दोनों का निर्माण किया हो। युवराज्ञी गुणावली युवराज

चन्द्र को अपना आराध्यदेव ही मानती थी । पतिसेवा, पातिव्रत्य और पति कल्याण की कामना उसमे कूट-कूट कर भरी थी । सास-श्वसुर की सेवा भी वह बडे भक्तिभाव से करती थी ।

वीरमती और चन्द्रावती—दोनो सासो के प्रति गुणावली का समान आदर-भाव था । अप्सरा के आदेशानुसार वीरमती भी चन्द्रकुमार को पुत्रवत् ही प्यार करती थी और पुत्रवधू पर भी अपना प्रेम न्योछावर करती थी । कभी-कभी तो वह इस प्यार-दुलार मे चन्द्रावती से भी आगे हो जाती । चन्द्रकुमार भी दो-दो माताओ का वात्सल्यमय वरदहस्त पाकर अपने सौभाग्य को सराहता था । उसके लिए माता तो माता थी ही, विमाता भी माता ही थी । लेकिन वीरमती का यह प्यार-दुलार विवशता के कारण था । विद्याएँ प्रदान करने वाली अप्सरा द्वारा दी गयी चेतावनी के कारण वह चन्द्रकुमार को प्यार करने के लिए विवश थी । उसके प्यार मे सात्त्विकता न थी, वल्कि नीति, कपट और दूरदर्शिता थी ।

कुछ भी हो, चन्द्रकुमार माता-पिता के स्नेह-दुलार तथा प्राण-प्रिया गुणावली के सान्निध्य से परम सुखी था । उसका दाम्पत्य जीवन निष्कपट और एक-दूसरे के लिए त्याग व समर्पण से परि-पूर्ण था । पति-पत्नी के हृदय जव इतने शुद्ध हो कि कोई भी वात किसी के लिए रहस्य या दुराव न हो, तो ऐसे पति पत्नी वडे पुण्यशाली होते हैं और चन्द्रकुमा- तथा गुणावली ऐसे ही पुण्य-शाली जीव थे ।

× × ×

राजप्रासाद के पृष्ठभाग मे वने मदन उद्यान मे एक छोटे-से लतामण्डप के नीचे राजा वीरसेन और रानी चन्द्रावती वैठी

शीतल-मन्द समीर का सुखद स्पर्श प्राप्त कर रहे थे। राजा, रानी की जंघा पर सिर रखकर लेट गया और रानी उसके केश सहलाने लगी। रानी को राजा के सिर मे एक सफेद बाल दिखायी दिया। रहस्यमय विनोद की चुटकी लेते हुए रानी चन्द्रावती ने कहा—

"स्वामी, चोर !"

राजा चौंक कर बैठा हो गया—

"कहाँ है चोर ?

रानी खिलखिलाकर हँस पडी। राजा भी समझ गया, बात कुछ और ही है। फिर भी इस विनोद की व्यंजना को वह जानना तो चाहता ही था। पूर्ववत् रानी की जांघ पर सिर रखकर वह पुन लेट गया और मजाक का रहस्य जानने के विचार से बोला—

"तुम्हारी आवाज सुनकर अब तक चोर भाग भी गया होगा न ? चोर के पैर ही कितने होते है ? सामने की आवाज सुनकर ही भाग जाता है ?"

रानी ने रहस्य पर एक और परत चढाते हुए कहा—

"यह चोर ऐसा चोर नही है। किसी राजा का भेदिया है। आपके शरीर-साम्राज्य मे अपनी जगह बनाने एक भेदिया आया है और फिर देखते-देखते पूरे शरीर-साम्राज्य पर उसी का अधिकार हो जायेगा।"

'तो फिर हमें भी दिखाओ वह कैसा चोर है ?" राजा ने हँस कर कहा। रानी बोली—

"चोर मेरी निगाह मे बंधा पडा है। जब कहो, तब हाथ पर रख दूं।"

राजा हँसा—

"अच्छा, अब हम समझ गये। सिर से कोई जूं मिल गयी होगी। है न सही बात ?"

रानी ने राजा के सिर से एकमात्र सफेद बाल नोचा और राजा की हथेली पर रखकर बोली—

"महाराज ! यह है चोर। बुढ़ापे का भेदिया। एक दिन सिर के सभी बाल सफेद हो जायेंगे और तब बुढ़ापे का प्रभुत्व आपके समूचे तन-प्रदेश पर हावी हो जायेगा। था न चोर ? काले बालों में कैसा छिपा बैठा था ?

राजा वीरसेन उठकर बैठा हो गया और रानी चन्द्रावती की ओर घूरकर देखने लगा। कुछ देर विचार करने के बाद बोला—

"रानी ! तुम्हारी इस मजाक में भी कितनी गम्भीरता और जीवन का तत्व समाया हुआ है। मैं अब तक कैसा निश्चिन्त था। तुमने मुझे सावधान कर दिया। जरा और मृत्यु—इनके आने से पहले ही जिसने आत्मसाधना नहीं की, उनका यह नरतन व्यर्थ ही गया। आज मेरी तो आँखें ही खुल गयी। कितना समय भोगों में बीत गया ? अब यह जीवन संयम के लिए समर्पित है। बस, अब चारित्र ग्रहण करने की ही इच्छा है।"

रानी चन्द्रावती उदास हो गयी। कुछ नहीं बोल पायी और राजा वीरसेन अन्तर्मुख होकर विचार करने लगा। रानी ने राजा को चिन्तनलीन देखकर कहा—

"स्वामी ! यह क्या हो गया ? मैं नहीं जानती थी कि आज का मजाक इतना महँगा पड़ेगा। क्या मेरा सर्वस्व सुख यों ही मुझसे छिन जायेगा ?"

राजा वीरसेन ने कहा—

"प्रिये ! तुम सुख किसे मानती हो ? तुम्हे दुःख किस बात बात का है ?"

"स्वामी ! मेरे पति दीर्घायु हो, पुत्र चिरजीवी हो। मैं उन्हे स्वस्थ-सानन्द देखूं और उन्ही के सामने मरूँ, यही मेरा सुख है। मुझे और क्या चाहिए ?"

राजा ने कहा—

"प्रिये ! क्या दीर्घायु मे ही सुख है ? बचपन मे जब मैंने एक बार अपनी माँ को प्रणाम किया तो वे बोली—बेटा, तेरी हजारो उमर हो। मैंने माँ से पूछा था—माँ ! यह तुमने कैसा आशीर्वाद दिया ? क्या हजार वर्ष की उम्र पाने के बाद भी फिर मरना नही पडेगा ? आशीर्वाद देने वाले गुरुजन—मगल कामना करने वाले बडे-बूढे भी अमर होने का आशीष नही देते—सहस्रायु दीर्घायु तक ही उनकी शुभ कामना रहती है। सभी जानते हैं कि नश्वर जगत मे अमर कोई नही। तुम भी तो आज सुख की कामना मे सत्य को और महासुख को भूल रही हो। महासुख उस अवस्था मे ही है, जब जीव जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है और उसका एकमात्र साधन है—'चारित्र पालन'।

चन्द्रावती ने छलछलाती आँखो से कहा—

"स्वामी ! मैं तो अल्पज्ञ हूँ। मेरा जीवन मेरे पति, मेरे पुत्र मे ही केन्द्रित है। इनसे वचित हो जाने की कल्पना से ही मैं सिहर उठती हूँ। मुझे विश्वास है कि मेरे पति और पुत्र सदा मेरी आँखो के सामने विद्यमान रहेगे। यदि इस विश्वास मे कोई बाधा हुई तो मेरा जीवन असह्य हो जायगा। यदि मुझे पुत्र का विछोह सहना पडा तो भी मैं सम्भवत जीवित रहूँगी, क्योकि

मेरी देह और जीवन आपकी—मेरे स्वामी की सम्पत्ति है। उनकी वश-परम्परा के लिए पुत्र की उत्पत्ति करना पुन भी मेरा कर्त्तव्य होगा। उसकी आशा सम्भवत मुझे जीवित रखेगी। यदि मेरे जीते जी मेरे स्वामी का हाथ मेरे सिर से उठ गया तो मेरे जीवन का कोई प्रयोजन नही रह जायेगा।

"स्वामी। धर्म-कार्य मे मैं अन्तराय बनना नही चाहती। फिर भी आप घर पर रहकर धर्माराधन कर सकते है। मैं आपको वनपथ की ओर न जाने दूंगी, क्योकि "**विरक्तचित्तस्य गृहं तपोवनम्।**'

"प्रिये ! आज तुम मोह-जाल मे जकडी हुई हो। इसीलिए क्षुद्र स्वार्थ मे घिरी हो। तुम्हारे जीवन की साध और सरलता आदरणीय है। उनमे जीवन के कुटिल पक्ष और पीडा का अभाव है। लेकिन जैसा तुम्हे दीखता है, जीवन सर्वत्र वैसा ही नही है। खुली आँखो से देखने पर कही भी ऐसा नही है। जीवन की प्रौढता पीडा की पृष्ठभूमि पर निर्मित है और उस तक पहुँचना प्रत्येक के लिए अनिवार्य है।

"प्रिये ! तुम सोचती होगी—रोग, आघात, दारिद्रय, मृत्यु और विछोह से आगे कोई पीडा नही। लेकिन पीडा एक ही है, उसके रूप विविध हैं। देहधारी अपने पात्र मे समाई पीडा के अश को ही पीडा मानते हैं। किन्तु विश्व की पीडा ही प्रत्येक देहधारी की पीडा है।

"रानी ! पात्र के विस्तार के साथ पीडा का और पीडा के विस्तार के साथ उसकी उपचार-साधना का भी विस्तार होता है। कुछ लोगो की उपचार-साधना अणुव्रतो तक ही सीमित रहती है, जो आशिक लाभ ही पहुँचाती है। लेकिन जन्म-मरण की

महा पीडा से छुटकारा पाने के लिए महाव्रतों का पालन ही एकमात्र उपचार-साधन है।

"रानी! तुम मुझे पकडकर महलों में अपने पास ही रखना चाहती हो। लेकिन जब मृत्यु का आक्रमण होगा तो कैसे रोक पाओगी? जो काम परवश होकर किया जाए—अपने लाभ के लिए उसे स्ववश होकर ही कर लेना चाहिए।

"आज तुमने चोर पकडा तो उसके साथी अन्य चोरों के आने से पहले ही सावधान हो जाना चाहिए। इसलिए अब मेरी बात मानो और संयम की अनुमति प्रदान करो।"

सचाई का प्रभाव हुए बिना नहीं रहता। चन्द्रावती स्वयं भी प्रतिबुद्ध हो चुकी थी। उसने अपना निर्णय दिया—

"स्वामी! जहाँ काया, वहीं छाया। मैं भी आपके साथ चारित्र ग्रहण करूँगी। जिस महासिद्धि को आप प्राप्त करना चाहते हैं, मैं भी उसको प्राप्त करने में आपसे पीछे नहीं रहूँगी।"

निश्चय पक्का हो गया। राजा वीरसेन और रानी चन्द्रावती ने शुभ समय में एकसाथ श्रमणचर्या अंगीकार की। राज्यभार चन्द्रकुमार को सौंपा गया। वीरमती राजमाता बनी। चन्द्रकुमार अब राजा चन्द्र हो गया और होते होते चन्द्र से चन्द बन गया। सब उसे राजा चन्द कहकर बोलते थे। गुणावली आभापुरी की पटरानी थी। राजर्षि वीरसेन और साध्वी चन्द्रावती ने सयत्न-पूर्वक कठोर तपश्चर्या द्वारा सिद्धि सुख प्राप्त किया।

आभापुरी के राजसिंहासन पर राजा चन्द ऐसे लगते थे, मानो देवसभा में देवराज इन्द्र विराजमान हों। उनका रूप तो कामदेव को लज्जित करने वाला था ही, स्वभाव भी सब को मोह लेता था। उनके सुशासन से आभापुरी की प्रजा राजा वीरसेन

को भूल गयी थी। सुशासक तो वही है, जो अपने पूर्वाधिकारी से दस कदम आगे हो। दूध-का-दूध और पानी-का-पानी करना राजा चन्द की न्यायनीति थी। कहते है, चन्द राजा के शासन मे शेर-बकरी एक घाट पानी पीते थे। चन्द राजा की माँ श्राविका थी, अत राजा चन्द की शिराओ मे भी धर्मनिष्ठा बहती रहती थी। यथासमय सामायिक और प्रतिक्रमण करना, उनका नित्य-नियम था।

अब वीरमती अकेली थी। उसकी सौत चन्द्रावती अब उसके पास नही थी। रानी गुणावली और राजा चन्द पर उसी का एकमात्र अधिकार था। उसके पास विद्याएँ थी, उसका उसे अहकार था। विद्यादाता अप्सरा के समझाने पर भी वीरमती की ईर्ष्या कम नही हुई थी। वह राजा चन्द को नष्ट-भ्रष्ट करके सम्पूर्ण राज्य सत्ता अपने हाथ मे लेना चाहती थी और इसके लिए उधेड़बुन करती रहती थी।



: २ :

परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई—वीरमती की दशा ऐसी ही थी। प्रथम तो वह स्वभाव से ही क्रूर, कुटिल एव अहकार की पिटारी थी, फिर दिव्य विद्याएँ मिल गयी और अब साम्राज्य की राजमाता भी बन गयी। 'करेला और नीम चढ़ा' की उक्ति यहाँ चरितार्थ हो गयी थी। एक दिन उसने राजा चन्द्र को एकान्त मे बुलाकर कहा—

"पुत्र! तुम्हारे पिताजी अभी कुछ दिन और यहाँ रहते तो तुम कुछ और वयस्क हो जाते। छोटी-सी उम्र मे ही तुम्हारे कच्चे कन्धो पर शासन का भार आ पड़ा है। लेकिन तुम चिन्ता मत करो। मेरे पास बहुत शक्तियाँ हैं। तुम्हारा सदा मगल होगा। अगर मैं चाहूँ तो इन्द्र का इन्द्रासन यहाँ ला सकती हूँ। तुम कहो तो आकाश के तारे तोड़ लाऊँ और सूर्य के घोड़े लाकर तुम्हारे रथ मे जोड़ दूँ। मैं चाहूँ तो देवागनाओ को तुम्हारी रानियाँ बना दूँ। मेरे कथन को गप्प मत समझना। मैं जो कुछ कह रही हूँ। सत्य ही कह रही हूँ। लेकिन यह तभी हो सकता है, जब तुम मेरे आज्ञानुवर्ती बनकर रहोगे। सदा मेरी ही बात मानोगे। अगर तुमने कभी मेरी अवज्ञा की या मेरे विरुद्ध कान भी हिलाया तो समझ लेना तुम्हारी खैर नहीं। प्रसन्न होने पर मै वरदान हूँ और अप्रसन्न होने पर साक्षात् मृत्यु। भूलकर भी मेरा दाँव दबाने की चेष्टा मत करना।"

राजा चन्द्र तो स्वभाव से ही सरल, विनम्र और अपने से बडो के प्रति आदर-भाव रखने वाला था। वीरमती की बात सुनकर चन्द्र राजा ने कहा—

"माता! तुम ऐसा क्यो कहती हो कि मैं कभी आपके विरुद्ध होने का विचार भी करूँगा? आप ही मेरी माता है, आप ही पिता हैं। आपके अलावा मेरा और कौन शुभेच्छु है? आप मेरी गुरुवत् हैं। जो पुत्र माता-पिता के वचनो मे सहज अनुरागी होता है, उसी का जीवन धन्य और सार्थक है। आपकी अवज्ञा की तो मै कल्पना भी नही कर सकता। मेरी ओर से आप निश्चिन्त रहिए। यह राज्य और प्रजा सब आपकी है। समस्त ऐश्वर्य की आप स्वामिनी हैं। मैं तो आपका सेवकमात्र हूँ।"

राजा चन्द्र के अनुकूल और मीठे वचन सुनकर राजमाता वीरमती का कलेजा ठण्डा हो गया और पुत्र को अपनी मुट्ठी मे समझ अपने महलो को लौट गयी।

राजा चन्द्र पुण्यात्मा जीव था। पुण्यकर्मो के प्रभाव मे उसे सुन्दर रूप, स्वस्थ शरीर और स्वर्ग का-सा वैभव मिला था। वह राजभक्त प्रजा का पालक था। उसे गुणावली-जैसी पति-परायणा, सेवाशील पत्नी मिली थी। उसका जीवन सब विधि सुखी था। गुणावली के साथ अपने जीवन की रिक्तता तथा अपूर्णता को पूर्ण करता था, राजा चन्द्र। काम-कला-प्रवीण गुणावली भी चन्द्रकुमार को स्वर्ग-सुख प्रदान करती थी। मनुष्य भोग का आनन्द भी योग के आनन्द के समान अनिर्वचनीय समझता है। अन्तर इतना है कि भोगो से कभी तृप्ति नही होती और योगानन्द प्राप्त करने के बाद अतृप्ति रहती ही नही। एक का सुख क्षणिक व दु खान्त है और दूसरे का निस्सीम सुखान्त।

थोड़े ही दिनों में राजा चन्द्र का यश दूर-दूर तक फैल गया था। उनकी सभा दर्शनीय और आदर्श मानी जाती थी। उसके चारण कवि राजसभा का रूपकात्मक वर्णन षट्ऋतुओं का आरोप करके करते थे, यथा—पहले सूर्योदय और फिर वर्षा ऋतु का सांगरूपक देखिए—

कामदेव के समान नव तरुण और रूपवान राजा चन्द्र सिंहासन पर इस तरह शोभायमान हो रहे थे, मानो—

उदित उदयगिरि मंच पर राजा बाल पतंग।
बिकसे सन्त सरोज सब हरषे लोचन भृंग॥

अर्थात् मानो राजसिंहासन (मंच) रूपी उदयाचल पर राजा चन्द्र रूपी बालरवि का उदय हुआ हो, जिसके उदय होने से सन्त और सज्जन रूपी कमल खिल गये हैं तथा नेत्र रूपी भ्रमर भी हर्षित हो रहे हैं।

इसी तरह राजसभा की छटा का मिलान वर्षा ऋतु से कीजिए—

को देखकर केसरिया रग की पिचकारी छूटने और अबीर गुलाल के झरने का आभास होता है। ऐसा लगता है वसन्त ऋतु ही सभा मे विराज रही है।

शरद् ऋतु की सुहानी छटा भी देखिए—

राजा चन्द्र के मुख से जो अमृत वचन निकलते हैं, उनको सभा के श्रोता अपने कानों रूपी सीप मे धारण कर लेते ह और परिणामस्वरूप उनको मुक्ताफल की प्राप्ति होती है। इस तरह शरद् ऋतु भी राजसभा मे विराजती रहती है।

हेमन्त का भी रग देखिए—

राजा चन्द्र की राजसभा मे अधीनस्थ राजा भेट लेकर आते हैं। उन भेटो और उपहारो को देख-देख कर किसानो के खलिहान का भ्रम होता है। इस तरह हेमन्त ऋतु की विद्यमानता दृष्टिगोचर होती है।

शिशिर ऋतु की ठिठुरन का भी रूप देखिए—

राजा चन्द्र की राजसभा मे नित्य नये राजा उनकी अधीनता स्वीकार करते है। इन राजाओ के मुख इस तरह मुरझाये हुए मालूम देते हैं, जैसे हिमपात से कमल मुरझा जाते हैं। अधीनस्थ राजा, चन्द्र राजा के भय से ऐसे कांपते है, जैसे शिशिर ऋतु मे वस्त्रविहीन देहधारी कांपता है। राजसभा के इस रूप मे और शिशिर ऋतु मे अन्तर ही क्या रह जाता है?

अब अन्त मे ग्रीष्म ऋतु का रूपक भी देखिए—

ग्रीष्म ऋतु मे मनुष्य को कहीं शान्ति नहीं मिलती। सब जगह ग्रीष्म की व्याकुलता ही मिलती है। ऐसे ही राजा चन्द्र के शत्रुओ को नगर, घर या वन मे—कहीं भी चैन नहीं मिलता।

जैसे गर्मी से व्याकुल जीव को किसी वृक्ष की शीतल छाया मे सुख मिलता है, वैसे ही इन शत्रुओ को भी राजा चन्द्र की छत्र-छाया मे अथवा उनकी शरण मे ही शान्ति मिलती है। इस दृश्य को देखकर ग्रीष्म ऋतु का भ्रम क्यो न होगा?

इस तरह एक ही राजसभा मे, एक ही साथ छहो ऋतुएँ सदा विद्यमान रहती है। इसके अतिरिक्त चन्द्र राजा की सभा मे छहो दर्शनो के मर्मज्ञ पाँच सौ पण्डित सदा शास्त्र और दर्शनो की चर्चा करते रहते थे। चार्वाक, सौगत-बौद्ध, वैशेषिक, सांख्य, नैयायिक और निर्ग्रन्थ धर्मानुयायी परस्पर वाद-विवाद द्वारा अपनी ही बात सिद्ध करने मे प्राणपण से प्रयत्नशील रहते थे। कभी-कभी यह वाद-विवाद बहुत उग्र भी हो जाता था। 'अन्धगजन्याय' मे सभी अपनी-अपनी बात को अन्तिम प्रमाण मानते थे। इसके अतिरिक्त कवि, लेखक, गायक, कथाकार भी राजा को विविध प्रकार की बातें सुनाते रहते थे। राजा चन्द्र भी गुणग्राही थे। वे ऐसे गुणी कलाकारो, विद्वानो और पण्डितो को धन देकर पूर्ण सम्मान करते थे। राजा चन्द्र की सभा इन्द्रसभा से किसी भी तरह कम न थी। अपनी सभा के मध्य वे ऐसे ही शोभित होते थे, जैसे तारागणो के मध्य शरद् ऋतु का चन्द्रमा शोभित होता है।

× × ×

एक दिन राजा चन्द्र अपने राजकाज मे लगे थे और रानी गुणावली अपने आमोद कक्ष मे सखियो के साथ मनोविनोद मे समय काट रही थी। रानी की सखियाँ व कुछ दासियाँ उसे चारो ओर से घेर कर बैठी थीं। कोई पंखा डुला रही थी, कोई इत्र की शीशी लिए खड़ी थी और कोई सुगन्धित केशर युक्त ताम्बूल बना रही थी, कोई रानी की सेवा मे हाथ जोड़े आज्ञा की

प्रतीक्षा मे खडी थी। कोई उबटन तैयार कर रही थी, कोई फूलो की माला गूँथ रही थी और कोई हँसी के चुटकुले सुना रही थी।

तभी दूर से वीरमती आती दिखायी दी। बाहर खडी एक प्रतिहारी ने गुणावली को सूचित किया—

"महारानी जी! राजमाता वीरमती आपके महलो की ओर पधार रही है।"

गुणावली सम्हल कर बैठ गई। हँसी-मजाक और मनो-विनोद का वातावरण गम्भीरता मे बदल गया। रानी गुणावली को सजग-सावधान देख एक अतरग दासी ने कहा—

"एक के ऊपर एक है। यदि हमारे ऊपर महारानी जी का शासन है तो महारानी जी के ऊपर राजमाता वीरमती है।"

दूसरी और दो पग आगे बढकर बोली—

"महारानी ही पर नही, महाराज चन्द्र पर भी उनका शासन है। महाराज भी तो उनके सामने हाथ बाँधे खडे रहते है।"

इतने मे वीरमती आ पहुँची। दासियाँ पक्तिबद्ध होकर राजमर्यादा के अनुसार अभिवादन करने लगी और आगे बढकर गुणावली ने सास वीरमती के चरण स्पर्श किए। तदनतर वीरमती को एक उच्चासन पर बिठाकर स्वय आज्ञा की प्रतीक्षा मे खडी रही। वीरमती ने कहा—"बैठो बहू!" गुणावली भी उनके सामने कुछ नीचे आसन पर बैठ गयी। दासियाँ आज्ञा की प्रतीक्षा मे थी। वीरमती ने गुणावली से कहा—

"बहू! मैं तुझसे अकेले मे कुछ बात करने आयी हूँ।"

गुणावती ने दासियों की ओर देखा और आँखों-ही-आँखों में बाहर चले जाने का इशारा किया। एक-एक करके सभी दासियाँ कक्ष से बाहर हो गयी। अब वीरमती ने अपनी वाणी को मुखरित किया। वह बोली—

"बहू! तू महलों की चारदीवारी में बन्द रहकर कैसे रह पाती है? क्या कभी तुझे घुटन नहीं होती?"

गुणावती ने सहज भाव में कहा—

"माताजी! मछली को पानी में क्या कभी घुटन होती है? मेरा स्थान तो आपकी छत्रछाया के नीचे बसा यह महल ही है। मेरे मन का स्थान तो स्वामी के चरण हैं। मुझे भला यहाँ घुटन क्यों होगी?"

वीरमती कुछ देर सोचती रही। फिर बोली—

भवन अमंगल दमन् ।' आज मेरे समस्त अदृश्य अमंगलो का दमन हो गया ।"

वीरमती ने गुणावली की और भी प्रशंसा की—

"बहू ! तेरी विनययुक्त बाते सुनकर मुझे किंचित् भी आश्चर्य नही होता, क्योकि चाँदनी चन्द्र से ही झरती है, सुधा की वर्षा सुधाकर ही कर सकता है, चन्दन ही शीतलता प्रदान करता है और कस्तूरी से ही सुगन्ध निकलती है । इसी तरह मधुर, मीठे अभिमान रहित, विनय-वचन गुणावली के मुँह से ही निकल सकते हैं ।

"बहू ! तू मुझे प्राणो के समान प्यारी है । मैं तेरे जीवन मे कोई भी अभाव नही देखना चाहती । तुझे अगर कोई कष्ट हुआ और तूने मुझे नही बताया तो मुझे बडा दुख होगा । चन्द्र और तुम मेरी दोनो आँखो के समान हो । तुम्ही दोनो मेरे जीवन की आशाएँ हो । तुम्हारे सिवा मेरा यहाँ कौन है ?

"बहू ! तेरा आचरण और व्यवहार देखकर मेरा यह विश्वास और भी पक्का हो गया है कि तू सदा मेरी आज्ञा का पालन करेगी । कभी मेरे विरुद्ध नही होगी । तू मेरी शक्तियो के बारे मे नहीं जानती । मेरे पास ऐसी विद्याएँ हैं कि मैं तुझे स्वर्ग की रानी बना सकती हूँ । क्षणमात्र मे ही आकाश-पाताल और इस पूरे विश्व की यात्रा करा सकती हूँ । अभी तूने देखा ही क्या है ? पुजारी की दौड मन्दिर तक ही सीमित है । राजमहल, भवनवाटिका, राजोद्यान और आभापुरी के बाजार, सो भी कभी-कभी ही तू देख पाती है । इनके अलावा बाहर क्या है, यह तुझे नहीं मालूम । मेरी समस्त विद्याएँ और दिव्य शक्तियाँ तेरे ही लिए हैं । तू मुझे तथा मेरी विद्याओ को अपनी ही समझ ।"

गुणावली भोली और सरल थी। वीरमती जो दाना फेंक रही थी, उस दाने का उद्देश्य गुणावली को फुसलाना और फँसाना है, इस ओर से वह अनभिज्ञ थी। अत वह सरल मन से ही वीरमती की बातें सुन-समझ रही थी। वीरमती ने पुन कहना शुरू किया —

"बहू! तू आभापुरी नरेश राजा चन्द्र की रानी है। तू भी अपने मन मे फूली न समाती होगी। लेकिन मुझे तो तेरा जीवन विषादमय लगता है। तुझे जीवन का सच्चा आनन्द प्राप्त नही है। लेकिन मैं तेरे अभाव की पूर्ति करूंगी। तू चिन्ता मत कर।"

गुणावली ने चौककर कहा—

"माताजी! यह आप क्या कह रही हैं? मुझे क्या कष्ट हो सकता है? वल्कि मैं तो यही समझती हूँ कि मेरे वरावर शायद ही कोई सुखी हो। भोग और सुख के सभी साधन मुझे प्राप्त हैं। साक्षात कामदेव के समान रूपवान और अपनी भुजाओ मे अपार शक्ति रखने वाले धीर-वीर आपके पुत्र मेरे प्राणाधार है। आप जैसी सास का स्नेह मुझे प्राप्त है। हाथी, घोडे, रथ, सेना, सेवक, रत्न, मणि-माणिक्य और आभापुरी का स्वर्गोपम वैभव—यह सव मेरे पास है। मुझे क्या कमी है? मेरे जीवन मे आनन्द नही है, यह आप कैसे कहती है? प्रात काल पति का मुख चन्द्र देखकर और उनका चरण स्पर्श कर जो आनन्द मुझे आता है, उसे मैं ही जानती हूं।"

वीरमती की वातो से गुणावली के मन मे कोई लालच और उत्सुकता नही हुई, और जव वह उल्टे वीरमती को ही पाठ पढाने लगी तो वीरमती ने बात वदलकर कहा—

"बहू! तू वास्तव मे वहुत भोली है। तू मेरी बात को

समझी ही नही। जो कुछ तेरे पास है, वह तो है ही। लेकिन इससे भी आगे तो बहुत कुछ है। मै तुझे यहाँ से आगे के सुखो से भी वंचित नही रखना चाहती। अगर तू कोई और देश देखती तो यह कहती कि इसके मुकाबले आभापुरी कुछ भी नही। चन्द्रकुमार मेरा बेटा कम सुन्दर नही, पर उससे भी ज्यादा रूपवान इस धरती पर पडे है। पर्वतो, वनो और नदियो का प्राकृतिक सौंदर्य तो तूने स्वप्न मे भी नही देखा होगा। अगर तू महलो से बाहर की दुनिया देखकर यहाँ लौटे, तब तुझे भान होगा ?"

"तू अभी तक निबौलियो को ही अगूर समझ रही है, लेकिन जब अगूर खायेगी, तब न जाने तेरा क्या हाल होगा ?"

वीरमती के कथन से गुणावली थोडी क्षुब्ध हुई। वीरमती के कथन मे उसे अपने स्वामी चन्द्र का अपमान महसूस हुआ। अत कुछ रुखाई से उसने वीरमती की बात काटी—

"माताजी ! आप ऐसी बात क्यो कहती है ? आपके बेटे के आगे मुझे तो सभी लोग तारागणो के समान लगते है। शेर एक ही होता है। मेरे पति के अलावा और भी शेर है, यह कदापि सम्भव नही। हाँ, शृगाल अनेक हो सकते है। कहाँ आपके प्यारे पुत्र चन्द्र और कहाँ और पुरुष ? वे तो मेरे स्वामी के चरणो की बराबरी भी नहीं कर सकते। जिसके द्वार पर हाथी झूम रहा हो, क्या वह गधे को देखने की इच्छा करेगा ? मेरे स्वामी, आपके पुत्र ही मेरे सर्वस्व है, जीवनाधार हैं। किसी और पुरुष को देखने की कल्पना करना भी मेरे लिए असम्भव है।"

वीरमती भी हार मानने वाली नही थी। उसने गुणावली के कथन का समर्थन करते हुए अपनी बात कही—

"बहू! तेरा कहना बिलकुल ठीक है। अपना पति कैसा ही हो, पत्नी के लिए वही सब कुछ है। मेरा बेटा रूप-लावण्य में सचमुच कामदेव ही है। लेकिन मेरे कहने का अभिप्राय तो तुझे देशाटन कराकर बाहरी चीजें दिखाने का था। चन्द्र सुन्दर है, आभापुरी वैभव-सम्पन्न है। पर यहाँ से बाहर भी ऐसा दर्शनीय है, जो यहाँ नहीं है। जब तू मेरे साथ बाहर चलेगी तो तेरा मन बाग-बाग हो जायेगा। तब तू स्वयं कहेगी कि मेरी सास ठीक ही कहती थी। इसमें बुराई भी क्या है? घड़ी भर में सारी दुनिया देखकर फिर घर आ जायेगी। किसी को कुछ पता भी न चलेगा और तुम्हें भी कुछ अलभ्य, अदृश्य और रम्य देखने को मिल जायेगा।

"बहू! तू मुझ-जैसी विद्यासम्पन्न सास पाकर भी कूपमण्डूक ही बनी रही तो तेरे समान अभागिन कौन होगी? मेरे रहते भी अगर तूने देश-विदेश की सैर नहीं की तो तेरा यह जीवन व्यर्थ ही गया। तू दिन-भर यहाँ बैठी-बैठी दासियों के बीच ही समय काटा करती है। रात सोकर गुजार देती है। तुझे यहाँ नाटक, खेल, कौतुक—कुछ भी नया देखने को नहीं मिलता। जो लोग नये-नये पर्वत, वन, झरने, नदियाँ, नगर, ग्राम, आदमी, वाद्य, संगीत और नई-नई कलाएँ देखते हैं, उन्हीं का जीवन धन्य है।

"बहू! मैं जानती हूँ कि तू भी यह सब देखना चाहती है। यहाँ महलों में बन्द रहकर तेरा मन घबराया करता है, पर झिझक, संकोच, राज-मर्यादा और भय के कारण तू अपने मन की बात मुझसे नहीं कह पाती। तू सभी बातों को चाहे मानती रह, पर मेरे रहते डर नाम की कोई वस्तु अपने पास मत फटकने दे। किसी का भी डर तेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।"

वीरमती की बात सुनकर गुणावली विचार मे पड गयी। नई-नई चीजो और नये-नये कौतुक, नगर तथा दृश्यो को देखने का उसका मन हुआ। गुणावली को चुप देखकर वीरमती समझ गई कि तीर निशाने पर जा लगा है। वह भी चुप रही और गुणावली को सोचने विचारने का अवसर दिया। थोडी ही देर बाद गुणावली को और अधिक उत्सुक करने के विचार से वीरमती ने पुन कहना शुरु किया—

"प्यारी बहू! इस ससार मे अश्वमुख, अश्वकर्ण, अकर्ण, गूटदन्त आदि अनेक प्रकार के मनुष्य होते हैं। लेकिन बिना देखे तू तो इनकी कल्पना भी नही कर सकती। प्रातः उठकर मेरे बेटे चन्द्र का चन्द्रवदन देखना, दास-दासियो की अहर्निश सेवा प्राप्त करना, अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण पहनना—इसी को तू सब कुछ मानती है। जो मेढक कुएँ से बाहर नही गया, वह क्या जाने कि तडाग, सरिता और सागर नाम की भी कोई चीज दुनिया मे है? तुझसे तो वे पक्षी ही अच्छे है जो थोडी-बहुत दूर आकाश मे उडकर फिर उसी डाल पर आ बैठते हैं। जैसे कोई दरिद्री गुड की ढेली पाकर ही सुखी हो जाता है। ऐसे ही तू चन्द्र को पाकर उसी मे केन्द्रित हो गई है।"

गुणावली वीरमती की चिकनी-चुपडी बातें बडे ध्यान से सुन रही थी और विचार कर रही थी—वास्तव मे मेरा जीवन कूप-मण्डूक जैसा ही है। लेकिन राजमर्यादा का उल्लंघन करके मैं महलो से बाहर जा भी कैसे सकती हूँ? मेरे स्वामी मुझे इस तरह सैर-सपाटे करने की आज्ञा भला क्यो देंगे?' मन की कठिनाई सास के सामने रखते हुए गुणावली बोली—

'पूज्य सासूजी! आपकी बात बिलकुल सच है। पर मैं

महलो से बाहर कैसे जा सकती हूँ ? मैं स्वच्छन्द होकर विश्व-भ्रमण कैसे कर सकती हूँ ? मेरी अवस्था तो उस मयूर जैसी है, जो नृत्य करते समय अपने परो को देखकर फूला नही समाता किन्तु जब अपने कुरूप—सुरमई रग के पैर देखता है तो रोने लगता है। एक वैभवशाली राजा की रानी होने का जो सुख मुझे प्राप्त है, उसके साथ पराधीनता का दु ख भी है—नारी तो पराधीन ही होती है। बचपन मे पिता के अधीन, जवानी मे पति के अधीन और बुढापे मे पुत्र के अधीन—तीनो अवस्थाओ मे स्त्री को बन्धन मे रहने का आदेश दिया गया है—

'कस विधि सृजी नारि जग माहीं।
पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।"

वीरमती का तीर निशाने पर लग गया था। लक्ष्य वेधा जा चुका था। अब तो सब कुछ वीरमती की मुट्ठी मे था। आज इतनी ही सफलता काफी थी। जल्दी मे काम बिगड जाता है। वीरमती ने सोचा—"अब गुणावली को अपनी देशाटन की इच्छा पकने का अवसर मिलना चाहिए। इसके मन मे घूमने की इच्छा जाग्रत हो चुकी है। दो-चार दिन बाद इसे बाहर निकलने पर भी राजी कर लूँगी। फिर तो जैसा मैं इसे नचाऊँगी, यह उसी तरह नाचेगी।" यह सोच वीरमती गुणावली को विचार मग्न देख उठकर चली गई। गुणावली भी फिर नित्य-कार्यो मे लग गई। चार-छह दिन इसी तरह बीत गये।

× × ×

आभापुरी से अठारह सौ योजन दूर विमलापुरी नामक एक नगरी थी। यह नगरी चारो ओर से दुर्लंघ्य घाटियो और उपत्य-

काओ से घिरी थी इसकी वास्तुशोभा वडी ही दर्शनीय थी। ऐसा मालूम पडता था, मानो इसके भवनो का निर्माण स्वय विश्वकर्मा ने ही अपने हाथो से किया हो। नगरी का शासक मकरध्वज भी प्रजावत्सल और वीर-धीर राजा था। मकरध्वज का महामात्य सुबुद्धि बहुत ही दूरदर्शी, चतुर साक्षात् बृहस्पति जैसा बुद्धि निधान था। बडी-से-बडी दुरूह उलझी हुई और गम्भीर समस्याओ को वह चुटकियो मे सुलझा देता था। विमलापुरी की प्रजा के लिए सुबुद्धि भी सोने मे सुगन्ध के समान था।

राजा मकरध्वज के प्रेमलालच्छी नाम की एक कन्या थी, जो रूप मे साक्षात् रम्भा, उर्वशी अथवा रति के समान थी। राजा मकरध्वज की इच्छा थी कि मेरी पुत्री को भी कामदेव के समान सर्व गुण-सम्पन्न वर मिलना चाहिए। वे बराबर इसी खोज मे रहते थे।

उन्ही दिनो सिन्धु नदी के तट पर बसे सिन्धु नामक देश मे एक राजा राज्य करता था। सिन्धु की राजधानी सिंहलपुरी थी। सिंहलनरेश राजा कनकरथ का मन्त्री जिसका कि नाम हिंसक था, बडा ही चतुर किन्तु साथ ही बडा ही धूर्त और मक्कार था। चालाकी और फरेब उसके रोम-रोम मे समाये हुए थे। सिंहलनरेश कनकरथ की रानी का नाम कनकवती था। उसकी कोख से एक पुत्र का जन्म हुआ था, जो सदा महलो मे ही गुप्त रहता था। उसके पास एक कपिला नाम की एक धाय ही रहती थी। रानी कनकवती और कपिला धाय के अलावा उसे किसी ने नही देखा था। सिंहलनरेश कनकरथ के आत्मज और कनकवती के इस अगजात का नाम था, कनकध्वज। कनकध्वज के बारे मे

चारो ओर ऐसी प्रसिद्धि फैली हुई थी कि उसका सौन्दर्य कामदेव को भी लज्जित करने वाला है। उसे किसी की नजर न लग जाए, इसलिए उसे सदा परदे मे ही रखा जाता है।

आते-जाते प्रवासी व्यापारियो के मुख से कनकध्वज की ऐसी चर्चा सुनकर विमलापुरी के राजा मकरध्वज ने निश्चय किया कि मैं अपनी प्यारी बेटी प्रेमलालच्छी का विवाह कनकध्वज के साथ ही करूँगा। राजा मकरध्वज ने अपने विश्वासी चार मन्त्री विवाह पक्का करने के लिए सिहलपुरी भेजे। चारो मन्त्री नारियल भेंट करके प्रेमलालच्छी का विवाह राजकुमार कनकध्वज के साथ पक्का कर आये। विवाह की तिथि भी निश्चित हो गई। सिहल-पुरी नरेश राजकुमार मकरध्वज को बन्द पालकी मे लेकर एक बहुत बडी बारात के साथ विमलापुरी पहुँचे।

विमलापुरी मे विवाह की तैयारियाँ बडे आडम्बर के साथ हुई। बन्दनवारो से सज्जित, मोतियो की मालाओ वाले मण्डप बनाये गए। वाद्य-सगीत और नाटक का भव्य आयोजन भी हुआ। एक बडे भव्य मण्डप मे सिहलपुरी से आयी बारात को ठहराया गया। एक अलग एकान्त मण्डप मे कनकध्वज की पालकी रखी हुई थी। पालकी के चारो ओर सिहल नरेश कनकरथ, विश्वस्त मन्त्री, रानी कनकवती और कपिला धाय—यही चार प्राणी थे। जहाँ-तहाँ सिहलनरेश के चतुर स्वामिभक्त विश्वस्त प्रहरी भी तैनात थे। विमलापुरी की प्रजा, राजा मकरध्वज तथा अन्य सभी लोग बडी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे कि जब वर कनकध्वज अश्व पर सवार होकर विवाह मण्डप मे पधारेंगे तो उनके रूप को देखकर हम भी अपने नेत्रो को सफल करेंगे। ज्यो-

ज्यो विवाह की वेला निकट आती जा रही थी, त्यो-त्यो दर्शको की उत्सुकता बढती जा रही थी।

× × ×

वीरमती को गुणावली से मिले जब चार-छह दिन बीत गये तो वह पुन उसके पास पहुँची। इस बार गुणावली पहले से अधिक आदर-सम्मान और प्रेम से मिली। वीरमती के प्रति उसका रुझान अब पहले से अधिक हो गया था। इस बार वीरमती को किसी भूमिका की आवश्यकता नही थी। दोनो मे बडी घुलमिलकर बाते होने लगी। बातो-ही-बातो मे वीरमती ने गुणावली से कहा—

"बहू! तूने स्त्री मात्र को उस दिन पराधीन बताया था। अपनी पराधीनता का विचार कर तू बहुत मायूस हो रही थी। पर याद रख, नारी अगर अबला है तो सबला भी है। जो काम स्त्री कर सकती है, वह पुरुष कदापि नही कर सकते। मेनका नाम की अप्सरा भी एक स्त्री ही थी, जिसने विश्वामित्र का तप भग कर दिया था। स्त्री चाहे तो समुद्र को अपनी अजलि मे भर सकती है। यदि स्त्री प्रसन्न रहे तो कामिनी और कल्पलता है और अगर रुष्ट हो जाए तो फिर साक्षात् रणचण्डी बन जाती है। स्त्री शक्तिरूपा है। पुरुष सदा शक्ति की ही उपासना करते है। लक्ष्मी भी स्त्री है। कौन पुरुष लक्ष्मी के लिए भाग-दौड नही करता? विद्या भी स्त्री रूप है। कौन प्राणी विद्यावान बनना नही चाहता? स्त्री स्वभाव से ही शक्तिरूपा है। उसे शक्ति का अर्जन नही करना पडता।"

कुछ देर मौन रहने के बाद वीरमती ने पुन कहा—

"बहू! बस, तुझे तो अपनी शक्ति को पहचानने की जरूरत

है। सिंह-शावक को आखेट करना, हाथी का मस्तक विदीर्ण करना कौन सिखाता है? तुझे भी कहीं से शक्ति प्राप्त करने की जरूरत नहीं है। लेकिन मैं तुझसे यह कभी नहीं कहती कि तू मेरे पुत्र चन्द्र का मुकाबला करे, अपनी शक्ति से उसे परास्त करे या उस पर अपना स्वामित्व स्थापित करे। मैं तो तुझे ऐसी युक्ति बताती हूँ कि सांप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। अर्थात् मेरी विद्याओं में इतनी शक्ति है कि तू दुनिया-भर की सैर करके यहाँ आ जायेगी और चन्द्र को कुछ पता भी न चलेगा।"

गुणावली का हृदय डोल गया। उसके मुँह में पानी भर आया। उसने पूछा—

"माताजी! यह सब कैसे होगा? अगर किसी तरह 'उनको' मालूम पड भी गया तो फिर क्या होगा?"

वीरमती ने कहा—

"बहू! पहली बात तो यह है कि उसे कुछ भी मालूम नहीं पड़ेगा और अगर मालूम भी पड जाय तो उससे डरने की जरूरत नहीं है। मेरे रहते वह चूं भी नहीं कर सकता। तू हर तरह से निश्चिन्त रह। हम रात को ही यहाँ से चलेंगी और सुबह सबके जगने से पहले ही यहाँ आ जायेंगी।"

गुणावली पूरी तरह से वीरमती के जाल में फँस चुकी थी। उसको यह निश्चय हो गया कि अगर मेरे स्वामी को कुछ पता भी चल गया तो वे मुझे कुछ भी नहीं कहेंगे। अतः प्रसन्नता व्यक्त करते हुए वह बोली—

"माताजी! मैं तो पूरी तरह आपके ही भरोसे हूँ। जब आप जैसी समर्थ विद्यावती का हाथ मेरे सिर पर है तो फिर मुझे किसी का डर नहीं है। मैं सदा आपकी ही आज्ञा मानूंगी। आप

मुझे जहाँ भी ले चलना चाहे, मैं चलने को तैयार हूँ। लेकिन किसी मन्त्र द्वारा पहले आप अपने पुत्र को स्ववश मे कर लीजिए, ताकि मैं निश्चिन्त होकर दुनिया की सैर कर सकूँ। अगर जगत-कौतुक देखते समय मन मे चिन्ता रही तो फिर देखने मे कुछ भी आनन्द नही आयेगा।"

वीरमती ने गुणावली को आश्वस्त करते हुए कहा—

"प्यारी बहू ! तू चिन्ता क्यो करती है ? मेरे पास बहुत-सी विद्याएँ हैं। विद्याओ के बल से सब मेरी मुट्ठी मे हैं। मेरे पास अवस्वापिनी नाम की जो विद्या है, उसकी सहायता से मैं पूरे नगर को पत्थर की तरह जड बना सकती हूँ, बेचारे चन्द्र की तो हस्ती ही क्या है ?

"बहू ! मैं आज ही तुझे एक उत्सव दिखाना चाहती हूँ। यहाँ से अठारह सौ योजन दूर विमलापुरी नामक नगरी है। उसके सौन्दर्य के सामने आभापुरी का सौन्दर्य तो कुछ भी नही है। विमलापुरी के राजा मकरध्वज की रति के समान सुन्दर कन्या प्रेमलालच्छी का विवाह आज सिंहल के राजकुमार कनकध्वज के साथ होने जा रहा है। आज मै तुझे कनकध्वज और प्रेमलालच्छी का विवाह-उत्सव दिखाऊँगी।"

गुणावली ने चकित होकर पूछा—

"लेकिन माताजी ! अठारह सौ योजन दूर जाना और लौटना, छत्तीस सौ योजन की यात्रा पूरी करके एक ही रात मे लौटकर कैसे आ पायेगी ?"

वीरमती ने हँसकर कहा—

"बहू ! पूरी रामायण सुनने के बाद भी तू पूछती है कि सीता कौन थी ? मेरी विद्याओ से तू अभी तक अनजान है"

इसीलिए तेरे मन मे बार-बार शकाएँ उठती है। मेरे पास गगन-गामिनी विद्या है। उसके बल पर मैं लाखो योजन की दूरी एक ही रात मे तय कर सकती हूँ। विमलापुरी जाना और लौटकर आना तो मेरे एक पग रखने के समान है।"

वीरमती की बात सुनकर गुणावली बहुत प्रसन्न हुई। लेकिन एक दूसरी कठिनाई बताते हुए पुन बोली—

"माताजी ! आपके बेटे राज सभा मे गये हुए है। वे शाम से पहले नही लौटेंगे। उनके खाना खाने और सोने मे ही काफी रात बीत जायेगी ।"

बीच मे ही वीरमती बोली—

"बहू ! मैं तेरी बात समझ गयी। अब तू कुछ मत कह। मेरी विद्या का चमत्कार तू पहले अभी देख ले। देख, आज मेरा बेटा चन्द्र शाम होने से बहुत पहले ही महलो को लौट आयेगा। मैं अपने विद्या-बल से दिन मे ही रात कर दूँगी। तू मेरे हाथो का कमाल देखती तो जा।"

अब गुणावली बिलकुल निर्भय और निश्चिन्त हो गई। समय के फेर मे पड़कर और पूर्व कर्मो से प्रभावित होकर प्राणी अपने अहित मे ही हित समझता है। उसकी बुद्धि उस ओर दौड़ती है। जिस कार्य से उसका अनिष्ट होना होता है, उसी ओर उसकी रुचि होती है। चोर जानता है कि चोरी करने का परिणाम बहुत बुरा होता है, फिर भी कर्म प्रभावित प्रेरणा से विवश होकर वह चोरी करता है। यही हाल गुणावली का था। वह नारियो का आदर्श, नम्र, भोली, सेवाशील, धर्मनिष्ठ, पतिव्रता और सब गुणसम्पन्न नारी थी, पर आज वह वीरमती के जाल मे फंसी

फँस गई थी कि अपने पति और जीवनाधार राजाचन्द को भी धोखे मे रखना चाहती थी।

गुणावली सोच रही थी कि अगर आज दिन मे ही रात हो जाए और मेरे स्वामी समय से पहले ही महलो को वापस आ जायें तो मै समझूंगी कि मांजी की विद्याओ मे दिव्य शक्ति है। फिर तो मैं अपने स्वामी के जागरण से पहले ही विमलापुरी से लौट आऊँगी। लेकिन अगर बीच मे ही उनकी आँख खुल गई और मुझे महलो मे न पाया तो ? तो इसकी भी क्या चिन्ता है ? इसका भी कोई-न-कोई उपाय सासूजी अवश्य करेंगी।

अब गुणावली बडी आतुरता से चन्द्रकुमार के लौटने की प्रतीक्षा करने लगी। उधर वीरमती अपने महलो मे पहुँची और एक विद्या सिद्ध करने बैठ गयी। थोडी ही देर बाद उक्त विद्या का अधिष्ठाता देव प्रकट हुआ। उसने वीरमती से अपने आवाहन का प्रयोजन पूछा तो वीरमती ने कहा—

"हे देव ! आप कोई ऐसा उपाय करें, जिससे मेरा पुत्र दिन मे ही राजसभा विसर्जित करके महलो मे आ जाये।"

वीरमती की इच्छा सुन देव चला गया और उसने ऐसा कौतुक किया कि बिना ऋतु के ही आकाश मे काली घटाएं घिर आईं। चारो ओर मेघान्धकार छा गया। दिन मे ही रात हो गई और मूसलाधार पानी बरसने लगा। सघन अन्धकार के कारण घर-घर मे दीपाधारो पर दीपक आलोकित हो उठे। ऐसा वातावरण बदला कि लोग भूल ही गये कि कुछ देर पहले दोपहर का मार्तण्ड चमक रहा था। सभासद् घर जाने के लिए अधीर हो उठे। राजा चन्द्र ने तुरन्त सभा विसर्जित की और महलो

को वापस आ गया। गुणावली ने नित्य की तरह राजा चन्द्र का उठकर स्वागत किया—

"स्वामी! आज समय से पहले ही आप सभा से कैसे उठ आये? आपके शीघ्र आगमन से यद्यपि मुझे अपार प्रसन्नता हो रही है, फिर भी मन मे आशका है कि आपके जल्दी पधारने का कारण कही तबियत खराब होना तो नही है?"

"नही, ऐसी कोई बात नही।" राजा चन्द्र ने कहा।

"आज असमय मे तूफान आ जाने के कारण सभा को समय मे पहले विसर्जित करना पडा। बिना ऋतु की वर्षा अच्छी नही होती। इसीलिए थोडा-सा चित्त उद्विग्न है।"

गुणावली ने तुरन्त अपने हाथो से शय्या तैयार की। राजा को भोजन कराया और उसने विश्राम करने का आग्रह किया। राजा चन्द्र लेट गया और गुणावली उसके चरण चांपने लगी। आज गुणावली के हर व्यवहार, स्वागत-सत्कार तथा हाव-भावो मे कपट का मिश्रण था। सच्चे स्नेह रूपी दूध मे कपट रूपी खटाई की एक बूंद भी हानिकारक होती है। गुणावली के व्यवहार मे सहजता का लोप हो गया था। यद्यपि वह बहुत सतर्क थी कि कोई अस्वाभाविक व्यवहार न होने पाये। फिर भी उसके चेहरे पर आतुरता, चचलता और शीघ्रता के चिह्न स्पष्ट दीख पडते थे।

हर विचार का अपना एक रग और एक आकृति होती है। मन मे उठे विचारो के रग और आकृति चेहरे पर आ जाती है। देखने वाले पारखी उसे देख लेते है। राजा चन्द्र गुणावली के हाव-भावो को देखकर समझ गया कि आज की गुणावली वह वाली गुणावली नही है। आज वह किसी धुन मे है और मुझसे कुछ

छिपाना चाहती है। उत. कुछ जानने के विचार से राजा चन्द्र झूठ-मूठ को ही गहरी नींद मे सो गया। गुणावली चुपचाप उठी और कमरे से बाहर आकर वीरमती से बातें करने लगी। चन्द्र राजा भी दबे पांव गुणावली के पीछे-पीछे आया और किवाड की ओट मे खडा होकर सास-बहू की बाते सुनने लगा। गुणावली वीरमती ने कह रही थी—

"माताजी! कस्तूरी-केशर मिश्रित पान खिलाकर मैंने स्वामी के चरण चापे, सिर मर्दन किया और वे सो गये। ठड के कारण अब वे मुंह ढक कर सो रहे हैं। थोडी-बहुत देर की तो कोई चिन्ता नही। लेकिन अगर वे बीच मे जग गये तो सब भण्डाफोड हो जायेगा। अत अब आप इस समस्या का भी कोई सहज हल निकालिए।"

गुणावली की कपट भरी बातें सुन राजा चन्द्र सन्नाटे मे आ गये। सोचने लगे—'गुणावली के चेहरे की अस्थिरता और उतावलापन देखकर मुझे पहले ही आभास हो गया था कि यह किसी के कुसग मे पड गई है। गुणावली पहले तो कपटाचारिणी नही थी। पर माता वीरमती के कुसग ने इसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी है। सम्भव है, इसका किसी से प्रेम हो गया हो, और मुझसे छिपकर अपने प्रेमी से मिलने जा रही हो। अब तो देखना यह है कि यह आगे चलकर क्या गुल खिलाती है।'

इधर गुणावली की बात सुनकर वीरमती ने कहा—

"प्यारी बहू! तू भवन वाटिका मे से सफेद कणेर की छडी ले आ। मैं उसे अभिमन्त्रित कर दूंगी। तू धीरे-धीरे तीन बार कणेर की छडी को घुमाकर सोते हुए चन्द्र के स्पर्श कर देना। वह ऐसा सो जायेगा कि जब तक तू उसके पुन छडी नही मारेगी,

तब तक वह नही उठेगा। इसके बाद मैं पहरेदारो तथा समस्त नगरी को बेहोश कर दूँगी। सुबह आकर ही मैं उन सबकी निद्रा भग करूँगी। किसी को कुछ भी पता नही चलेगा। इसके बाद तू सीधी राजोद्यान को चली जाना। राजोद्यान मे रथ-मार्ग के किनारे जो पुराना आम्र वृक्ष है, उस पर बैठ जाना। उसी वृक्ष-विमान पर बैठकर हम दोनो विमलापुरी जायेगी।"

गुणावली भवन-वाटिका (गृह-उद्यान) मे कणेर की छडी लेने चली गई और इधर राजा चन्द्र ने झटपट कपडो को लपेटकर मानवाकृति का रूप देकर पलग पर सुला दिया और ऊपर से चादर ढँककर चुपचाप बाहर आया। तदनन्तर दबे पाँव सीधा राजोद्यान पहुँचा। आम्रवृक्ष के कोटर मे छिपकर बैठ गया। कोटर मे बैठा-बैठा राजा चन्द्र गुणावली और वीरमती के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा।

तू कणेर की छडी मारेगी। अब तू देख, मैं समस्त आभापुरी को कैसे निद्रामग्न करती हूँ।"

यह कहने के अनन्तर वीरमती ने गधी का रूप धारण किया और जोर-जोर से रेंकने लगी। उसका स्वर नाद सुनते ही सब प्रहरी और नगर-निवासी गहरी नींद मे बेसुध हो गए। जो जहाँ जैसी स्थिति मे था, वह वहीं अचेत हो गया। यह निद्रा एक प्रकार की मूर्च्छा ही थी। नगर मे कुछ भी होता रहे, वीरमती के उठाये बिना अब कोई नही उठ सकता था।

इसके बाद दोनो बाहर आयी। वीरमती अपने मूल रूप मे आ चुकी थी। दोनो राज-उद्यान मे पहुँची और पूर्व-संकेतित आम्र वृक्ष पर चढ गयी। राजा चन्द्र उसके कोटर मे पहले से ही छिपा बैठा था। वृक्ष पर बैठते ही वीरमती ने गुणावली से कहा—

"देख, अब हम क्षणमात्र मे ही विमलापुरी पहुँचेंगे। अगर तू इसी तरह मेरी बाते मानती रही तो तुझे दूर-दूर के सैर-सपाटे कराऊँगी। घूम-घूमकर दुनिया दिखाऊँगी।"

कोटर मे बैठा चन्द्र राजा सोच रहा था—'मुझे तो अब भी गुणावली भोली और सरल लगती है। वास्तव मे माताजी ने इसे फुसला लिया है। भोली होने के कारण वह उनकी बातो मे आ गई है। अब जो होगा, सो देखा जावेगा।' इधर ऊपर बैठी वीरमती ने कणेर की छडी का प्रहार आम्र वृक्ष पर करते हुए कहा—

"तरुवर रसाल! अब आभापुरी की धरती से नाता तोड और हमे आकाश मार्ग से विमलापुरी ले चल।"

वीरमती के यह कहते ही आम्र वृक्ष जड सहित उखड गया और तीनो प्राणियो को लेकर आकाश मे उडने लगा। वीरमती

और गुणावली चारों ओर के दृश्य मुक्त नेत्रों से देख रही थी और कोटर में बैठा राजा चन्द्र कभी-कभी किसी अवलोकनीय दृश्य की आड़ी-तिरछी झलक ही देख पाता था और कभी उस झलक से भी वंचित रह जाता था। आम्र वृक्ष की गति देव-विमान की गति को भी मात कर रही थी। पलक मारते ही कोई दृश्य सामने आता था और आँखों से ओझल हो जाता था। क्षितिज-मण्डल चाँदनी से घिरा हुआ था। सामान्य रूप से वन, उपवन, पर्वत आदि के दृश्य गुणावली स्वयं ही देखती जाती थी और विशेष दृश्यों का परिचय वीरमती देती जा रही थी। वीरमती पहले से ही संकेत कर-कर के बताती जाती थी—

"देखो बहू! नीचे जो पतली-सी श्वेत रेखा खिंची हुई है, वही पुण्य-सलिला गंगाजी हैं और वह देखो यह कालिन्दी बह रही है। अब देखो, वह अष्टापद पर्वत भी आ गया। इसके बाद ही सम्मेतशिखर आ रहा है। वह देखो सम्मेतशिखर आ भी गया। इस शिखर पर अनेक तीर्थंकर मोक्ष पधारे हैं। इसी क्रम में अर्बुदाचल, वैभारगिरि और सिद्धाचल भी देखती चलो। इन पर्वतों पर अनेक मुमुक्षुओं ने साधना करके सिद्ध पद प्राप्त किया है।"

बीच बीच में और भी दृश्य आये। गिरनार पर्वत भी आया।

पर्वतों की शृंखला समाप्त हुई तो लवण सागर आया। अथाह जलराशि को देखकर गुणावली कुछ सिहर उठी। वीरमती ने कहा—

"बहू! तू डरती क्यों है? इस वृक्ष पर से कोई गिर नहीं सकता। यही तो विद्या का प्रभाव है। अब तू इस लवणसमुद्र को देख [illegible] इस समुद्र में नाना रत्नों का [illegible] है।"

बातें करते और दृश्यावलियाँ देखते हुए दोनों सास बहू विमलापुरी के निकट पहुँच गईं। दूर से ही विमलापुरी का दृश्य देखकर गुणावली गद्‌गद् हो गई। पूरी नगरी रत्नदीपों से जगमगा रही थी। विवाहोत्सव के कारण वहाँ आनन्द-सागर लहरा रहा था। नगरी के चारों ओर शोभाशाली फलयुक्त वृक्षों वाले छोटे बड़े उद्यान, नगर के बीचोबीच सरोवर, राजमार्ग और पण्य-शालाएँ दर्शकों का मन मोह रही थीं। इसे देखकर गुणावली को



वीरमती गुणावली को एक-एक बात बता रही है।

और गुणावली चारों ओर के दृश्य मुक्त नेत्रों से देख रही थी और कोटर में बैठा राजा चन्द्र कभी-कभी किसी अवलोकनीय दृश्य की आड़ी-तिरछी झलक ही देख पाता था और कभी उस झलक से भी वञ्चित रह जाता था। आम्र वृक्ष की गति देव-विमान की गति को भी मात कर रही थी। पलक मारते ही कोई दृश्य सामने आता था और आँखों से ओझल हो जाता था। क्षितिज-मण्डल चाँदनी से घिरा हुआ था। सामान्य रूप से वन, उपवन, पर्वत आदि के दृश्य गुणावली स्वयं ही देखती जाती थी और विशेष दृश्यों का परिचय वीरमती देती जा रही थी। वीरमती पहले से ही संकेत कर-कर के बताती जाती थी—

"देखो बहू! नीचे जो पतली-सी श्वेत रेखा खिंची हुई है, वही पुण्य-सलिला गंगाजी हैं और वह देखो यह कालिन्दी बह रही है। अब देखो, यह अष्टापद पर्वत भी आ गया। इसके बाद ही सम्मेतशिखर आ रहा है। वह देखो सम्मेतशिखर आ भी गया। इस शिखर पर अनेक तीर्थंकर मोक्ष पधारे है। इसी क्रम में अर्बुदाचल, वैभारगिरि और सिद्धाचल भी देखती चलो। इन पर्वतों पर अनेक मुमुक्षुओं ने साधना करके सिद्ध पद प्राप्त किया है।"

बीच बीच में और भी दृश्य आये। गिरनार पर्वत भी आया।

पर्वतों की शृंखला समाप्त हुई तो एक सागर आया। अथाह जलराशि को देखकर गुणावली कुछ झिझक उठी। वीरमती ने कहा—

"बहू! तू डरती क्यों है? इस वृक्ष पर से कोई गिर नहीं सकता। यही तो विद्या का प्रभाव है। अब तू इस लवणसमुद्र को देख। दो लाख योजन लम्बे इस समुद्र में नाना रत्नों का अक्षय भण्डार है।"

बातें करते और दृश्यावलियाँ देखते हुए दोनो सास बहू विमलापुरी के निकट पहुँच गई। दूर से ही विमलापुरी का दृव्य देखकर गुणावली गद्गद् हो गई। पूरी नगरी रत्नदीपो से जगमगा रही थी। विवाहोत्सव के कारण वहाँ आनन्द-सागर लहरा रहा था। नगरी के चारो ओर शोभाशाली फूलयुक्त वृक्षो वाले छोटे बडे उद्यान, नगर के बीचोबीच सरोवर, राजमार्ग और पण्यशालाएँ दर्शकों का मन मोह रही थी। इसे देखकर गुणावली को



भी लगने लगा कि आभापुरी का सौंदर्य अपनी जगह है और विमलापुरी की कुछ बात ही और है !

वीरमती के सकेत से ही नगरी के निकट एक उद्यान मे आम्र वृक्ष आरोपित हो गया। गुणावली और वीरमती वृक्ष से नीचे उतरी और राजप्रासाद की ओर चल दी। कोटर से निकल कर राजा चन्द्र भी दोनो के पीछे पीछे चल पडा। मानो, पाप-पुण्य रूपी क्रियाओ के पीछे-पीछे उनका बन्ध-परिणाम भी अदृश्य होकर चल रहा हो। वीरमती और गुणावली जनसमूह मे ऐसे घुलमिल गई, जैसे सागर मे विविध नदियो का जल मिल जाता है। वीरमती घूम-घूम कर गुणावली को नगरी की शोभा दिखाने लगी और राजा चन्द्र उनसे अलग होकर विवाहोत्सव मे जाने लगा। नगरी का भ्रमण करके दोनो साम-वट विवाहमण्टप मे बैठ गई और गायन-वादन के कार्यक्रम मे सम्मिलित हो गई। वर-वधू के आगमन मे कुछ ही समय की देर थी। सभी के नेत्र वर-वेश मे राजकुमार कनकध्वज को देखने के लिए लालायित थे।

वीरमती और गुणावली तो बिना किसी विघ्न-बाधा के विवाहमण्डप मे पहुँच गई। किन्तु राजा चन्द्र ने जैसे ही नगर मे प्रवेश किया कि एक सतर्क प्रहरी ने उन्हे झुककर अभिवादन किया और बडी विनम्र वाणी मे बोला—

"आभानरेश राजा चन्द्र ! आपकी जय हो ! यहा पधार कर आपने हम लोगो पर बडी कृपा की। आप हम डूबते हुओ को बचाने के लिए नाव बनकर आ गये। अब कृपापूर्वक आप मेरे साथ चलिए। सिंहलपुरी के राजा महाराज कनकरथ आपके दर्शनो के लिए व्याकुल हो रहे हैं।

प्रहरी की ऐसी चक्कर मे डालने वाली बाते सुनकर राजा

चन्द्र विस्मय मे डूब गये। वे सोचने लगे—'इस व्यक्ति ने मुझे कैसे पहचाना? कहाँ अठारह सौ योजन दूर आभापुरी और कहाँ सिंहलपुरी? सिंहलपुरी से आये राजा को क्या पता था कि मैं यहाँ विमलापुरी मे आऊँगा? यह क्या चक्कर है?' कुछ क्षण रुक कर चन्द्र ने पुन सोचा कि कुछ भी हो, इसने पहचाना तो ठीक ही है। भरसक कोशिश करके मुझे तो अपने को छिपाना चाहिए। अगर मैंने भी यह स्वीकार कर लिया कि मैं आभापुरी का राजा चन्द्र ही हूँ तो बडे सकट मे फँस जाऊँगा। गुणावली और माता वीरमती मुझसे पहले ही आभापुरी पहुँच जायेगी और मै यही घिर जाऊँगा। फिर न जाने कब पहुँचना होगा और गुणावली तथा माताजी सारा रहस्य जान जायेगी। मुझे भी तो उन्ही के साथ लौटना है।'

राजा चन्द्र खडे-खडे विचार करते रहे। उन्हे मौन देख प्रहरी ने पुन आग्रहपूर्वक कहा—

"राजन्! अब ज्यादा सोच-विचार मत कीजिए। आपकी प्रतीक्षा मे एक-एक पल युगो के बराबर बीता है। हमारे राजा सिंहलपति आपके दर्शनो के लिए छटपटा रहे हैं। अब आप ही सिंहलपुरी को बचाने मे समर्थ है।"

राजा चन्द्र ने दृढता से कहा—

"अरे भाई! तुम्हे भ्रम हो गया है। मैं आभानरेश नही हूँ। मैंने तो राजा चन्द्र की सूरत भी नही देखी। भला सोचो, अठारह सौ योजन की दूरी तय करके राजा चन्द्र यहा कैसे आ सकता है?"

प्रहरी ने भी दृढता के साथ कहा—

"महाराज! हमे बिल्कुल भ्रम नही है। आप भला कैसे छिप सकते है? आप ही राजा चन्द्र हैं। क्या कभी सूरज छाली

की ओट मे छिप सकता है। क्या कस्तूरी की गन्ध को दबाया जा सकता है ? आप अपने को छिपाने की लाख कोशिश करें, पर हमारा तो विश्वास अटल है। आप शीघ्र ही सिहलनरेश के पास पधारिये। आपकी यह कृपा हमारे लिए जीवनदान ही होगी।"

यह कह प्रहरी ने राजा चन्द्र का हाथ पकडा। राजा चन्द्र ने उससे अपना हाथ छुडाकर कहा—

"भाई ! तू मुझे व्यर्थ ही कहाँ घसीट रहा है ? मुझे घर जाने दे। आज मुझे जगल से लौटने मे देर हो गई है। मेरी माता मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी। मैं तो इसी नगरी का रहने वाला हूँ। मैं न तो सिहलनरेश को जानता हूँ और न आभापुरी के राजा चन्द्र को। तुम व्यर्थ ही मेरा समय खराब कर रहे हो।"

प्रहरी ने फिर आग्रह किया—

"महाराज ! आप जैसे धर्मनिष्ठ प्रजापालक ही जब झूठ का आवरण लेकर अपने को छिपाने का प्रयत्न करेंगे तो यह धरती रसातल को चली जायेगी। मुझे भ्रम हुआ है, इसका तो प्रश्न ही नहीं है। आज की लाज आपके ही हाथ है। हमारे राजा की डूबती नैया को आप ही पार लगायेंगे।"

इतने मे और भी लोग वहाँ आ गए और राजा चन्द्र की जय, आभानरेश की जय कहकर चन्द्र राजा का अभिवादन करने लगे। अब तो राजा चन्द्र बडे चक्कर मे पडे। उन्होंने सोचा, 'अगर कहीं इस बखेडे का पता गुणावली और माता वीरमती को लग गया तो बडा अनर्थ हो जायेगा, इसलिए चुपचाप इन सबके साथ चलने मे ही भलाई है। आखिर देखें तो सही कि सिहल-नरेश कनकरथ का ऐसा कौन-सा काम है जो मेरे बिना अटका

पड़ा है ।' यह सोच चन्द्र राजा चुपचाप चल दिये । एक मण्डप मे सिंहलनरेश, कनकरथ तथा महामन्त्री हिंसक भी राजा चन्द्र की प्रतीक्षा कर रहे थे। दूर से चन्द्र राजा को अपनी ओर आते देख मन्त्री हिंसक ने उठकर उनका स्वागत किया और बडी मीठी तथा विनययुक्त वाणी मे इस प्रकार बोला—

"आभापुरी के चन्द्र ! आपने यहाँ आकर हमे अमृत दान दिया है । आपकी एक मामूली-सी कृपा से हम सबके प्राण बच जायेंगे । अब आप हमारे महाराज सिंहलपति से मिलिए । वे आपके दर्शनो के लिए बहुत तड़प रहे हैं ।"

राजा चन्द्र को अब इस बात से ज्यादा परेशानी नही थी कि इन लोगो ने मुझे पहचान कैसे लिया, बल्कि इस बात का बड़ा आश्चर्य और जिज्ञासा थी कि ऐसा कौन-सा काम है, जिसे मैं पूरा कर दूँ तो इन सबके प्राण बच जायेंगे । कुछ भी हो, राजा चन्द्र इस बखेडे मे पडना नही चाहते थे । हिंसक नामक मन्त्री के फन्दे से निकलने के लिए उन्होने उससे कहा—

तुम सब लोग सिरफिरे और धूर्त मालूम पडते हो । सभी की ऐसी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है कि सब मुझे चन्द्र ही समझ रहे हैं । मैंने तुमको कभी देखा तक नही । तुम्हे अगर चन्द्र से ही काम है तो चन्द्र के पास जाओ । मुझे क्यो परेशान करते हो ? आखिर तुम्हारे पास क्या प्रमाण है कि मैं ही राजा चन्द्र हूँ ? निश्चय ही तुम सब भ्रम मे हो ।"

मन्त्री हिंसक ने कहा—

"हे कृपालु राजा ! आप हम पर क्रोध न करे। हम अकारण ही आपको राजा चन्द्र नही समझ रहे । हमारी कुलदेवी की वाणी कभी मिथ्या नही हो सकती । राजा चन्द्र की जो-जो पह-

चान उन्होने वताई थी, उन सभी के अकाट्य प्रमाणो के आधार पर हम आपको राजा चन्द्र कह रहे हैं।

"हे आभापति ! हमारी कुलदेवी ने कहा था कि जिस दिन हमारे राजा सिंहलपति अपने कुमार कनकध्वज का विवाह विमलापति राजा मकरध्वज की कन्या प्रेमलालच्छी के साथ करने वरात लेकर विमलापुरी आयेंगे, उसी दिन दो स्त्रियो के साथ आम्रवृक्ष के कोटर मे बैठकर राजा चन्द्र भी विमलापुरी आयेंगे। हे राजन् ! आज सूर्यास्त से ही हमारे आदमी स्थान स्थान पर लगे हुए थे। आपको कोटर से निकलते हमारे आदमियो ने देखा और उसी आधार पर हमारे द्वारपाल ने आपको राजा चन्द्र के रूप मे अभिवादन किया। अब आप क्रोध को छोडिए और अपनी परो-पकारीवृत्ति के द्वारा हमे सकट से उवारिये। आप निश्चित रहिए हम आपको ज्यादा कष्ट नही देंगे।"

हिंसक की रहस्यमयी वाते सुनकर राजा चन्द्र ने सोचा कि अब अपने को छिपाने मे कोई लाभ नही। यह सोच आखिर उसने स्वीकार किया कि वह राजा चन्द्र ही हैं। अतः वे मन्त्री हिंसक के साथ सिंहलपति के पास पहुचे। सिंहलपति कनकरथ ने खडे होकर उनका स्वागत किया और अपने निकट बैठाकर बोला—

"आभापति ! आज आप ही हमारी लाज वचा सकते है। अत कृपा कर आप हम पर एक अनुग्रह अवश्य कीजिए। मैं आपके पैरो पडता हूँ, किसी भी हाल मे इन्कार मत कीजिए।"

राजा चन्द्र ने कहा—

"राजन् ! आपके मत्री, सेवक—सभी आपके कार्य की भूमिका बाँध चुके हैं। अब आप बिना किसी पूर्व भूमिका के

अपना वह कार्य बताइए, जो मुझसे करवाना चाहते है। करणीय कार्य किये जाते हैं और अकार्य कभी नही किया जाता।"

सिंहलपति कनकरथ ने सीधे-सीधे कहा—

"राजन्! थोडी ही देर मे राजकुमारी प्रेमलालच्छी का विवाह मेरे पुत्र कनकध्वज के साथ होने वाला है। मेरी प्रार्थना यही है कि आप कनकध्वज के स्थान पर वर-वेश मे नकली कनकध्वज बन जाइए और प्रेमलालच्छी को मेरे बेटे के लिए ब्याह दीजिए।"

सिंहलपति का यह प्रस्ताव सुनते ही चन्द्र राजा को जैसे काठ मार गया। वे बहुत ही क्षुब्ध हुए और सिंहलपति से बोले—

"राजन्! यह अनहोनी बात कैसे हो सकती है? राजकुमारी के साथ जो विवाह करेगा, वही उसका पति होना चाहिए। यह धर्म की रीति है, यही शास्त्र-मर्यादा है और अभी तक संसार मे यही होता आया है। यह तो बडी अजीब और हास्यास्पद बात होगी कि प्रेमला के साथ विवाह राजा चन्द्र करें और वह धर्मपत्नी राजकुमार कनकध्वज की बने। मैं ऐसा धर्म-विरुद्ध और अनीतिपूर्ण काम कदापि नही कर सकता।"

चन्द्र का निर्णय सुनकर सिंहलपति गिडगिडाने लगा—

"राजन्! यदि आप ऐसा नही करेंगे तो हम सब विष खाकर यहीं प्राण त्याग देंगे। हम अब सिंहलपुरी मे अपना मुँह नही दिखा सकेंगे और न राजा मकरध्वज को ही अपना मुँह दिखाने के योग्य रहेंगे। अगर आप हमारे प्राण बचाना नही चाहते, तो भले ही हम पर अनुग्रह न करें। लेकिन यदि दया करके हमें जीवित रखना चाहते है तो यह कृपा आपको करनी ही होगी।"

"बस, आप वर-वेश मे अश्वारूढ होकर विवाह-मण्डप मे पधारिये। विवाह करने के बाद आप जहाँ चाहे, वहाँ चले जायें। राजन् ! अब देर मत कीजिए, धीरे-धीरे विवाह का समय निकट आता जा रहा है।"

राजा चन्द्र बडे असमजस मे पडे। कुछ देर मौन रहने के बाद उन्होने पूछा—

"आखिर आप ऐसा करना क्यो चाहते हैं कि प्रेमला के साथ मैं कनकध्वज के लिए विवाह करूँ और ... ·

आगे कुछ कहने से पहले हिंसक मन्त्री राजा चन्द्र का हाथ पकडकर एकान्त मे गया और बोला—

"आभापति ! मैं आपको पूरी कहानी सुनाता हूँ। सब बातें जानने के बाद आपका सन्देह मिट जायेगा। हमे पूर्ण विश्वास है कि आप हम पर अवश्य कृपा करेंगे।"

इसके अनन्तर सिंहलपुरी का महामन्त्री हिंसक राजा चन्द्र को एक कहानी सुनाने लगा और राजा चन्द्र भी ध्यान देकर सुनने लगे। उसने कहा—

"आभापति ! सिन्धु नदी जहाँ होकर बहती है, वहाँ का आसपास का भूभाग सिन्धु नामक देश से जाना जाता है। इस देश की राजधानी है सिंहलपुरी। सिंहलपुरी बहुत ही बडी और सुन्दर नगरी है। सिन्धु देश के मध्य बसी होने के कारण भी यह नगरी राजधानी होने के सर्वथा उपयुक्त है। यहाँ के राजा कनकरथ से आप मिल ही चुके हैं। ये ही सिंहलपुरी की प्रजा का पालन करते है। इनकी रानी का नाम कनकवती है और हिंसक नाम का मैं उनका मन्त्री हूँ। राज्य सचालन मे मेरा पूरा हाथ है। सिंहलपति भी मेरी इच्छा के बिना कोई काम

नही कर सकते । राज-काज के अलावा, उनके घरेलू कामो मे भी मेरा हस्तक्षेप रहता है । हमारा राज्य बहुत ही श्रीसम्पन्न है । हमारे महाराज के पास चतुरगिणी विशाल सेना है । हमारी प्रजा सब तरह से सुखी है । विद्वान, पडित और कलाकारो की भी सिन्धु देश मे कमी नही है ।"

सब कुछ होते हुए भी सिहलपति सन्तानहीन थे । पुत्र के बिना उनका रनिवास सूना था । पुत्र न होने से राजा कनकरथ तो चिन्तित व दुखी थे ही, पर रानी कनकवती तो बहुत उदास रहती थी । अगर पुत्र न होता तो पुत्री ही हो जाती, उन्हे उसी मे सन्तोष था । पर वे वन्ध्या दोष से बहुत दुखी रहती थी । सिहल-पुरी का समस्त राज ऐश्वर्य उसके लिए व्यर्थ था ।

एक दिन रानी को अपनी सन्तानहीनता का बडा दुख हुआ और वह फूट-फूट कर रोने लगी । सिहलपति ने जब रानी कन-कवती से रोने का कारण पूछा तो आँसुओ की गगा-जमुना बहाते हुए रानी ने कहा—

"स्वामी ! आप सब जानते हुए भी अनजान बने रहते है । प्रजापालन मे आपका समय तो बीत जाता है, पर मुझे तो यह सूना रनिवास खाने को दौडता है । जिस तरह सुगन्ध के बिना फूल व्यर्थ है, उसी तरह पुत्र के बिना नारी का जीवन भी व्यर्थ ही है । कितनी ही धर्मनिष्ठ नारी हो, कितना ही ऐश्वर्यवान पुरुष हो, पर सन्तानहीन पुरुष अथवा नारी का सुबह-सुबह लोग मुँह देखना भी बुरा मानते है । जैसे दीपक के बिना घर मरघट के समान है, ऐसे ही कुलदीपक पुत्र के बिना जीवन मे अँधेरा-ही-अँधेरा है । पुत्र से वश की और माता-पिता की कीर्ति बढती है, वृद्धावस्था मे सुख प्राप्त होता है ।

"बस, आप वर-वेश मे अश्वारूढ होकर विवाह-मण्डप मे पधारिये। विवाह करने के बाद आप जहाँ चाहे, वहाँ चले जायें। राजन् ! अब देर मत कीजिए, धीरे-धीरे विवाह का समय निकट आता जा रहा है।"

राजा चन्द्र बडे असमजस मे पडे। कुछ देर मौन रहने के बाद उन्होने पूछा—

"आखिर आप ऐसा करना क्यो चाहते हैं कि प्रेमला के साथ मैं कनकध्वज के लिए विवाह करूँ और ... ."

आगे कुछ कहने से पहले हिंसक मन्त्री राजा चन्द्र का हाथ पकडकर एकान्त मे गया और बोला—

"आभापति ! मैं आपको पूरी कहानी सुनाता हूँ। सब बातें जानने के बाद आपका सन्देह मिट जायेगा। हमे पूर्ण विश्वास है कि आप हम पर अवश्य कृपा करेंगे।"

इसके अनन्तर सिंहलपुरी का महामन्त्री हिंसक राजा चन्द्र को एक कहानी सुनाने लगा और राजा चन्द्र भी ध्यान देकर सुनने लगे। उसने कहा—

"आभापति ! सिन्धु नदी जहाँ होकर बहती है, वहाँ का आसपास का भूभाग सिन्धु नामक देश से जाना जाता है। इस देश की राजधानी है सिंहलपुरी। सिंहलपुरी बहुत ही बडी और सुन्दर नगरी है। सिन्धु देश के मध्य बसी होने के कारण भी यह नगरी राजधानी होने के सर्वथा उपयुक्त है। यहाँ के राजा कनकरथ से आप मिल ही चुके हैं। ये ही सिंहलपुरी की प्रजा का पालन करते हैं। इनकी रानी का नाम कनकवती है और हिंसक नाम का मैं उनका मन्त्री हूँ। राज्य संचालन में मेरा पूरा हाथ है। सिंहलपति भी मेरी इच्छा के बिना कोई काम

नही कर सकते। राज-काज के अलावा, उनके घरेलू कामो मे भी मेरा हस्तक्षेप रहता है। हमारा राज्य बहुत ही श्रीसम्पन्न है। हमारे महाराज के पास चतुरगिणी विशाल सेना है। हमारी प्रजा सब तरह से सुखी है। विद्वान, पडित और कलाकारो की भी सिन्धु देश मे कमी नही है।"

सब कुछ होते हुए भी सिहलपति सन्तानहीन थे। पुत्र के बिना उनका रनिवास सूना था। पुत्र न होने से राजा कनकरथ तो चिन्तित व दुखी थे ही, पर रानी कनकवती तो बहुत उदास रहती थी। अगर पुत्र न होता तो पुत्री ही हो जाती, उन्हे उसी मे सन्तोष था। पर वे वन्ध्या दोष से बहुत दुखी रहती थी। सिहल-पुरी का समस्त राज ऐश्वर्य उसके लिए व्यर्थ था।

एक दिन रानी को अपनी सन्तानहीनता का बडा दुख हुआ और वह फूट-फूट कर रोने लगी। सिहलपति ने जब रानी कन-कवती से रोने का कारण पूछा तो आँसुओ की गगा-जमुना बहाते हुए रानी ने कहा—

"स्वामी! आप सब जानते हुए भी अनजान बने रहते हैं। प्रजापालन मे आपका समय तो बीत जाता है, पर मुझे तो यह सूना रनिवास खाने को दौडता है। जिस तरह सुगन्ध के बिना फूल व्यर्थ है, उसी तरह पुत्र के बिना नारी का जीवन भी व्यर्थ ही है। कितनी ही धर्मनिष्ठ नारी हो, कितना ही ऐश्वर्यवान पुरुष हो, पर सन्तानहीन पुरुष अथवा नारी का सुबह-सुबह लोग मुँह देखना भी बुरा मानते हैं। जैसे दीपक के बिना घर मरघट के समान है, ऐसे ही कुलदीपक पुत्र के बिना जीवन मे अँधेरा-ही-अँधेरा है। पुत्र से वश की और माता-पिता की कीर्ति बढती है वृद्धावस्था मे सुख प्राप्त होता है।

"स्वामी ! आज मैं पुत्र की चिन्ता मे बहुत व्याकुल हूँ। मेरी गोद अब तक सूनी है। मेरे पयोधर भी पयहीन ही हैं। पुत्र की तोतली बोली सुनने के लिए मेरे कान तरस रहे हैं। मेरे भी पुत्र होता तो मै उसके माथे पर डिठौना लगाती। उसे लकडी का घोडा दौडाते हुए अपने आंगन मे देखती ...।"

कनकवती की दुख भरी बातें सुनकर सिंहलपति ने कहा—

"प्रिये ! पुत्र के अभाव का दुःख मुझे भी कम नही है। पर यह सब भाग्य की लीला है। पिछले जन्म मे पुत्र प्राप्ति का हेतु कोई सुकृत हमने नही किया होगा, इसीलिए हमे पुत्र रूपी सुफल की प्राप्ति नही हुई है। लेकिन तुम अपना दिल छोटा मत करो। अब तक मैं भाग्य के ही भरोसे रहा, पर अब प्रयत्न भी करूँगा। क्या पता, भाग्य मे यही लिखा हो कि बिना प्रयत्न के, बिना किसी अनुष्ठान के पुत्र नहीं होगा। अगर मन्त्र-तन्त्र और पुत्रेष्टि अनुष्ठान के बाद भी सफलता नही मिली तो भाग्य की लीला मानकर सन्तोष के अलावा और कोई उपाय नही।"

सिंहलपति ने हिमक मन्त्री को बुलाया और सब बातें बताईं। मन्त्री ने राजा को परामर्श दिया कि आप अट्ठम तप द्वारा कुलदेवी को प्रसन्न करें। कुलदेवी अवश्य आपकी इच्छा पूरी करेंगी। मन्त्री की सलाह से सिंहलपति ने कुलदेवी की आराधना शुरू कर दी। तीन दिन के बाद कुलदेवी प्रकट हुईं। देवी को अपने सामने उपस्थित देख सिंहलनरेश ने झुककर साष्टांग प्रणाम किया। देवी ने अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाकर राजा से कहा—

"राजन् ! मैं तेरी आराधना से प्रसन्न हूँ। बोल, तुझे क्या चाहिए।"

राजा ने कहा—

"मातेश्वरी ! आपकी कृपा से मुझे सब सुख साधन प्राप्त हैं, पर एक पुत्र के बिना सब कुछ उसी तरह व्यर्थ है, जैसे नमक के बिना सरस व्यजन । आप मुझे पुत्र देकर मेरे दु खो को दूर कीजिए । बस मेरी यही एक कामना है । मुझे आशा है कि रत्नाकर को प्राप्त करके अब मै दरिद्र नही रहूँगा । आपकी शक्ति कौन नही जानता ? आप चाहे तो सब कुछ कर सकती है ।"

कुलदेवी ने कहा—

"राजन् ! शीघ्र ही रानी कनकवती की गोद भरेगी । तुझे पुत्र अवश्य मिलेगा, किन्तु वह जन्म से ही कोढी होगा ।"

कुलदेवी की बात सुनते ही राजा हर्ष-शोक के झूले मे झूलने लगा । उसने हाथ जोडकर देवी से पुन प्रार्थना की—

"मातेश्वरी ! आप मुझ पर प्रसन्न है, और मुझे पुत्र भी दे रही है । पर कोढी पुत्र क्यो ? अम्ब ! मुझे तो नीरोग पुत्र देकर ही कृतार्थ कीजिए ! मातेश्वरी ! हँसा कर क्यो रुला रही हो जगन्माता ? मुझ पर दया कीजिए ।"

देवी ने बताया—

"राजन् ! कर्म का भोग कोई नही मिटा सकता । तेरी क्या हस्ती है, पूर्वकर्मों के फल से तो तीर्थंकर भी नही बचे । वासुदेव और चक्रवर्तियो को भी कर्म-भोग से छुटकारा नही मिला, फिर सामान्य प्राणी किस गिनती मे है ? जो तेरी भाग्यलिपि मे था, वही वरदान मैने तुझे दिया है । अब इसमे कुछ भी उलट-फेर नही हो सकता । मैने जो कह दिया, सो अटल है ।"

राजा ने उदास होकर पुन पूछा—

"मातेश्वरी ! आपने मेरी भक्ति से प्रसन्न होकर मुझे पुत्र-प्राप्ति का वरदान दिया है। फिर भी, उसका क्या कारण है कि आपने मुझे कोढी पुत्र का वरदान दिया। कोढी पुत्र का वरदान तो यही सिद्ध करता है कि आप मुझसे अप्रसन्न भी हैं। प्रसन्नता और अप्रसन्नता का जो भी दुहरा कारण हो, उसे बताकर मेरी दुविधा दूर कीजिए।

कुलदेवी ने सिंहलपति से कहा—

"राजन् ! मेरे पति महर्द्धिक देव के दो देवियाँ पत्नी हैं। हम दोनो ही समभाव से पति की सेवा करती हैं। मेरे पति महर्द्धिक देव भी दोनो के साथ समान व्यवहार रखते हैं। लेकिन एक दिन उन्होंने मेरी सौत देवी को एक हार मुझसे छिपाकर दे दिया। पति के इस पक्षपात पूर्ण कृत्य और दुराव से मैं क्षुब्ध हो उठी। हम दोनो सौतो मे झगडा हो गया। झगडे का कोलाहल सुनकर पतिदेव आये तो उन्होंने मेरी सौत का ही पक्ष लिया। इससे मैं और भी कुढ गई। जब मैं अपनी सौत और अपने पति से जली-भुनी बैठी थी, तभी मेरा ध्यान तेरी आराधना ने आकर्षित किया और मैं तेरे पूजागृह मे चली आई। मन की खीज और कुढन के कारण मेरे मुँह से कोढी पुत्र की बात निकल गई। एक बार मुँह से निकली हुई बात वापस नही होती। लेकिन राजन् ! तू इसका विचार मत कर, क्योंकि मनुष्य के भाग्य मे जो लिखा होता है, वैसी ही बात हमारे मुँह से निकलती है। तेरे भाग्य मे कोढी पुत्र का ही योग है। अब तू सब चिन्ताओ को त्याग और जो भाग्य ने दिया है, उसी को स्वीकार कर प्रसन्न हो।"

राजा ने भी विचार किया—'पुत्र न होने से तो कोढी पुत्र होना ही ठीक है। जब उपाय से कार्य सिद्ध हो जाता है तो पुत्र का कोढ भी दूर हो जायेगा। देवी ने यह थोड़े ही कहा है कि पुत्र कभी ठीक नहीं होगा।'

यथासमय देवी अन्तर्धान हो गयी और राजा पूजागृह से वापस आकर रानी से मिला। रानी को सब बातें बतायी। हिंसक मन्त्री को भी कुलदेवी के वरदान की जानकारी हो गयी। अन्य सबसे यह रहस्य गुप्त रखा गया।

रानी कनकवती गर्भवती हुई। धीरे-धीरे नौ महीने बीते और रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया। राजपुत्र के जन्म की खुशी में पूरी सिंहलपुरी झूम उठी। कई दिन तक जन्मोत्सव मनाया गया और नामकरण संस्कार वाले दिन राजपुत्र का नाम कनकध्वज रखा गया।

देवी के वरदान के अनुसार कनकध्वज जन्म वाले दिन से ही कुष्ठ रोग से पीडित था। राजा ने यह भेद किसी को नहीं बताया और तहखाने में गुप्त रीति से कनकध्वज का लालन-पालन तथा कुष्ट-निवारण की परिचर्या होने लगी। कनकध्वज कोढी है, इस रहस्य को केवल चार ही व्यक्ति जानते थे—(१) सिंहलनरेश कनकरथ, (२) रानी कनकवती, (३) हिंसकमन्त्री, और (४) कनकध्वज के पास रहने वाली कपिला नाम की धाय। इसके अतिरिक्त सब लोगों को हिंसक मन्त्री की सलाह से यही बताया गया कि कुमार कनकध्वज देवोपम सुन्दर है। उसे किसी की नजर न लग जाये, इसलिए युवा होने तक उसे कोई नहीं देख पायेगा। सिंहलपुरी के नर-नारी कुमार के अद्भुत रूप की कल्पना करते थे। कोई कहता था कि इन्द्र के समान सुन्दर होगा। कोई

कहता था इन्द्र क्या चीज है, वह तो साक्षात् कामदेव होगा। कोई न कोई रतिरूपा राजकन्या उसके लिए जन्म धारण करेगी। कोई कहता था, उसकी देहकान्ति बालरवि की-सी होगी। कोई कहता था कि बालरवि तो आगे चलकर गर्मी देने लगता है। कनकध्वज की देहकान्ति तो चन्द्रिका सी शीतल और धवल होगी। इस तरह सभासद और प्रजा वर्ग के लोग कुमार कनकध्वज के अलौकिक और दिव्य रूप की तरह-तरह की कल्पना करते थे और उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे, जिस दिन वे कुमार का रूप दर्शन करेंगे।

जिस तरह खान में रत्न की वृद्धि होती है, उसी तरह तहखाने में रहकर राजकुमार कनकध्वज वृद्धि को प्राप्त होने लगा। केवल कपिला धाय ही उसके पास आती-जाती थी। वही कुमार का लालन-पालन किया करती थी। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता था, लोगों में कुमार को देखने की उत्सुकता और लालसा बढ़ती जाती थी। कुमार-दर्शन का रहस्य जानते हुए भी दूर-दूर के लोग रत्नादि भेंट-सामग्री लेकर अपनी बलवती इच्छा के कारण कुमार के दर्शन करने आते थे। लेकिन हिंसक मन्त्री सबको यह कहकर लौटा देता था कि जब युवा होने पर कुमार बाहर निकलेंगे, तभी आप लोग देख सकेंगे, उससे पहले नहीं, अन्यथा कुमार को नजर लग जायेगी। ऐसा अलौकिक दिव्य रूपवान पुरुष तो अभी तक इस धरा पर पैदा ही नहीं हुआ। सभी लोग हिंसक मन्त्री की बात सच मानकर कुमार को चिरजीव होने का आशीर्वाद देकर वापस लौट जाते थे। धीरे-धीरे कुमार कनकध्वज के अलौकिक रूप की चर्चा आस पास के देशों में फैल गई और आने-जाने वणिक् व्यापारियों द्वारा दूर-दूर के देशों में भी यह बात

उजागर हो गई कि सिंहल का राजकुमार अद्वितीय सुन्दर है। उसके अमित तेज और रूप के कारण ही उसे तहखाने मे रखा जाता है। नजर लगने के डर से वह अभी तक बाहर नही निकाला गया।

सिंहलनरेश कनकरथ का मन्त्री हिंसक, आभानरेश राजाचन्द्र को यह वृत्तान्त सुना रहा था और राजा चन्द्र भी उत्सुकता से सुन रहे थे। यह इतिवृत्त सुनते हुए उन्हे यह भी जल्दी थी कि कही गुणावली और माता वीरमती आम्रवृक्ष पर सवार होकर चली गयी तो मेरा क्या होगा। फिर भी उन्हे यह तसल्ली थी कि प्रेमलालच्छी का विवाह होने तक वे विमलापुरी मे ही रुकेगी। प्रेमला का विवाह-सस्कार अभी तो सिंहलपति और सिंहलमन्त्री हिंसक के अधीन है और इनकी इच्छा मेरे अधीन है। राजा चन्द्र सोच रहे थे, देखे आगे क्या होता है, ये मुझे ही कनकध्वज क्यो बनाना चाहते है। कुछ देर विचार-मग्न होने के बाद राजा चन्द्र ने हिंसक से कहा—

"हाँ तो फिर आगे क्या हुआ ? जल्दी से सुना डालो।"

हिंसक कहने लगा—

हाँ तो आभापति ! कुछ दिनो बाद विमलापुरी के कुछ व्यापारी सिंहलपुर आये। उन्होने राजकुमार कनकध्वज के रूप की चर्चा सुनी और उन्होने इसकी चर्चा विमलापुरी मे भी कर दी। उसके कुछ ही दिन बाद हमारी नगरी सिंहलपुरी के व्यापारी अपना माल लेकर विमलापुरी पहुँचे। वे राजा मकरध्वज की राजसभा मे गये और राजा को रत्नादि की भेंट देकर अपना आदर भाव प्रकट किया। विमलापुरी नरेश मकरध्वज ने भी सिंहलपुरी के व्यापारियो का यथेष्ट स्वागत किया। उसी समय

मकरध्वज की पुत्री प्रेमलालच्छी राजा की गोद मे आकर बैठ गई। उसका रूप रति को भी लज्जित करने वाला था। प्रेमलालच्छी का रूप-लावण्य देखकर सिंहलपुरी के व्यापारी आश्चर्य सागर मे गोते खाने लगे। उन्होने मन ही-मन विचार किया कि यह राजकन्या तो हमारे देश के राजकुमार कनकध्वज के ही योग्य मालूम पडती है। हमारे राजकुमार तो इतने सुन्दर है कि नजर लगने के डर मे उन्हे सदा तहखाने मे ही रखा जाता है। सिंहलपुरी के व्यापारी प्रेमलालच्छी को देखकर विचार मे पडे हुए थे कि तभी विमलापति मकरध्वज ने उनसे पूछा—

"व्यापारियो! तुम किस देश को समृद्धिशाली बनाते हो? वहा का राजा कौन है? हमे अपनी प्यारी बेटी के लिए सुयोग्य और अनुकूल वर की तलाश है, इसलिए हम यहाँ आने वाले यात्री-व्यापारियो से उसके राजा और देश का परिचय पूछा करते है।"

सिंहलपुरी के व्यापारियो को अपने मन की बात कहने का अनायास ही अवसर मिल गया। अत एक व्यापारी बोला—

"हे विमलापति! हम लोग सिंधु देश के व्यापारी है। सिंधु की राजधानी सिंहलपुरी मे कनकरथ नाम के राजा राज्य करते है। कनकरथ की रानी कनकवती ने एक ऐसे सुन्दर पुत्र को जन्म दिया है, जिसके समान सुन्दर रूप वाला पुरुष इस धरती पर नहीं है। उनके दिव्य और अलौकिक सौन्दर्य के कारण उन्हें हमेशा तहखाने मे ही रखा जाता।"

सिंहलपुरी के व्यापारियो की मनोनुकूल बात सुनकर विमलापति मकरध्वज को भारी खुशी हुई। उन्हे ऐसा लगा कि मेरा काम तो घर बैठे ही बन गया। कनकध्वज और प्रेमला की जोडी

बहुत अच्छी रहेगी। राजा ने व्यापारियो से तो कुछ नही कहा। उन्हे तो वस्त्रादि पुरस्कार देकर विदा कर दिया। लेकिन सुबुद्धि नामक मन्त्री को सब बाते बताने के बाद प्रेमला का विवाह-सम्बन्ध कनकध्वज के साथ पक्का करने के लिए कहा। सुबुद्धि बहुत ही चतुर और दूरदर्शी मन्त्री था। वह अपने सुबुद्धि नाम को सार्थक करने वाला बहुत ही बुद्धिमान था। राजा मकर-ध्वज की सब बातें सुनने के बाद उसने कहा—

"महाराज! बिना विचारे कोई काम नही करना चाहिए। इस पर भी विवाह-सम्बन्ध तो जीवन भर का सम्बन्ध होता है। इसमे तो भूलकर भी जल्दबाजी नही करनी चाहिए। हर चम-कने वाली चीज सोना नही होती। जिस कुमार को आज तक किसी ने देखा नही। वह कामदेव का अवतार ही हो, यह बात निर्विवाद रूप से सत्य नही हो सकती और फिर कनकध्वज के रूप की प्रशसा करने वाले, उसी के देश के व्यापारी हैं। कुंजडी अपने बेर कभी खट्टे नही बताती। आप इस रहस्य की पूरी तरह से छानबीन कीजिए, तभी विवाह करने का विचार कीजिए। सिहलपुरी का मन्त्री हिमक बडा ही धूर्त और चालबाज है। मुझे तो उसकी हर योजना मे कोई-न-कोई चाल नजर आती है। हो सकता है कि हिमक ने सिखा-पढाकर अपने देश के व्यापा-रियो को यहां भेजा हो। अपनी माता को कौन पुत्र अपने मुंह से चुडैल कहेगा? काना और कुरूप होने पर भी माता-पिता अपने पुत्र को कामदेव समझते है। अपने देश के कांटे भी प्रिय मालूम होते है। ये व्यापारी सिंहल देश के ही तो थे। ये तो अपने राजा और राजकुमार की प्रशसा करेंगे ही। हां, अगर दूसरे देश के व्यापारी ऐसा कहते तो कुछ विश्वास करने योग्य बात भी थी।"

राजा मकरध्वज को सुबुद्धि मन्त्री की बात जँच गई और उसने अपना विचार स्थगित कर दिया। एक दिन राजा मकरध्वज मन्त्री के साथ वन भ्रमण को गया। राजा-मन्त्री दोनों एक छायादार वृक्ष के नीचे बैठे विश्राम कर रहे थे। उसी समय कुछ व्यापारी वहाँ से गुजरे। राजा मन्त्री को बैठे देख वे भी वहीं बैठकर थकान मिटाने लगे। इधर उधर की बातें होने लगीं। व्यापारियों ने देश-देशान्तरों की बातें सुनाते हुए कहा—

"एक बार जब हम लोग सिन्धु देश की राजधानी सिंहलपुरी गए तो वहाँ एक बड़ी ही विचित्र बात सुनी। सिंहल का राजकुमार काफी बड़ा हो गया है। फिर भी उसे जन्म से तहखाने में ही छिपाकर रखा जाता है। आज तक किसी ने उसकी शक्ल तो दूर रही, परछाईं भी नहीं देखी। ऐसा सुनने में आया है कि राजकुमार कनकध्वज बहुत ही ज्यादा रूपवान है। नजर लगने के भय से उसे हमेशा तहखाने में ही रखा जाता है।"

इन व्यापारियों की बातें सुनकर राजा मकरध्वज को सिंहलपुरी के व्यापारियों का कथन याद आ गया। राजा को विचारमग्न छोड़ उसके पास बैठे व्यापारी तो आगे चले गये, क्योंकि उन्हें अभी बहुत दूर जाना था। इधर राजा ने मन्त्री सुबुद्धि की ओर देखा और फिर कहा—

"महामन्त्री ! अब तो तुम्हें विश्वास हो जाना चाहिए कि सिंहल कुमार कनकध्वज बहुत सुन्दर है। क्योंकि उसके रूप की प्रशंसा करने वाले दूर देश के व्यापारी हैं। वे सिन्धु देश के रहने वाले नहीं थे। तुम्हीं ने तो कहा था कि किसी दूसरे देश के व्यापारी मिलें तो विश्वास किया जा सकता है।"

राजा की बात सुनकर विचारशील मन्त्री सुबुद्धि ने कहा—

"इन व्यापारियो ने भी तो सुनी-सुनाई बात ही कही है। इन्होने कनकध्वज को अपनी आँखो से कब देखा है? अगर आपकी ऐसी ही इच्छा है तो मैं एक उपाय सोचता हूँ। वह यह कि अपने यहाँ से चार समझदार मन्त्रियो को सुपारी और नारियल लेकर सिहलपुरी भेजा जाय। वे अपनी आँखो से कुमार को देख ले। अगर उसका रूप ऐसा ही हो, जैसा कि सुनने मे आ रहा है तो नारियल भेट करके विवाह पक्का कर दें, अन्यथा वापस लौट आये। इस विषय मे उन्हे इस बात के लिए वचनबद्ध होना पडेगा कि कुमार कनकध्वज को देखें बिना हरगिज भी विवाह सम्बन्ध पक्का न करें।"

राजा मकरध्वज मन्त्री सुबुद्धि की युक्ति से सहर्ष सहमत हो गया। दोनो यथासमय वन-भ्रमण करके नगरी को लौट आये। आते ही महामन्त्री की सलाह से राजा ने चार अन्य मन्त्री सिहलपुरी जाने के लिए तैयार किये। चारो को पर्याप्त धन व सुविधाएँ दे दी गयी तथा महामन्त्री सुबुद्धि ने उन्हे बार-बार सावधान किया कि कुमार को अपनी आँखो से देखे बिना विवाह-सम्बन्ध मत करना। उनकी चिकनी-चुपडी बातो मे आकर बिना देखे ही उनकी बात सत्य मत मान लेना।"

महामन्त्री सुबुद्धि और विमलापति मकरध्वज को आश्वासन देकर चारो मन्त्री सिहलपुरी को रवाना हो गए। यथासमय चारो मन्त्री सिहलपुरी पहुँचे। उनका यथेष्ट स्वागत-सत्कार किया गया। कुशल-समाचार पूछने के बाद मन्त्रियो से सिहलपुरी आने का प्रयोजन पूछा गया। इस पर चतुर मन्त्रियो ने कहा—

हे सिहलपति! हमारे राजा मकरध्वज के प्रेमलालच्छी

नामक सर्वगुण सम्पन्न और अनिन्द्य सुन्दरी कन्या है। हम आपके कुमार कनकध्वज से उसका विवाह-सम्बन्ध पक्का करने आये हैं। दोनो की यह जोडी बडी अच्छी रहेगी। जैसे आपके कुमार कनकध्वज कामदेव के समान रूपवान है, वैसे ही प्रेमलालच्छी भी रति का सौन्दर्य लज्जित करने वाली है।"

मन्त्रियो की बात सुनकर सिंहलपति राजा कनकरथ ने हिंसक मन्त्री से सलाह की और सलाह करने के बाद कहा—

"मन्त्रियो! आपकी बाते मैंने समझ ली हैं। हमारा विचार अभी कुमार का विवाह करने का नही है इस काम मे हम जल्दबाजी करना नही चाहते। हमेशा धीरज का फल मीठा होता है। आप प्रेमलालच्छी के लिए और कोई वर ढूंढ लीजिए।"

राजा कनकरथ की ऐसी बेरुखी बातें सुनकर विमलापुरी से आये हुए मन्त्री उदास हो गये। इत्तिफाक से सिन्धु देश के व्यापारी जो विमलापुरी से ही लौटे थे, वे भी वहीं मौजूद थे। उन्होंने विचार किया कि हमारे राजा अगर प्रेमला के साथ विवाह कर लें तो बडा उत्तम हो। क्योंकि यदि कनकध्वज परम रूपवान है तो प्रेमला भी कम नहीं है। वे ऐसे अच्छे सम्बन्ध को क्यों अस्वीकार कर रहे हैं? हमने तो प्रेमला को अपनी आंखों से देखा है। अतः उन्होंने भी अपने राजा सिंहलपति कनकरथ से आदरपूर्वक कहा—

"महाराज! एक बार थोड़े ही दिन पहले हम लोग भी सोरठ देश की राजधानी विमलापुरी गए थे। जब हम राजसभा में पहुंचे तो हमारे सामने ही प्रेमलालच्छी आ गई और राजा कनकध्वज की गोद मे जाकर बैठ गयी। हम लोग तो उनकी

रूप-लावण्य को देखते ही रह गये। प्रेमलालच्छी आपके घर मे उजाला कर देगी। वह कुमार कनकध्वज के लिए सर्वथा उपयुक्त है और हमारे राजकुमार भी प्रेमला के लिए सब विधि योग्य हैं। यह जोडी तो विधाता ने ही बनाई है। आप विधाता की इस करतूत मे बाधक मत बनिये और इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लीजिए।"

वास्तविक बात तो दूसरी ही थी। कोढी कनकध्वज का विवाह वे किस मुँह से पक्का करते? अत इस सम्बन्ध को टालने की बहुत कोशिश की गई। राजा कनकध्वज और मन्त्री हिंसक ज्यो ज्यो इस विवाह सम्बन्ध को टालने की कोशिश करते, त्यो त्यो विमलापुरी से आये चारो मन्त्री और भी अधिक आग्रह करते। अन्त मे 'जो होगा सो देखा जायेगा' यह विचार पक्का कर मन्त्री ने हां कर ली। लेकिन जब श्रीफल (नारियल) भेंट करके विवाह पक्का करने की बात आई तो विमलापुरी के एक मन्त्री ने कहा—

"महामन्त्री! आपने कृपाकर हमे स्वीकृति दे दी है, यह तो आपकी हम सब पर बहुत कृपा है। आपके सहयोग के कारण हमारी आशा पूर्णता की ओर बढी है, वरना सिंहलपति महाराज कनकरथ तो किसी भी तरह राजी नही थे। अब आप इतनी कृपा और कीजिए कि हमे कुमार के दर्शन करा दीजिए। कुमार का श्रीमुख देखकर ही हम नारियल भेंट करेंगे।"

विमलापुरी के मन्त्रियो की ऐसी धारणा सुनकर हिंसक मन्त्री के पैरो के नीचे की धरती खिसक गई। उसने बात को सँभालते हुए कहा—

'आप हम पर विश्वास कीजिए। कुमार का

है जैसा कि हमने बताया है। विवाह के अवसर पर विवाह मण्डप में आप सभी लोग मन भरकर देखना। इस समय तो उनका देखना मुश्किल ही है। आप लोग कुछ दिन यहाँ ठहरें। मैं राजा से बात करता हूँ। वे तो अभी कुमार का विवाह करना ही नहीं चाहते। तुम लोग इतनी दूर से आये हो, इसीलिए मैंने अपनी ओर से हाँ कर दी और हमने भी तो राजकुमारी प्रेमला-लच्छी को नहीं देखा। जैसे हमें तुम्हारा विश्वास है, वैसे तुम्हें भी हमारा विश्वास करना चाहिए।"

विमलापुरी के मन्त्रियों ने सिंहल के मन्त्री हिंसक से कहा—

"आप कहते हैं तो कुछ दिन और ठहर जायेंगे। लेकिन बिना कुमार को देखे, नारियल भेंट नहीं करेंगे। आप अच्छी तरह से विचार कर लीजिए। माना कि आपने राजकुमारी प्रेमला को नहीं देखा, पर आपके देश के व्यापारियों ने तो उसे देखा ही है।"

विमलापुरी के मन्त्रियों को अतिथिशाला में ठहरा दिया गया। उनकी खूब खातिरदारी की गई। उनकी हर सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया। इधर सिंहलपति कनकरथ और उनका मन्त्री हिंसक मन्त्रणा कक्ष में बैठे अकेले इस विवाह-गुत्थी को सुलझाने लगे। राजा कनकरथ ने मन्त्री हिंसक से कहा—

"मन्त्री जी! आपने हाँ तो कर दी। लेकिन कुमार के शादी होने का रहस्य खुले बिना नहीं रहेगा। पहले तो वे लोग भी कुमार को देखने का हठ करेंगे। अगर मान लो किसी तरह कुमार को छिपा लें, हम यहाँ बच भी गये तो विमलापुरी में विवाह मण्डप में तो रहस्य खुलना ही पड़ेगा। मेरी राय में तो अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। तुम यह विवाह-सम्बन्ध अस्वीकार

ही मत करो। सारी बुराई मेरे ऊपर डाल दो। विमलापुरी के मन्त्रियों से कह दो कि हमारे राजा राजी नहीं हैं।"

राजा की बात सुनकर हिंसक मन्त्री ने कहा—

"महाराज ! समस्या तो गम्भीर ही है। पर आप चिन्ता न करें। मैं कनकध्वज को दिखाने की समस्या को तो अपनी युक्ति से हल कर दूंगा। कैसे करूँगा, इसे आप मेरे ऊपर छोड़िये। आगे विमलापुरी पहुंचकर क्या करना होगा, इस समस्या पर फिर विचार करेंगे। प्रयत्न करने पर हर समस्या सुलझ जाती है।"

राजा कनकरथ ने पुनः कहा—

"मन्त्री जी ! तुम्हारे सब प्रयास, उपाय और युक्तियाँ कपट-पूर्ण ही रहेंगी। अगर हम शुरू से ही कुमार के कोढ़ी होने के भेद को न छिपाते तो आज यह दिन न देखना पड़ता। एक झूठ को छिपाने के लिए दस झूठ और बोलने पड़ते हैं। राजा मकर-ध्वज को धोखा देकर कोढ़ी पुत्र के गले प्रेमलालच्छी जैसी रूपवती राजकुमारी को मढ़ना सरासर धोखा, अन्याय और पाप है। कभी-न-कभी हमें इस कपट का फल अवश्य भोगना पड़ेगा।

हिंसक ने कहा—

"महाराज जो हो चुका, उसको तो लौटाया नहीं जा सकता। कुमार के बारे में हमने जो बात उड़ाई है, अब तो उसी की लाज रखनी है। धीरज रखिये। सब काम अनुकूल ही होगा। कभी-कभी जो काम सत्य से नहीं बनता, वह झूठ से बन जाता है।

हिंसक मन्त्री की ऐसी बातें सुनकर सिंहलपुरी के राजा ने अपना निर्णय दिया—

"मन्त्री जी ! मैं तुम्हारी बातों से कभी भी सहमत नहीं हो सकता और न तुम्हारी योजनाओं का विरोध ही कर सकता हूँ।

तुम्हें जो ठीक लगे सो करो। तुम्हारे कपट-कार्य का जो फल होगा, तुम्हारे साथ उसे मैं भी भोगूंगा।"

इतना कहकर राजा कनकरथ मन्त्रणा-कक्ष से उठ गये और मन्त्री हिंसक अपनी योजना के ताने-बाने बुनने लगा। इस तरह कई दिन बीत गये तो विमलापुरी के मन्त्रियों ने राजा कनकरथ और मन्त्री हिंसक के समक्ष उपस्थित होकर कहा—

महाराज! विचार करते-करते कई दिन बीत गये। लेकिन अभी तक आप लोगों ने अपने निर्णय से सन्तुष्ट नहीं किया। आपको भी कभी-न-कभी और किसी-न-किसी के साथ राजकुमार कनकध्वज का विवाह करना ही है। फिर ऐसा कोई कारण नहीं कि आपको प्रेमलालच्छी का विवाह-सम्बन्ध स्वीकार न हो। प्रेमलालच्छी के साथ कुमार कनकध्वज का नाम जुड़ गया है। आपकी प्रजा को भी यह सम्बन्ध इष्ट है। हमारे महाराज मकरध्वज और विमलापुरी की प्रजा तो इस सम्बन्ध को अपना सौभाग्य मानती है। अब आप हमें ज्यादा निराश मत कीजिए राजकुमार का तिलक हमारी ओर से श्रीफल स्वीकार करके हमें कृतार्थ कीजिए।"

सारी बात तो हिंसक मन्त्री को ही सम्हालनी थी। अतः उसने कहा—

"मन्त्रियो! मैंने महाराज से बातें कर ली हैं। उन्हें यह सम्बन्ध सहर्ष स्वीकार है। आप लोग इतनी दूर से आशा लेकर आये हैं अतः हमारे महाराज आपको निराश करना नहीं चाहते। राजकुमार कनकध्वज और प्रेमलालच्छी का विवाह सब तरह से उचित और उपयुक्त है। इस विवाह से सिंहलपुरी और विमलापुरी का सम्बन्ध और भी घनिष्ठ हो जायगा। फिर हमारे

कनकध्वज यहां नही है । वे अपनी ननिहाल गये हुए है । वे अगर यहां होते तो हम आपको अवश्य दिखा देते । सूर्य की किरणें बिना फैले कब तक रह सकती हैं ? कुमार के रूप-लावण्य के बारे मे आपने जो कुछ सुना है, वह सर्वथा सत्य है । आप लोग निश्चिन्त रहिए ।"

यह कहकर मन्त्री हिंसक विमलापुरी के चारो मन्त्रियो को अपने घर ले गया और उनको खातिरदारी मे आकण्ठ निमग्न कर दिया । इतना ही नही, उन्हे एक-एक करोड की थैली भी भेंट की । आशा से विपरीत इतना धन पाकर चारो मन्त्री कुमार को देखने का हठ त्याग बैठे । मानो, धन ने उनके मुंह पर ताला डाल दिया । मन्त्रियो ने हिंसक मन्त्री की बात का विश्वास कर लिया । उत्कोच (रिश्वत) द्वारा बहुत-से अकरणीय और अनुचित कार्य भी होते ही हैं । विमलापुरी के मन्त्रियो ने भी कनकध्वज को बिना देखे ही राजा कनकरथ को नारियल भेंट कर दिया । सिंहलपुरी मे शोर मच गया कि कुमार कनकध्वज का विवाह विमलापुरी की राजपुत्री प्रेमलालच्छी के साथ पक्का हो गया । पर्याप्त भेंट सामग्री देकर विमलापुरी से मन्त्रियो को विदा कर दिया गया ।

विमलापुरी पहुँचकर मन्त्रियो ने विवाह पक्का करने की बात बता दी और रिश्वत के दबाव से यह भी कह दिया कि कुमार कनकध्वज बहुत ही रूपवान है । जैसा सुना, वैसा ही देखा । इस सम्बन्ध से राजा मकरध्वज को भारी हर्ष हुआ । दोनो ओर के पण्डितो ने मिलकर विवाह की तिथि भी तय कर दी । विमलापुरी मे सिंहलपुरी से आने वाली बरात के स्वागत के लिए तैयारियां होने लगी । विमलापति महाराज मकरध्वज

को तो स्वप्न मे यह खयाल ही नही था कि उनके साथ धोखा किया जायेगा।

इधर सिंहलपुरी मे भी विवाह की तैयारियाँ होने लगी। इष्ट-मित्रो, सम्बन्धियो तथा दूर-दूर के राजाओ के पास निमत्रण पत्र भेजे जाने लगे। बरात मे सम्मिलित होने के लिए आहूत अभ्यागत-अतिथि सिंहलपुरी मे इकट्ठे होने लगे। यह सब तैयारियाँ देखकर सिंहलपति कनकरथ ने एकान्त मे ले जाकर हिंसक से कहा—

हिंसक! यह तुम क्या अनर्थ कर रहे हो? तुम अवश्य ही विमलापुरी बरात ले जाकर हमारी नाक कटाओगे। वहाँ हमें किस मुँह से ले जाना चाहते हो? तू क्यो उस भोली-भाली देव-कन्या जैसी राजकुमारी प्रेमलालच्छी का जीवन बर्बाद करना चाहता है? आखिर तू कोढी कुमार कनकध्वज को कब तक छिपायगा? जब विवाह-मण्डप मे सबके सामने प्रेमलालच्छी कोढी कुमार के साथ विवाह करने से इन्कार कर देगी तो मैं वहीं प्राण त्याग दूंगा।"

राजा कनकरथ की चिन्तापूर्ण बातें सुनकर हिंसक मन्त्री ने कहा—

राजा की आराधना से सन्तुष्ट होकर कुलदेवी प्रकट हुई और उसने राजा से उसकी मनोकामना पूछी तो राजा ने सब बातें सच-सच बता दी। देवी ने विचारकर कहा—

"राजा! मैं तुझे एक उपाय बताती हूँ। अगर तू उस उपाय को कर लेगा तो तेरी प्रतिष्ठा बच जायेगी। विवाह वाले दिन आभापुरी के राजा चन्द्र आम्रवृक्ष के कोटर मे बैठकर विमला-पुरी आयेगे। उनके साथ उनकी पत्नी गुणावली और उनकी विमाता वीरमती भी होगी। लेकिन वे दोनों स्त्रियाँ इस भेद से अनभिज्ञ ही होगी कि हमारे साथ राजा चन्द्र भी विमलापुरी आये है। राजा चन्द्र उन दोनो स्त्रियो से अलग होकर जैसे ही नगर मे प्रवेश करे, तुम उन्हे इस बात के लिए राजी कर लेना कि वे कनकध्वज की जगह वरवेश धारण करके तुम्हारे कुमार के लिए प्रेमलालच्छी के साथ विवाह कर ले। राजा चन्द्र स्वय बहुत ही रूपवान है। वे वास्तव मे साक्षात् कामदेव ही हैं। तुमने अपने पुत्र के रूप के बारे मे जो प्रसिद्धि फैला दी है, राजा चन्द्र उसी तरह के रूपशाली पुरुष है।"

यह कहकर देवी अन्तर्धान हो गई।

राजा चन्द्र हिंसक मन्त्री के मुँह से पूरी कहानी सुन चुके थे। फिर भी वे अभी धर्मसंकट मे थे। एक ओर सिंहलपति की प्रतिष्ठा बचाने का प्रश्न था और दूसरी ओर प्रेमलालच्छी के जीवन के साथ खिलवाड़ करने का सवाल था। प्रेमलालच्छी को धोखा देकर राजा कनकध्वज बनकर विवाह करे और फिर उसे कोढ़ी कनकध्वज को सौंप दे, यह तो बहुत बड़ा अधर्म होता। राजा चन्द्र कुछ भी निश्चय नहीं कर पाये। वे सोचते ही रहे। उन्हें मौन देख हिंसक मन्त्री ने गिड़गिड़ा कर कहा—

को तो स्वप्न मे यह खयाल ही नही था कि उनके साथ धोखा किया जायेगा ।

इधर सिंहलपुरी मे भी विवाह की तैयारियाँ होने लगी। इष्ट-मित्रो, सम्बन्धियो तथा दूर-दूर के राजाओ के पास निमत्रण पत्र भेजे जाने लगे। वरात मे सम्मिलित होने के लिए आहूत अभ्यागत-अतिथि सिंहलपुरी मे इकट्ठे होने लगे। यह सब तैयारियाँ देखकर सिंहलपति कनकरथ ने एकान्त मे ले जाकर हिंसक से कहा—

हिंसक ! यह तुम क्या अनर्थ कर रहे हो ? तुम अवश्य ही विमलापुरी वरात ले जाकर हमारी नाक कटाओगे। वहाँ हमे किस मुँह से ले जाना चाहते हो ? तू क्यो उस भोली-भाली देव-कन्या जैसी राजकुमारी प्रेमलालच्छी का जीवन वर्बाद करना चाहता है ? आखिर तू कोढी कुमार कनकध्वज को कब तक छिपायेगा ? जब विवाह-मण्डप मे सबके सामने प्रेमलालच्छी कोढी कुमार के साथ विवाह करने से इन्कार कर देगी तो मैं वही प्राण त्याग दूंगा।"

राजा कनकरथ की चिन्तापूर्ण बातें सुनकर हिंसक मन्त्री ने कहा—

"राजन् ! कुलदेवी हमारे सब सकटो की रक्षा करेगी। जैसे आपने पहले कुलदेवी की आराधना करके उसे प्रसन्न किया था, वैसे ही अब भी कुलदेवी की आराधना करके उसे प्रसन्न कीजिए। इस सकट से उबरने का वह कोई-न-कोई उपाय अवश्य बतायेंगी।"

राजा कनकरथ को हिंसक मन्त्री की यह बात जँच गई। अतः उसने कुलदेवी की आराधना प्रारम्भ कर दी। यथासमय

राजा की आराधना से सन्तुष्ट होकर कुलदेवी प्रकट हुई और उसने राजा से उसकी मनोकामना पूछी तो राजा ने सब बातें सच-सच बता दी। देवी ने विचारकर कहा—

"राजा! मैं तुझे एक उपाय बताती हूँ। अगर तू उस उपाय को कर लेगा तो तेरी प्रतिष्ठा बच जायेगी। विवाह वाले दिन आभापुरी के राजा चन्द्र आम्रवृक्ष के कोटर मे बैठकर विमलापुरी आयेंगे। उनके साथ उनकी पत्नी गुणावली और उनकी विमाता वीरमती भी होगी। लेकिन वे दोनो स्त्रियाँ इस भेद से अनभिज्ञ ही होंगी कि हमारे साथ राजा चन्द्र भी विमलापुरी आये है। राजा चन्द्र उन दोनो स्त्रियो से अलग होकर जैसे ही नगर मे प्रवेश करे, तुम उन्हे इस बात के लिए राजी कर लेना कि वे कनकध्वज की जगह वरवेश धारण करके तुम्हारे कुमार के लिए प्रेमलालच्छी के साथ विवाह कर लें। राजा चन्द्र स्वयं बहुत ही रूपवान है। वे वास्तव मे साक्षात् कामदेव ही हैं। तुमने अपने पुत्र के रूप के बारे मे जो प्रसिद्धि फैला दी है, राजा चन्द्र उसी तरह के रूपशाली पुरुष है।"

यह कहकर देवी अन्तर्धान हो गई।

राजा चन्द्र हिंसक मन्त्री के मुँह से पूरी कहानी सुन चुके थे। फिर भी वे अभी धर्मसंकट मे थे। एक ओर सिंहलपति की प्रतिष्ठा बचाने का प्रश्न था और दूसरी ओर प्रेमलालच्छी के जीवन के साथ खिलवाड़ करने का सवाल था। प्रेमलालच्छी को धोखा देकर राजा कनकध्वज बनकर विवाह करे और फिर उसे कोढ़ी कनकध्वज को सौंप दे, यह तो बहुत बड़ा अधर्म होगा। राजा चन्द्र कुछ भी निश्चय नहीं कर पाये। वे सोचते ही रहे। उन्हें मौन देख हिंसक मन्त्री ने गिड़गिड़ा कर कहा—

"हे परोपकारिन् ! आप हमारा उद्धार कीजिए। कुलदेवी की कृपा से आप हमे प्राप्त हो गए। अब आप हमारे प्राण बचाइए। वर को मण्डप मे बुलाने का बुलावा आ चुका है। अब हर पल की देर हमारी मृत्यु का कारण बनेगी। आप ही हमे बचा सकते हैं। परोपकारी जीव तो दूसरो के हित अपने पुण्य भी समर्पित कर देते हैं। हम लोग बडी उत्सुकता से आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। किसी तरह आप कही अन्यत्र न चले जायँ, इसलिए हमने सन्ध्या समय से ही विमलापुरी के प्रत्येक द्वार और प्रत्येक चौराहे पर अपने आदमी लगा दिये थे और उन्हे अच्छी तरह समझा दिया था कि दो स्त्रियो के पीछे आभानरेश राजा चन्द्र आयेंगे, उन्हे सम्मानपूर्वक हमारे पास ले आना। अब आप हमारे कुमार के लिए प्रेमलालच्छी ब्याह दीजिए। अगर आप ऐसा नही करेंगे तो हम पांचो प्राणी यही प्राण त्याग देगें, क्योकि यह भेद राजा कनकरथ रानी कनकवती, कपिला धाय, कुमार कनकध्वज और मैं मन्त्री हिंसक—इन्ही पांचो तक सीमित है। यह कार्य तो देवी की सहमति से हो रहा है, इसलिए आपको कोई दोप नही लगेगा। बिगडी बात बनाना तो आप-जैसे पुरुपो का ही काम है।"

हिंसक मन्त्री की धूर्तता भरी बातें सुनकर राजा चन्द्र ने साफ-साफ कहा—

"महामन्त्री हिंसक ! यह कार्य बहुत ही अनुचित है। इसकी जितनी निन्दा की जाए, उतनी ही थोडी है। मैं राजकुमारी प्रेमला के साथ व्याह करके आपको सौप दूं, इससे बडा अधर्म और क्या होगा ? कृपया, ऐसे अनुचित कार्य के लिए मुझसे दुराग्रह मत कीजिए।"

राजा चन्द्र ने पीछा छुडाने की बहुत कोशिश की, लेकिन 'मरता क्या न करता' के अनुसार सिंहलपति कनकरथ और मन्त्री हिंसक हाथ धोकर उनके पीछे पड गए । आखिरकार राजा-मन्त्री की बेहद खुशामद के कारण राजा चन्द्र को राजी होना ही पडा । खुशामद की भी अपनी एक शक्ति होती है । कभी न मानने का निश्चय करने वाले रूठे हुए भी खुशामद से मान जाते है ।

अब चन्द्र को वर-वेश मे सजाया गया । वे वर-वेश मे और भी अधिक सुन्दर लग रहे थे । उनके दाहिने हाथ मे कगन बँधा था । रत्नजटित मूठ वाला कमर मे झूलता हुआ खड्ग बहुत ही सुन्दर लग रहा था । अष्टमी के चन्द्रमा के समान मस्तक पर कुकुम का तिलक शोभायमान था और वर-मुकुट से उनका मस्तक आभा-नरेश की आभा विकीर्ण कर रहा था । यथासमय कनकध्वज के रूप मे राजा चन्द्र वर-वेश मे घोडे पर सवार होकर विवाह-मण्डप मे पहुँचे । विमलापुरी की नारियो ने उन पर पुष्प वर्षा की । दर्शको ने अपने नेत्रो को सफल किया । सभी लोग उनके रूप को देखकर धन्य-धन्य कह रहे थे । उन्हे देख लोग आपस मे चर्चा करने लगे—

'कनकवती की कोख को धन्य है, जिसने ऐसा रूपवान बेटा पैदा किया ।"

कोई कह रहा था—

"ऐसा रूप तो सचमुच तहखाने मे रखने ही लायक था । सचमुच इन्हे अगर तहखाने मे न रखा जाता तो किसी की नजर जरूर लग जाती ।"

कोई कोई वृद्धा तिनका तोडकर कह रही थी—

'हे प्रभु ! किसी की कुदृष्टि इन्हे न लग जाए ।"

मकरध्वज राजा और उनकी रानी अपने भाग्य को सराह रहे थे कि हमे ऐसा देवरूप जामाता मिला।

कुछ लोग कह रहे थे—

"जैसे कानो से सुना था, आज आँखो ने वैसा ही देख लिया।"

यथासमय राजा चन्द्र कनकध्वज के रूप मे मण्डप मे विराजमान हुए। राजा चन्द्र को देखकर गुणावली के तो रोगटे ही खडे हो गये। उसने वीरमती को कुहनी मारकर सावधान करते हुए कहा—

"माताजी! ये तो आपके बेटे राजा चन्द्र मालूम पडते हैं। जरा गौर से देखिए, वही रूप, वही चितवन—सब कुछ वही। ये तो वही हैं। यह तो बडा भारी अनर्थ हो गया।"

वीरमती ने फुसफुसाहट के स्वर मे गुणावली के कहा—

"बहू! तू पागल तो नही हो गई? यहाँ चन्द्र क्या खाक आ सकता है? तुझे मेरी विद्या पर भरोसा नही है क्या? चन्द्र तो बेहोश होकर सो रहा है। सवेरे अपनी आँखो से देख लेना। तुझे तो सब जगह चन्द्र-ही-चन्द्र नजर आते हैं। तू यह समझती थी कि मेरे चन्द्र से ज्यादा रूपवान कोई नही है। अब अपनी आँखो से देख! यह सिहलपुरी के राजा कनकरथ का पुत्र कनकध्वज कितना सुन्दर है। तू कनकध्वज को ही चन्द्र क्यो समझ रही है?

गुणावली ने प्रतिवाद किया—

"माताजी! दुनिया मे एक से एक सुन्दर पुरुष होते हैं, पर सबकी 'पहचान' अलग-अलग होती है। देवगण बहुत सुन्दर

होते हैं, पर पहचान उनकी भी अलग-अलग होती है। कनकध्वज मेरे स्वामी से भी सुन्दर हो सकते हैं, पर उनकी पहचान तो अलग होनी ही चाहिए। ये तो बिल्कुल आपके ही बेटे हैं। हालांकि मैं स्वय उन्हे आभापुरी के राजमहल मे सुलाकर आई हूँ, फिर भी मेरी आँखें धोखा नही खा सकती।"

वीरमती ने कुछ रुखाई के स्वर मे कहा—

"बहू! तूने दुनिया मे देखा ही क्या है, इसलिए तू चक्कर मे पड गई है। बहुत बार एक-सी पहचान और शक्ल के आदमी अनायास ही मिल जाते है। यह तो सयोग है कि राजा चन्द्र और राजकुमार कनकध्वज की शक्ल-सूरत और पहचान एक-सी है। दुनिया मे और भी ऐसे लोग है, जो एक-से रग-रूप वाले है। जब तू स्वय आभापुरी पहुँचकर चन्द्र को जगायेगी, तब तू खुद ही कहेगी कि माता जी ठीक कह रही थी। अब चुपचाप दोनो का विवाह देख ले। फिर मैं आभापुरी पहुँचकर तेरी शका का निराकरण करूँगी।"

गुणावली चुप हो गयी। आखिर करती भी क्या? उसने भी सोचा, सम्भव है सासुजी की ही बात ठीक हो। यह सब मेरा भ्रम भी तो हो सकता है। रातोरात विमलापुरी आना उनके लिए असम्भव ही है। माताजी के पास तो विद्या बल था, इसलिए वृक्ष का विमान बनाकर बाते करते-करते यहाँ पहुँच गई।

प्रेमलालच्छी का विवाह दिखावे के लिए सिंहलकुमार कनकध्वज के साथ तथा वास्तव मे आभापति राजा चन्द्र के साथ निर्विघ्न समाप्त हो गया। सिंहलपति कनकरथ और मन्त्री हिंसक की जान मे जान आ गई। उन्होने चैन की सास ली। कनकध्वज ने याचको को दानादि देकर सन्तुष्ट किया। वर-वधू की जोड़ी

रगमहल मे पहुँची। राजा चन्द्र और नववधू प्रेमलालच्छी सुकोमल मच पर बैठकर चौपड खेलने लगे। इधर हिंसक मन्त्री और राजा कनकरथ को जल्दी मची हुई थी कि चन्द्र राजा यहाँ से शीघ्र ही टले तो अच्छा है। देर होने पर भण्डाफोड हो जायेगा।

जिस राजा चन्द्र की कुछ ही देर पहले ये सब खुशामदे कर रहे थे, वही राजा चन्द्र अब इनकी आँखो मे खटक रहा था। स्वार्थी लोगो की रीति ही यही है कि काम निकलने के बाद उन्हे मित्र भी शत्रु लगते हैं। जब विवाह हो जाता है, तो वर के मौर (वरमुकुट) को नदी मे प्रवाहित कर दिया जाता है, क्योकि फिर उससे कोई काम नही रहता।

मन्त्री बार-बार रगमहल के चक्कर काट रहा था और अन्योक्तियाँ द्वारा ढाल-ढालकर राजा चन्द्र से चले जाने के लिए कह रहा था।

राजा चन्द्र भी वचनबद्ध थे। वे स्वय भी रुकना नही चाहते थे। एक तो हिंसक मन्त्री तथा राजा कनकरथ को वचन देने का प्रश्न था, दूसरे उन्हे शीघ्र ही आम्रवृक्ष के कोटर मे पहुँचना था। इन सबके बावजूद वे अनायास ही नववधू प्रेमला को छोड भी कैसे सकते थे? बिना बहाने और बिना किसी उपयुक्त कारण के चले जाने मे पूरा नाटक ही मिट्टी मे मिल जाता, इसी विचार से मन्त्री हिंसक तथा राजा कनकरथ चुपचाप प्रतीक्षा कर रहे थे।

इधर राजा चन्द्र प्रेमलालच्छी क साथ चौपड-क्रीडा द्वारा मनोविनोद कर रहे थे। चौपड फेकने के अनन्तर राजा चन्द्र ने दो अर्थ वाली काव्य-पक्तियाँ नव-वधू प्रेमला से कहीं। उन समस्या-

पक्तियो को सुनकर प्रेमला ने दूसरा ही अर्थ लगाया और अपने अर्थ के अनुसार उसने भी समस्या की पूर्ति की। चौपड खेलते-खेलते दोनो वर-वधू समस्या-पूर्ति का काव्यानन्द लेने लगे। पहले राजा चन्द्र ने कहा—

चन्द्र के उद्योत से ही व्योम आभापुर हुआ।
आभापुर के चन्द्र की आभा छिटकी है यहां।
हुआ सब संयोग से कब तक निभेगा साथ यह ?[1]

राजा चन्द्र की समस्या सुनकर प्रेमालालच्छी मुस्कराई। हाथ मे चौपड पकडे हुए ही बोली—

"आप तो बडे अच्छे समस्या-कवि है। मैं भी आप से कविता करना सीखूंगी। फिलहाल टूटी-फूटी भाषा मे मेरी भी पूर्ति सुनिये—

जिस व्योम से जिस चन्द्र का विधि ने मिलाया साथ यह।
काली रातें छोड़कर हमेशा निभेगा साथ यह ॥[2]

प्रेमलालच्छी की समस्या-पूर्ति सुनकर चन्द्र राजा ने समझ लिया कि यह आभापुरी के चन्द्र राजा अर्थात् मेरा अभिप्रेत नही

---

१ मूल कृति 'चन्द राजा नो रास' जिसके रचियता श्री मोहन-विजय जी हैं, मे उक्त गाथाएँ इस प्रकार दी गई है।
"आभापुरम्मि निवसइ, विमलपुरे ससिहरो समुग्गमिओ।
अघटियघस्स पेमस्स, विहिहत्थे तस्स निव्वाहो॥"
उपर्युक्त हिन्दी कथा मे उन गाथाओ के भाव मे किंचित् रूपान्तर किया गया है।

२ ससिओ ससि आगासे, विमलपुरे उग्गमिओ ज्हासुह।
जेणाभिमूओ जोगो, स करिस्सइ तस्स निव्वाहो॥

समझ पाई, बल्कि आकाश के चन्द्रमा का अर्थ ही इसने लगाया है, इसीलिए इसने कहा है कि अँधेरी अथवा कृष्ण पक्ष की काली रातो को छोडकर आभापुरी रूपी आकाश से चन्द्रमा का सयोग हमेशा होता रहेगा। अत समस्या-काव्य के माध्यम से अपना नाम पता बताने के अवसर की प्रतीक्षा मे वे चौपड खेलते रहे। अपनी बात कहने के लिए उन्होने ऐसा रुख अपनाया, मानो चौपड खेलते-खेलते ऊब गए हो और अपनी ऊब का कारण बताते हुए काव्य भाषा मे कुछ स्पष्ट शब्दो मे इस प्रकार कहा—

आभा नगरी मे बसें, नरपति राजा चन्द।
रम्य रूप क्रीड़ा भवन, आता वहाँ अनन्द॥

कुछ रुककर फिर उसी लहजे मे राजा चन्द्र ने पुन कहा—

चौपड़ यहाँ कहाँ हैं ऐसे, जैसे आभा नगरी मे ?
और खेलना हमे न रुचता, क्या है, विमला नगरी मे ?

प्रेमलालच्छी चक्कर मे पड गई। वह सोचने लगी कि मेरे स्वामी तो सिहलपुरी के हैं। जन्म से आज तक ये तहखाने मे ही रहे। आभापुरी के क्रीडा-भवनो मे ये कब पहुँच गये? वहाँ के राजा चन्द्र को इन्होने कब देख लिया? पहले भी इन्होने शायद आभापुरी के चन्द्र का ही उल्लेख किया था, अर्थात् आभापुर व्योम के चन्द्र का मिलन सयोग से ही हुआ है, यह मिलन कब तक निभेगा। लेकिन मैंने उसका अर्थ दूसरा ही समझा। कुछ भी अर्थ समझा हो, अगर ये आभापति राजा चन्द्र ही हैं, तो यह सयोग-मिलन जिस विधाता ने कराया है, वही अन्त तक निभायेगा। लेकिन कहीं ऐसा न हो, जैसे अमावस की काली रातो मे

चन्द्र गगन से लुप्त हो जाता है, ऐसे ही कही ये मुझे छोडकर चले न जायें ? मैं भी सतर्क सावधान रहूँगी ।

चौपड का खेल समाप्त करके राजा चन्द्र भोजन करने बैठे। प्रेमला विचारो के इस ऊहापोह मे लगी हुई थी कि सिहलपुरी के राजकुमार कनकध्वज ने आभापुरी के क्रीडा-भवन तथा चौपडो की प्रशसा क्यो की । इनका आभा से क्या सम्बन्ध है ? इधर भोजन करने के अनन्तर राजा चन्द्र ने पानी मॉगा तो प्रेमला ने पास ही रखी जल की झारी मे से पानी दिया। पानी पीकर राजा चन्द्र ने कहा—

"अहा ! गगाजल का स्वाद ही और है प्रिये ! क्या तुमने कभी गगानीर पिया है ? अगर तुम पहले गगाजल पियो और फिर दूसरा कोई पानी, तो तुम्हे वह पानी फीका और बेस्वाद लगेगा।"

राजा चन्द्र की यह बात सुनकर तो प्रेमलालच्छी और भी गहरे विचार मे पड गई— सिहलपुरी तो सिन्धु नदी के तट पर बसी है । आभापुरी ही गगाजी की क्रोड मे बसी है। सिहलपुरी के राजकुमार इतनी दूर—पूर्व दिशा मे बहने वाली गगा नदी को कैसे देख सके होगे ? इन्होने तो निश्चय ही गगा नदी को नही देखा होगा । फिर ये गगाजल पीने की बात क्यो कर रहे है ? अवश्य आगे कोई-न-कोई गुल खिलेगा। मैं पूज्य सास महारानी कनकवती से ही पूछूंगी कि आपके पुत्र बार बार आभापुरी, राजा चन्द्र और गगा नदी की प्रशसा क्यो करते हैं।'

विचार करने के बाद वह प्राण प्रिय राजा चन्द्र से और कुछ बातें करना चाहती थी, लेकिन उसने ज्योही उनकी ओर देखा तो लगा राजा चन्द्र का मन कुछ उचटा हुआ है। वे यहाँ रहते

हुए भी यहाँ नही है। उनका मन कही और लगा हुआ है। इससे प्रेमलालच्छी और भी चिन्तित हो गई और गुत्थी को सुलझाने लगी। उसी समय एकान्त मे बुलाकर सिंहलपुरी के राजा कनकरथ के राजा चन्द्र से कहा—

"राजन! रात बहुत थोडी रह गई है। अब आपका यहाँ और अधिक रुकना खतरे से खाली नही है। मैं जानता हूँ कि आपको रगमहल छोडना अखरता होगा, लेकिन विवशता भी तो कोई चीज है। आपने हमारी जिस प्रतिष्ठा को बचाने के लिए जो हमे सहयोग दिया है, आपके रुकने से हमारी वह प्रतिष्ठा धूल मे मिल जायेगी। अब आप अपने सहयोग को असहयोग मे मत बदलिए। कृपाकर अब आभापुरी को पधारिये।"

राजा चन्द्र को अपने दिये हुए वचन की स्मृति हो आई। दूसरे, उन्हे सास-बहु के पहुँचने से पहले ही आम्रवृक्ष के कोटर मे पहुँचना था। अत वे नववधू प्रेमलालच्छी को छोडकर जाने को तत्पर हुए। रथ मे वे प्रेमला के साथ बैठकर रगमहल से बरात जहाँ ठहरी थी, वहाँ वर-कक्ष मे पहुँचे। मार्ग मे उन्होने दीन-दुखियो को बहुत-सा दानादि दिया। वर-वधू के एकान्त कक्ष मे पहुँचकर वे शीघ्र ही बाहर चले जाने की ऊहापोह करने लगे। प्रेमला ने उनके चचल मनोभाव को ताड लिया—पतिदेव कही भागने की उतावली मे हैं। कुछ परेशान से नजर आ रहे हैं। विवाह के समय ये बहुत प्रसन्न थे, चौपड खेलते समय कुछ उखडे-उखडे, उचटे-उचटे से रहे और अब और भी अधिक उद्विग्न और चिन्तित हो रहे हैं। पल-प्रतिपल इनकी बढती हुई इस उदासीनता का रहस्य आखिर क्या हो सकता है? प्रेमला विचार मे डूबी थी और चन्द्र राजा बाहर निकलने की चिन्ता मे थे।

कोई बहाना ढूंढ रहे थे कि उसी समय सिंहलपुरी के हिंसक मन्त्री ने सांकेतिक भाषा में दो अर्थवाली अन्योक्ति कही—

तारापथ के 'चन्द्र' तू, होगा आभाहीन ।
चमकेगा जब व्योम में, दिनकर सूर्य नवीन ॥

अर्थात (चन्द्र पक्ष में) तारापथ आकाश के चन्द्रमा ! तू उस समय [निश्चय ही अपनी] आभा (चांदनी, तेज) से हीन अथवा रहित हो जायेगा, जब दिन का स्वामी प्रभात रवि आकाश में चमकने लगेगा। दूसरे लोग इस दोहे का यही अर्थ समझ सकते थे, जबकि हिंसक मन्त्री का अभिप्राय कुछ और ही समझाना था और उस अर्थ को इस समय राजा चन्द्र ही समझ रहे थे। हिंसक की अन्योक्ति का अप्रस्तुत अर्थ था कि आभापुरी के राजा चन्द्र तुम्हें रात में ही यहां से चले जाना चाहिए, क्योंकि तुम्हारे जाते-जाते अगर दिन निकल आया, प्रभात का रवि उदित हो गया तो तुम्हारी आभा फीकी पड़ जायेगी, यानी तुम पहचान लिये जाओगे, तुम्हारा छद्म रूप उजागर हो जायेगा और मूल बात यह है कि हमारी इज्जत धूल में मिल जायेगी।

राजा चन्द्र हिंसक मन्त्री का मनोभाव ताड़ गये और शीघ्र ही बाहर चल दिये, लेकिन प्रेमला ने उन्हें पकड़ लिया और पीछे-ही-पीछे खिंची चली आई। बोली—"प्राणनाथ ! आप कहां जा रहे हैं ? मैं भी आपके साथ चलूंगी।"

राजा चन्द्र बड़े धर्म-संकट में पड़े। उनकी दशा बड़ी विचित्र हो गई। मुंह में गरम दूध का घूंट था, जिसे न निगल सकते थे और न उगल ही सकते थे। जाना अनिवार्य था और अकारण ही प्रेमला को छोड़कर जाया भी कैसे जाय, यह तो रास्ता रोके खड़ी है। राजा चन्द्र को तुरन्त एक बहाना सूझा। बोले—

"प्रिये ! मैं लघु शंका के लिए जा रहा हूँ। अभी लौट आऊँगा।"

यह कहकर उन्होंने प्रेमला से झटके के साथ अपना हाथ छुड़ाया और बाहर चल दिये। प्रेमला भी बड़ी चतुर थी, वह भी जल की झारी लेकर उनके पीछे-पीछे चलने लगी। राजा कनकरथ ने बहुत रोका, पर वह न रुकी, क्योंकि राजा चन्द्र की समस्याओं से उसके मन में सन्देह हो गया था। अतः विवश होकर राजा चन्द्र को लघु शंका से निवृत्त होकर पुनः वापस आना पड़ा। यह उलट-फेर देखकर धूर्त मन्त्री हिंसक ने राजा चन्द्र से कुछ चुभने वाली यह अन्योक्ति कही—

रजनीप्रिय हे विहगवर, भूला क्यों मतिहीन।
भूला यदि मर्याद निज, होगा तू ही दीन॥

अर्थात् हे रजनी को चाहने वाले पक्षि श्रेष्ठ ! [उल्लू ! इस समय तू] मतिहीन होकर [अपनी औकात] भूल क्यों गया है ? अगर [तू इसी तरह] अपनी मर्यादा (सूर्योदय के पहले ही कहीं छिप जाना)[1] भूला रहेगा (दिन निकलने से पहले यहाँ से नहीं जायेगा) तो तू स्वयं दीन बन जायेगा।

हिंसक मन्त्री की यह अन्योक्ति राजा चन्द्र के चुभ गई। लेकिन वे प्रेमलालच्छी की चतुराई के कारण विवश थे। वे बड़ी बैचेनी से बार-बार द्वार तक जाते और लौट आते, क्योंकि प्रेमला तो चाँदनी की तरह चन्द्र के साथ ही लगी हुई थी। वह अब

---

१ दिन के उजाले में कौआ उल्लू पर हमला करता है। कौए के डर से उल्लू दिन में छिपा रहता है। इसीलिए राजा चन्द्र रूपी उलूक को प्रभात से पहले ही चले जाना चाहिए।

उन्हे दरवाजे के पास खडे रहने देना भी नही चाहती थी। वह बार-बार उन्हे रति-शय्या पर आने का मौन-मधुर निमन्त्रण दे रही थी। लेकिन यहाँ तो बात ही दूसरी थी। प्रेमला चन्द्र की होते हुए भी चन्द्र की नही थी—पराई थी। उसका भोक्ता अधिकारी सिहलकुमार कनकध्वज था। यहाँ निमन्त्रण को ठुकराना ही न्याय था, धर्म था—वचनो का निर्वाह था। फिर भी किसी-न-किसी तरह प्रेमला ने चन्द्र को शय्या पर बैठा ही लिया और उनसे प्रेमपूर्ण बाते करने लगी। लेकिन राजा चन्द्र कर्तव्यबोध और हिसक मन्त्री की पीडापूर्ण चेतावनी से बहुत परेशान थे। उन्हे बहुत परेशान देख प्रेमलालच्छी ने कहा—

"प्राणवल्लभ! आज आप इतने परेशान क्यो है? आप बार-बार बाहर जाते और लौट आते है। प्रथम मिलन मे इस दासी से क्या चूक हुई है, सो बताने की कृपा करे, आप अपने मन की बात मुझे न बतायेंगे तो किसे बतायेंगे? कही ऐसा तो नही कि आपको मेरी किसी सौत अपनी किसी दूसरी प्रेमिका की याद आ रही हो? या मेरे साथ आपका विवाह आपकी इच्छा के विरुद्ध हुआ हो। स्वामी! जो भाग्य मे लिखा था, सो हो गया। अब तो आपको मुझे अपने चरणो मे स्थान देना ही पडेगा। आप सब चिन्ताओ को त्याग कर कुछ बाते कीजिए। आप कितना ही छिपाये, पर मै बहुत कुछ समझ गयी हूँ। अठारह सौ योजन दूर आभापुरी के चन्द्र ने विमलापुरी को सनाथ किया है। यह सब विधाता का ही चमत्कार है। मै आपको हरगिज नही जाने दूँगी।"

राजा चन्द्र की वाणी पर तो वचनबद्धता का ताला पडा

हुआ था। फिर भी कुछ न कहना और भी बुरा होगा, इस विचार से राजा चन्द्र ने कहा—

"प्रिये! तुम इतना हठ क्यो करती हो? जब भाग्य की करनी पर तुम्हे विश्वास है तो उसके खेल देखती चलो। मिलाने वाला और विछोह करने वाला वही एक भाग्य है। भावी बडी प्रबल है। हानि-लाभ, जीवन-मरण तथा यश-अपयश—सब विधि के ही हाथ है। कुछ बातें कहने की नही होती, बस समझने की होती हैं और समझदार आदमी उन्हे समझकर ही रह जाते है, कहते-सुनते कुछ नही हैं। अब तुम ..।"

चन्द्र आगे कुछ कहना ही चाहता था कि दोनो के मध्य हिंसक मन्त्री आ धमका और चन्द्र राजा की ओर घूरकर कडी निगाह से देखा तथा फुसफुसाहट की भाषा मे कुछ कहा भी। हिंसक को देख प्रेमला उसकी ओर पीठ करके घूंघट डाल कर खडी हो गई। लज्जा के कारण वह इधर देख भी नही पाई कि तभी राजा चन्द्र दनदनाते हुए बाहर चले गये और पीछे मुड़-कर देखे बिना ही सीधे सिंहलपति कनकरथ के पास पहुँचे और बोले—

"सिंहलपति! आपके आग्रह से मजबूर होकर मैने आपका काम कर दिया है। आपकी तथाकथित पुत्रवधू प्रेमलालच्छी तडपती हुई रह गई है। अब उसे संभालना और उसका ख्याल रखना आपका काम है। मैं अब जाता हूँ।"

इतना कह किसी भी उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वे उद्यान मे आये। ढाई पहर रात बीत चुक थी। आभापुरी का आम्र-वृक्ष यथावत् विमलापुरी की उद्यान-भूमि मे खडा था। राजा

चन्द्र वृक्ष के कोटर मे पूर्ववत बैठ गये और सास-बहू की प्रतीक्षा करने लगे। इधर गुणावली ने वीरमती को टोका—

"माता जी ! तारागणो ने डूबना शुरू कर दिया है। अब जल्दी ही चलना चाहिए।"

वीरमती ने विद्या के अहकार मे कहा—

"बहू ! तू डरती बहुत है। चिन्ता क्यो करती है ? आभापुरी का बच्चा बच्चा नीद मे बेहोश हुआ पडा है। तेरा चन्द्र भी तो मूर्च्छित पडा मिलेगा। जब तू उसे कणेर की छडी मारेगी, तभी उठेगा और नगरवासियो को मैं जाकर जगाऊँगी।"

गुणावली ने चिन्तित मे स्वर मे कहा—

"माता जी ! कहती तो आप ठीक है। लेकिन दिन के उजाले मे किसी ने आम्रवृक्ष को आकाश मे उडते देख लिया तो सब मे कुतूहल जागेगा। वृक्ष की डालो पर बैठी हम दोनो व्यन्तरी सी दिखाई देंगी।"

वीरमती गुणावली के इस विचार से सहमत हो गई और उद्यान की ओर जाते हुए बोली—

"अच्छा चलो। अब तूने विमलापुरी तो देख ही ली। इसी तरह मैं तुझे और भी देश दिखाऊँगी।"

"दोनो सास-बहू आम्रवृक्ष पर चढ गई। वीरमती ने वृक्ष के कणेर की छडी मारकर कहा—

"रसाल ! अब हमें आभापुरी के उसी स्थान पर उतार दो, जहाँ से लेकर चले थे।"

वीरमती के कहते ही आम्रवृक्ष आकाश मे उड चला और कुछ ही देर बाद आभापुरी के पूर्व उद्यान पर आरोपित हो गया। सास-बहू दोनो वृक्ष से उतरी।

वीरमती ने कहा—

"बहू ! बड़ा सुहाना समय है। क्यों न हम लोग यहीं नित्य क्रिया से निवृत्त होकर कुछ देर वापी में स्नान करें। अभी तो पूरे तारे भी नहीं छिपे। जल्दी क्या है, अभी सब सोते ही रहेंगे।"

सास-बहू नित्य-कर्म में लग गईं। राजा चन्द्र को अच्छा अवसर मिल गया। वे तुरन्त अपने शयनकक्ष में आये और शय्या से मानवाकृति में लिपटे कपड़े उठाकर यथावत् रख दिये तथा मुँह ढककर बायें करवट से लेट गए। दैव, जैसा चाहता है, वैसे ही संयोग बन जाते हैं। भाग्य जो कुछ आगे करना चाहता था, उसी की पूर्ति के कारण गुणावली और वीरमती के मन में कुछ देर जल-विहार करने की इच्छा हुई और राजा चन्द्र को नाटक पूरा करने का अवसर मिल गया, वरना उनके लिए पुनः शय्या तक पहुँचना कितना मुश्किल होता।

: ३ :

हिंसक मन्त्री के आ जाने के कारण प्रेमलालच्छी लाज की मारी सिमटी-सिकुडी-सी हिंसक की ओर पीठ करके घूंघट टालकर खडी हो गई। अभी तो वह नई-नवेली दुल्हन थी। उसका लज्जित होना स्वाभाविक था। ऐसा मौका राजा चन्द्र कब चूकने वाले थे? हृदय पर पत्थर रखकर कक्ष से बाहर हो गए और सीधे सिंहलेश्वर कनकरथ के पास पहुँचे। राजा कनकरथ से विदा लेने के पश्चात वे आम्रकोटर मे बैठकर आभापुरी को रवाना हो गए। इधर प्रेमलालच्छी जल बिन मीन की तरह छटपटाने लगी। कही यह राजा चन्द्र का पीछा न करे, इसलिए हिंसक वही अडकर खडा रहा। जब उसने सोचा कि राजा चन्द्र अब प्रेमला की पकड से बाहर है तो प्रेमला के पास से हटकर राजा कनकरथ के पास आया। वहाँ राजा कनकरथ के साथ रानी कनकवती, कपिला धाय और कुमार कनकध्वज पहले से ही उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। राजा कनकरथ ने भी हिंसक मन्त्री को बता दिया कि चन्द्र राजा मुझसे विदा लेकर आभापुरी को चले गए हैं। सब काम निर्विघ्न हो गया। अब आगे की योजना पर विचार होने लगा, अर्थात प्रेमला को कोढी कनकध्वज के साथ लग्न का नाटक शुरू होने लगा। सब योजना पहले से तैयार थी। किसको क्या करना है—सारे प्रपंचियों को अपनी-अपनी भूमिका की जानकारी थी। कनकध्वज को एक बार पुनः सिखा-पढ़ाकर और भी पक्का तैयार कर दिया गया। अब वह नाटकीय

ढग से प्रेमला के शयनकक्ष मे पहुँचा । कनकध्वज को दूर से सजे-धजे रूप मे आते देख प्रेमला ने समझा मेरे प्राणाधार ही लौटकर आ रहे हैं। लेकिन जब कनकध्वज ने दरवाजे मे प्रवेश किया तो प्रेमला ने कडक कर कहा—

"कौन हो तुम ? वही ठहरो ! मेरे पतिदेव की अनुपस्थिति मे किसी भी बराती को यहाँ आने की जरूरत नही है। अभी-अभी सिंहल के महामन्त्री हिंसक यहाँ आये थे, तब तो मेरे स्वामी यहाँ थे । लेकिन अब तुमने यहाँ आने का साहस कैसे किया ? उल्टे पैरो वापस चले जाओ।"

कनकध्वज वापस जाने के लिए नही आया था। वह तो प्रेमला पर अपना अधिकार जताने के लिए आया था । अत पहले से सीखे-पढे कनकध्वज ने मुस्कराने की असफल चेष्टा करते हुए कहा—

"प्राणप्रिये ! मैं ही तो तुम्हारा पति सिंहल का राजकुमार कनकध्वज हूँ । जब तुम्हारा पति ही तुम्हारे पास न आ सकेगा तो कौन आयेगा ? विवाह के कुछ ही समय बाद तुम मेरा तिरस्कार अथवा अपने पति का अपमान क्यो कर रही हो ?

प्रेमला ने कनकध्वज के रूप को देखा तो उसे हँसी आ गई । दुबला-पतला शरीर जिस पर जगह-जगह से पीव बह रहा था । कोढ की दुर्गन्ध दूर से ही आ रही थी । कनकध्वज के इस घिनोने रूप को देखते हुए उसका प्रेमला को प्राणप्रिया कहना छोटे मुंह बडी बात थी । प्रेमला ने मुस्कराकर कहा—

"नाटक करना तुमने अच्छा सीखा है, पर मेरा पति बनने से पहले दर्पण मे मुंह नही देखा ? एक कक्ष मे टिमटिमाने वाला दीपक मार्तण्ड की होड करना चाहता है ? अगर तुम मेरे पति

बन गए तो आज से सिंहनी के साथ सिंह की जगह शृगाल का नाम जुडा करेगा ।"

कनकध्वज ने जैसे ही और कुछ कहने को मुंह बनाया कि प्रेमला ने कठोर स्वर मे कहा—

"सीधी तरह चुपचाप चले जाओ। मैं तुम्हारी कोई बात सुनना भी पाप समझती हूँ। तुम्हारे साथ इतनी बात कर गई, इसका भी मुझे प्रायश्चित्त करना पडेगा। अगर सीधी तरह बाहर नही जाओगे तो मैं प्रहरियो को आवाज देकर तुम्हे पकडवा दूंगी।"

लेकिन ढीठ कनकध्वज तो प्रेमला की शय्या की ओर बढने लगा। प्रेमला उछलकर खडी हो गई और परिस्थिति का मुकाबला करने के लिए वीरबाला प्रेमला कटार तानकर सन्नद्ध हो गई। भयभीत बना कनकध्वज वही-का-वही ठिठक गया। अब कपिला धाय की बारी थी। इतना भाग कनकध्वज के अदा करने के बाद कपिला को सहायक बनकर आने का निर्देशन हिंसक मन्त्री उसे पहले ही दे चुका था। कपिला धाय प्रेमला के कमरे के दरवाजे पर खडी होकर बोली—

'बहू ! तू ऐसी अनहोनी बाते क्यो करती है ? तू कैसी राजकुमारी है, जो प्रथम मिलन मे ही अपने पति को पास बिठाकर दो बाते भी करना नही चाहती। सिंहलपुरी से आये बराती सुनेगे तो क्या सोचेगे ? अपने पागलपन को छोड और कुमार को पास आने दे। मैंने तो जन्म से ही कुमार को पाला है। मैं अच्छी तरह जानती हूँ, ये तेरे स्वामी सिंहलकुमार कनकध्वज है।

कपिला धाय की धूर्तता भरी बाते प्रेमला के कानो मे तीर-सी चुभ रही थी। [illegible] वह अपना कर्त्तव्य निश्चित कर रही थी।

जिस तरह सुमन की दो ही गतियाँ उत्तम मानी गई हैं—देव के सिर चढना अथवा धूल मे मिलकर अपना अस्तित्व खो देना। इसी तरह सती नारी के शरीर की भी दो ही गतियाँ है—प्रथम तो उसके पति की बाँहे उसका स्पर्श करती है या फिर अग्नि, अग्नि अथवा मृत्यु ही उसका आलिगन करती है। प्रेमला ने भी यही निश्चय किया कि यदि उसका कोई वश न चला तो वह अपने वक्ष मे कटार भोंक लेगी।

कपिला धाय के बार-बार उकसाने पर प्रेमला ने उसे फटकारते हुए कहा—

"बुढिया! तेरे मुँह मे एक भी दाँत नही है। तेरे श्वेत बाल तुझसे बार-बार कह रहे हैं कि इस बुढापे मे अपने पाप धोकर आत्मा को उज्ज्वल कर ले। लेकिन तू एक सती नारी को भ्रष्ट करने का वृथा प्रयास कर रही है। मैं तेरी बातो मे हरगिज नही आ सकती। तुम्हारा मायाजाल मैं सब समझ गई हूँ। गगाजी का जल पीने वाले मेरे पति तो आभानरेश राजा चन्द्र ही हैं। यह कोढी मेरा पति क्या खाक होगा? अब भलाई इसी मे है कि तुम दोनो मेरी आँखो के सामने से दूर हट जाओ।"

अब आगे कपिला धाय को क्या करना है, इसका निर्देशन हिंसक मन्त्री पहले ही दे चुका था। सब मामला गँठा-गठाया था। कपिला धाय प्रेमला के पास से बाहर आई और जोर-जोर से चिल्लाकर कहने लगी—

"दौडो-दौडो! जल्दी दौडो! यह बहू तो विषकन्या है। इसके प्रथम स्पर्श से ही कुमार कनकध्वज को कोढी बना दिया। कामदेव के समान सौन्दर्यशाली कुमार की कचन-काया से पीव टपक रहा है। देखो थोडी ही देर मे क्या अनर्थ हो गया।"

अपने स्वामी सूर्य का स्वागत करने उषा सुन्दरी मांग मे सिन्दूर भरे प्राची मे आ विराजी थी। पर उस चिर सुहागिनी का सूर्य से मिलन आज तक नही हो पाया। वह रोज सिन्दूर भर कर आती है और सूर्य के आगमन से पहले ही उसका विछोह हो जाता है। ऐसे सुन्दर समय मे विमलापुरी के लोग तथा सिहल-पुरी के बराती शय्या को उसी प्रकार त्याग चुके थे, जैसे प्रति-बोधित ज्ञानी जीव ससार के माया-मोह को त्याग देते है। कुछ लोग प्रात -समीरण का आनन्द ले रहे थे। कुछ स्नानादि कर रहे थे। कोई-कोई विलम्ब से उठने वाले शौचादि से निवृत्त हो रहे थे। लोगो ने जब कपिला धाय का हल्ला सुना तो प्रेमलालच्छी के कमरे के आगे अच्छी-खासी भीड इकट्ठी हो गई। राजा कनकरथ, रानी कनकावती और हिसक मन्त्री भी अपनी-अपनी भूमिका का निर्वाह करके नाटक को चरम परिणति पर पहुँचाने लगे।

सिहल का राजा कनकरथ मन्त्री हिसक को फटकार रहा था—

"मै तो किसी भी कीमत पर यह विवाह करने को तैयार नही था, लेकिन तेरे दबाव के कारण ही मैने यह सम्बन्ध स्वीकार किया था। तेरी हठधर्मी का फल आज मुझे यह देखना पड रहा है कि विषकन्या प्रेमला के स्पर्शमात्र से ही मेरा बेटा कोढी हो गया।'

हिसक अपनी भूल पर लज्जित होने का अभिनय कर रहा था और रानी कनकवती फूट-फूट कर रो रही थी और रुदन करते हुए कह रही थी—

'मेरे सोने-से बेटे को इस चुडैल ढग ने क्या कर दिया ? मै

क्या करू ? कहाँ जाऊँ ? अरे किसी वैद्यराज को लाकर मेरे वेटे को दिखाओ।"

लोगो की सहानुभूति सिंहलपुरी वालो के पक्ष मे थी। जिसके पक्ष मे लोकमत हो, उसे फिर कौन पराजित कर सकता है ? लोकमत सदा बाहरी आँखो से देखता है, इसलिए उसे बाहरी कारण ही दिखाई देते हैं। अन्दर की गहरी बात उसकी समझ मे नही आती। इसीलिए बहुत बार लोकमत के कारण सच्चे को झूठा बनना पडता है। यदि कोई राहगीर जगल मे साँप की बाँबी के पास प्राण छोड दे तो देखने वाले यही कहेगे कि यह आदमी साँप के काटने से ही मरा है। दूसरा कोई कारण तो मन मे आयेगा ही कैसे ?

विमलापुरी के नर-नारियो ने अपनी आँखो से कनकध्वज के धोखे मे कामदेव सदृश राजा चन्द्र को देखा था और अब कनकध्वज कोढी हो गया था। सबका यही एक खयाल था कि निश्चय ही प्रेमला विषकन्या है। इसी ने कुमार को कोढी किया है।

राजा मकरध्वज के कानो मे भी यह बात पहुँची कि उनका जामाता कनकध्वज प्रेमला के स्पर्श से कोढी हो गया है। प्रेमला के अशुभ कर्मोदय के कारण उन्होने बिना कुछ सोचे-विचारे प्रेमला को प्राणदण्ड का आदेश दे दिया। अब वे ऐसी पुत्री का मुँह देखना भी नही चाहते थे। प्रेमला को कुछ भी कहने का अवसर नही दिया गया। उससे कुछ भी पूछे बिना राजा मकरध्वज उसे वधिक के हाथो सौंप रहे थे। विमलापुरी के दूरदर्शी महामन्त्री सुबुद्धि ने महाराज मकरध्वज को समझाने की चेष्टा की—

"महाराज ! निर्णय जल्दी दीजिए, लेकिन देर तक सोचने के बाद ही दीजिए। हो सकता है, प्रेमला बिलकुल निर्दोष हो।"

राजा ने मन्त्री की एक न सुनी और अपने निर्णय पर अडिग रहे। अन्तत वधिक लोग प्रेमला को जगल की ओर लेकर चल ही दिये। मन्त्री सुबुद्धि ने अपने विशेषाधिकार से बरात को सिहलपुरी रवाना नही होने दिया।

प्रेमला अपनी कर्म लीला चुपचाप देख रही थी। उसे किसी से कोई शिकायत नही थी। सभी कर्ता भाग्य के इशारे पर काम कर रहे थे। राजा कनकरथ, मन्त्री हिसक उसके पिता मकरध्वज तथा वधिक आदि सब कर्मो से प्रभावित होकर ही अपना-अपना करणीय अदा कर रह थे।

प्रेमला बुद्धिमती और धर्म मे आस्था रखने वाली सती नारी थी। जहाँ उसकी बात विश्वसनीय ही न मानी जाए, वहाँ किसी से कुछ कहने से लाभ ही क्या था ? यही सोच वह मौन थी।'

प्रेमला की माँ ने भी अपना हृदय पत्थर बना लिया। उसने भी उससे कुछ नही पूछा। उसने भी सोचा, कल रात तो रूपवान जामाता को मैने अपनी आंखो से विवाहमण्डप मे देखा था। आज सवेरे उठते ही उनका यह अशुभ और घिनौना रूप देखने मे आया। ऐसी विषकन्या बेटी का तो मर जाना ही अच्छा है।'

राजा की आज्ञा से वधिक प्रेमला को लेकर जंगल मे पहुँच गए। नगर का आनन्द-सागर आज शोक सागर मे बदल गया था। नगरवासियो के चेहरो की हवाइया उड रही थी लोग त्राहि-त्राहि कर रहे थे लोगो का विचार था कि यद्यपि राजकुमारी दोषी है, पर राजा को इतना निर्दय नही होना चाहिये कि उसका प्राणान्त करने जंगल मे भेज दिया।

इधर वन मे प्रेमला को नियत स्थान पर खड़ाकर वधिको ने कहा—

"राजकुमारी ! न चाहते हुए भी अपने जघन्य पेशे के कारण हम राजाज्ञा से तुम्हारा वध करने के लिए कृतसंकल्प हुए हैं। अब तुम कुछ ही देर की मेहमान हो। अब लोक से नाता तोड़कर परलोक की ओर लौ लगा लो तथा अन्त समय मे स्थिरबुद्धि करके अपने इष्ट का स्मरण कर लो।"

वधिक की समयोचित बात सुनकर प्रेमलालच्छी खिल-खिलाकर हँस पड़ी और कुछ देर तक इसी प्रकार हँसती रही। उसको इस तरह हँसता देख वधिको को बहुत आश्चर्य हुआ। वे प्रेमला से पूछने लगे—

"हे राजकुमारी ! तुम्हारी इस असामयिक हँसी का क्या कारण है? रोने के समय इतनी जोर से हँसना बड़ा ही विचित्र है। अपना काम तो हम बाद मे करेंगे पहले तुम हमे अपनी इस हँसी का कारण बताओ।"

प्रेमला ने कहा—

"वधिको ! अपनी इस हँसी का कारण अब तुम्हें क्या बताऊँ? राजा पूछते तो उन्हे बताना ठीक था। तुम पूछकर क्या करोगे? तुम तो अपना कार्य पूरा करके राजा की आज्ञा का पालन करो।"

प्रेमला की बात सुनकर वधिक और भी हैरत मे पड़े। प्रेमला को दूसरे वधिक के पास छोड़कर एक सुबुद्धि मन्त्री के पास आया और उससे सब बाते कहीं। सुबुद्धि ने राजा मकर-ध्वज से कहा—

"महाराज ! एक बार राजकुमारी के मन की बात सुन

लीजिए। मुझे तो इस कार्य मे हिंसक मन्त्री का कोई-न-कोई षड्यन्त्र नजर आता है।"

सुबुद्धि मन्त्री की समयोचित बात सुनकर भी राजा मकरध्वज ने रूखा-सा जवाब दिया—

"महामन्त्री ! मैंने तो प्रेमला का मुँह न देखने का निश्चय कर लिया है। मैं उसका अब मुँह देखना नही चाहता।"

मन्त्री ने पुन आग्रह किया—

"महाराज ! बादल हटने तक सूर्य के दर्शन नही हो पाते। कभी-कभी तो बादलो के घिराव के कारण दिन की रात बन जाती है। षड्यन्त्रकारी तिल का ताड बनाने मे बडे पटु होते है। आप जैसे विवेकवान ने बिना विचारे ही निर्णय ले लिया। बिना सोचे लिये गये निर्णय मे अन्याय की सम्भावना रहती है और अन्याय करने वाला राजा नरक का अधिकारी होता है। आप तो अपनी ही आत्मजा पुत्री प्रेमला के साथ अन्याय कर रहे है।"

राजा के क्रोधरूपी सर्प का जहर कुछ-कुछ उतरने लगा था। अत उसने मन्त्री से पूछा—

"मन्त्री ! मैंने जो निर्णय लिया है, उसमे मै और कुछ सोचने की गुंजाइश ही कहाँ है ? क्या तुमने कल रात कुमार चन्द्रध्वज का देवकुमार का सा रूप नही देखा ? अगर मेरी पुत्री विषकन्या नही है तो कुमार कोढी कैसे हो गये ?"

सुबुद्धि मन्त्री ने कहा—

"राजन् ! यही तो सोचने की बात है, जिसका आपने एक ही पहलू देखा है, उसका दूसरा पहलू आपको मै दिखाता हूँ। मैं यह मानता हूँ कि कुमार चन्द्रध्वज का रूप रंग बहुत ही सुन्दर

था, यह भी मानता हूँ कि अब कुमार कोढी हो गये हैं और यह भी मानता हूँ कि प्रेमला विषकन्या रही होगी। लेकिन इतना भी मैं निश्चित जानता हूँ कि राजकुमारी प्रेमला रूप परिवर्तन करने वाली जादूगरनी नही है। विषक या कचन काया को तो कोढी बना सकती है, पर आदमी की 'पहचान' और शक्ल सूरत नही बदल सकती। क्या इतनी-सी बात भी आप नही देख पाये कि रात वाले कनकध्वज और इस समय के कोढी कनकध्वज की पहचान, स्वास्थ्य, कद, ढाँचा, रूप और शक्ल-सूरत मे आकाश-पाताल का अन्तर है ? रात वाले कनकध्वज कोई और थे, भले ही देवलोक से कोई देव कनकध्वज बनकर आया हो। निश्चय ही इस विवाह मे कुछ-न-कुछ धोखा अवश्य हुआ है। किसी दूसरे पुरुष को कनकध्वज बनाया गया है और प्रेमला के गले कोई दूसरा कनकध्वज मढा जा रहा है।

"राजन् ! मेरी इतनी प्रार्थना स्वीकार कीजिए कि राजकुमारी प्रेमला की बात सुन लीजिए। अगर आप उनका मुंह देखना नही चाहते तो न देखें। पिता-पुत्री—आप दोनो के बीच यवनिका डाल दी जायेगी।"

राजा ने प्रेमला की बात सुनने की अनुमति दे दी। वधिकजन प्रेमला को जगल से लेकर राजा के पास आ गये। राजा मकरध्वज और प्रेमला के बीच नीले रग की रेशमी यवनिका टाग दी गयी। प्रेमला से जब उसके मन की बात पूछी गयी तो वह इस प्रकार बताने लगी—

'विमलापुरी के पालक और मेरे जन्मदाता राजा मकरध्वज तथा पूज्य महामन्त्री तथा अन्य श्रोताओ ! पूज्य पिताजी मेरा

मुंह नही देखना चाहते, यह मेरे पूर्व पापो का परिणाम है। इस जन्म मे मैंने ऐसा कुछ नही किया, जैसाकि पिताजी समझ रहे है।"

"मेरा विवाह सिंहलकुमार कोढी कनकध्वज के साथ नही हुआ। मेरे प्राणवल्लभ आभापुरी के राजा चन्द्र हैं। रात आपने जिसके साथ मुझे विवाहमण्डप मे देखा था, वे ही आभापति चन्द्र थे। विवाहोपरान्त जब मैं उनके साथ रगमहल मे जाकर चौपड खेलने लगी तो उन्होने एक समस्या के रूप मे कहा कि 'आभा' के चन्द्र का यह मिलन एक सयोग ही है। कौन जाने यह सयोग अब निभेगा भी या नही। इसके बाद उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि आभानगरी मे राजा चन्द्र के यहाँ बडे भव्य क्रीडा-भवन बने है। वहाँ के पासे भी अच्छे है। यहाँ खेलने मे कुछ आनन्द नही आता। जब उन्होने भोजन किया तो सिंहलपुरी की सिन्धु नदी के बारे मे कुछ न कहकर, आभापुरी की गगा नदी के जल के स्वाद की प्रशसा की। इसके अनन्तर जब हम दोनो बरात के मध्य वर-वधू कक्ष मे पहुँचे तो मेरे प्राणाधार आभापति बाहर जाने लगे। मैं सब रहस्य जान चुकी थी, इसलिए छाया की तरह कक्ष के बाहर भी उन्ही के साथ रही। हिंसक मन्त्री बार-बार उनसे चले जाने के इशारे कर रहा था। उसने सांकेतिक भाषा मे अनेक बार कहा कि यहाँ से चले जाओ। मेरे पति बडी दुविधा मे थे। वे किसी वचन मे बँधे हुए थे, इसलिए स्पष्ट कुछ न कह पाते थे, पर उनकी परेशानी सब कुछ बता रही थी। इतने मे हिंसक मन्त्री मेरे पास आकर खडा हो गया। मैं शर्म से उनकी ओर से पीठ फेरकर खडी हो गई। मौका देखकर मेरे स्वामी मुझे छोड कर चले गये। उसके कुछ ही देर बाद यह कोढी कनकध्वज आया और मुझे अपनी पत्नी कहने लगा। जब मैंने उसे

तो कपिला धाय ने मुझे समझाया कि मैं उसी कोढी की पत्नी हूँ। जब मैंने उसे भी फटकार दिया तो कपिला धाय चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगी कि प्रेमला विषकन्या है। इसके बाद जो कुछ हुआ सो आप सब जानते ही हैं।"

प्रेमला की बातें सुनकर राजा मकरध्वज के कान खुल गये। अपने हाथ से यवनिका हटाई और प्यारी बेटी प्रेमला को गले लगाकर बच्चो की तरह रोने लगे। लेकिन उनकी यह ममता एकदम क्रोध मे बदल गई। वे मन्त्री सुबुद्धि से बोले—

"महामन्त्री ! अब शीघ्र ही इन सिंहलपुरी वाले पापियो को मौत के घाट उतार दो। हिंसक ने मुझे ऐसा धोखा दिया ? मैं अब सिंहलवासियो को जीवित नही रहने दूँगा।"

सुबुद्धि मन्त्री ने समझाया—

"राजन् ! जल्दी न करें। हमेशा धैर्य ही सुखदायी होता है। पहले हम सिंहल के पाँचो षड्यन्त्रकारियो को कारागार मे डल-वाये देते है। उनके दण्ड का फैसला बाद मे होता रहेगा।"

मन्त्री के परामर्श से राजा मकरध्वज ने सिंहलपुरी के राजा कनकरथ, रानी कनकवती, मन्त्री हिंसक, कपिला धाय तथा कुमार कनकध्वज—पाँचो प्राणियो को कारागार मे डलवा दिया। अब मन्त्री सुबुद्धि ने दूसरा परामर्श दिया—

"महाराज ! प्रेमला का विवाह पक्का करने हमने जिन चार मन्त्रियो को सिंहलपुरी भेजा था, उनसे भी पूछ लिया जाये कि उन्होंने कुमार कनकध्वज को देखा था, या बिना देखे ही नारियल भेंट कर दिया था। अगर देखा था तो कुमार कनकध्वज का रूप रात वाले वर जैसा था या सुबह वाले कनकध्वज जैसा था ?

मन्त्रियो के कथन से सब मामला साफ हो जायेगा। फिर तो आभापुरी भेजकर राजा चन्द्र को बहुमानपूर्वक यहाँ बुलाया जायेगा।"

राजा मकरध्वज ने सुबुद्धि मन्त्री की सलाह से पूर्ण सहमति प्रकट की और तत्काल विवाह पक्का करने वाले चारो मन्त्रियो को बुलाया गया। राजा ने मन्त्रियो से कठोर स्वर मे कहा—

"मन्त्रियो! तुमसे जो भी पूछा जाय, सच-सच कहोगे। अगर किसी ने झूठ बोलकर मुझे धोखा देने की कोशिश की तो कठोर दण्ड दिया जायेगा।"

तुमने कुमार कनकध्वज को अपनी आँखो से देखा था या नही? राजा के यह पूछने पर चारो मन्त्री एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। कोई भी पहले बोलना नही चाहता था। तब महामन्त्री सुबुद्धि ने अपनी एक दूसरी व्यवस्था बनाई। उन चारो को अलग-अलग कमरो मे बिठा दिया गया और एक-एक करके प्रत्येक से स्पष्टीकरण मांगने का निश्चय किया। सुबुद्धि मन्त्री ने चारो मे से एक मन्त्री को बुलाकर राजा मकरध्वज के सामने ही पूछा—

'जब तुम चारो कुमार कनकध्वज को देखकर प्रेमला का विवाह पक्का करने गये थे, तब तुमने कुमार कनकध्वज को अपनी आँखो से देखा था?"

मन्त्री सिटपिटाया। झूठ कैसे कहे, और सत्य भी बोले तो खैर कहाँ? अत उसने सचाई को झूठ के सहारे खड़ा करते हुए कहा—

'महामन्त्री! जिस समय कुमार कनकध्वज को देखने की बात आई तो मेरे पेट मे दर्द हो रहा था, अत मैं तो यथास्थान लेटा रहा। अन्य तीन मन्त्री ही कुमार को देखने गये थे। दर्द के कारण मैं तो देख नही पाया। अन्य तीनो को मुझे मालूम

"अच्छा तुम जा सकते हो।" सुबुद्धि ने यह कहकर पहले मन्त्री को विदा किया और दूसरे को बुलाकर वही प्रश्न किया। दूसरा भी बगलें झांकने लगा और झूठ-सच का सगम करते हुए बोला—

"महाराज ! मैं झूठ नही बोलूंगा। मैं कुमार कनकध्वज को नही देख पाया, क्योंकि जिस समय हम चारो कुमार को देखने जा रहे थे, उस समय मुझे रास्ते मे ही याद आया कि मैं अपनी अँगूठी डेरे पर ही भूल आया हूँ। अत मैं बीच मे से ही लौट पड़ा और ये तीनो कुमार को देखने चले गये। मैं इनके साथ नही था। काफी देर तक मैं अँगूठी ही देखता रहा और फिर डेरे पर ही रहा।"

दूसरे मन्त्री की बात सुनकर महामात्य सुबुद्धि महाराज मकरध्वज की ओर देखकर मुस्कराये। असलियत दोनो के सामने थी। दूसरे मन्त्री को उसके कमरे मे पहुँचा दिया गया और तीसरे को बुलाया गया। तीसरा भी सुबुद्धि के प्रश्न पर घबरा गया। उसके प्राण कण्ठ मे आ गये। लेकिन साहस करके उसने भी झूठ-सच का मिलाप करते हुए कहा—

"महाराज ! साँप सब जगह टेढा चलता है, पर बाँबी मे सीधा चलता है। मै कितना ही झूठ बोलूँ, पर आपके सामने सब सच ही कहूँगा। कुमार कनकध्वज काना कुबडा है या कामदेव का अवतार, मैंने अपनी आँखो से नही देखा। जिस समय हम चारों कुमार को देखने गये, उस समय मैं एक दूसरी ही समस्या मे उलझ गया। उसी समय सिहलनरेश कनकरथ का भानजा रूठकर भागा जा रहा था। राजा ने मुझे उसे मनाने भेज दिया। इसलिए मैं कुमार को देखने से वचित रह गया।"

अब चौथे मन्त्री की बारी थी। सुबुद्धि मन्त्री ने चौथे को भी बुलवाया। चौथे से भी वही प्रश्न किया गया—

"क्या तुमने सिंहलकुमार कनकध्वज को अपनी आंखो से देखा था ? मैं पहले तीन मन्त्रियो से सब कुछ सुन चुका हूं। तुम्हारी बाबत भी सब मालूम हो चुका है। अगर सच बोलोगे तो निश्चय ही तुम्हे क्षमा कर दिया जायेगा। सिंहलपुरी मे जो कुछ तुम चारो करके आये हो, साफ-साफ बताओ।"

चौथे मन्त्री ने सब बातें सत्य बताते हुए कहना शुरू किया—

"महाराज और महामन्त्री ! अब आप मारे या छोड़े, जो कुछ हमारे साथ हुआ है, सब सच-सच ही बताऊँगा। यदि आप दण्ड ही देंगे तो झूठ बोलकर दण्ड पाने की अपेक्षा सत्य बोलकर दण्ड पाना मै अधिक अच्छा समझता हूँ, क्योकि सत्य कह देने पर एक ही अपराध साबित होता है और झूठ बोलने पर मनुष्य तीन गुना अपराधी हो जाता है—पहला अपराधी अपराध करने के कारण, दूसरा अपराध उसका अपराध छिपाना और तीसरे परलोक की दृष्टि से झूठ बोलकर पापकर्म का बन्ध होता है। अत मैं सब सच-सच ही कहूंगा।

"हम चारो मे से किसी ने भी कुमार कनकध्वज को नही देखा। पहले तो सिंहलपति कनकरथ यह विवाह करने को राजी ही नही होते थे। उनके नाज नखरे ऐसे थे, मानो कोई देवकन्या ही उनके कुंवर से विवाह करने इस धराधाम पर अवतीर्ण होगी। जब हमने काफी कहा-सुना और उनके नगर के व्यापारियो ने भी हमारी अनुशंसा (सिफारिश) की तो सिंहल रानी राजी हो गया और रानी पर दबाव डालकर राजा कनकरथ को भी राजी

कर लिया और यह भाव दर्शाया कि उन्होने हम पर बहुत बड़ा अहसान किया है।

"राजन् ! मन्त्री ने हमे अपने घर पर दावत दी और फिर एक-एक करोड रुपये की थैली भेंट करके हमे उत्कोच (रिश्वत) के भार से दबा दिया। हमारा मनोबल और कर्तव्यनिष्ठा गायब हो गई। फिर भी हमने साहस करके मन्त्री हिंसक से कुमार को देखने का आग्रह किया तो मन्त्री हिंसक ने झिडकते हुए हमसे कहा—

"आप लोग तनिक-सी बात पर इतने क्यो अडे हुए हैं ? हमने भी तो राजकुमारी प्रेमलालच्छी को देखे बिना तुम पर विश्वास कर लिया है। तुम हमे झूठा क्यो समझते हो ?"

"मन्त्री हिंसक की यह बात सुनकर मैंने कहा कि हमारी राजकुमारी को तो भरे दरबार मे आपके देश के व्यापारियो ने हमारे महाराज की गोद मे बैठे हुए प्रत्यक्ष देखा था। आपके कुमार को तो किसी भी बाहरी व्यक्ति ने नही देखा। केवल सुना भर है। हमारे महाराज की आज्ञा है कि हम कुमार को देखकर ही नारियल भेंट करें।"

राजन् ! मेरी इस बात पर हिंसक मन्त्री बिगड उठा और हमसे बोला—

"हमारे राजा तो यह विवाह ही करना नही चाहते थे। लेकिन तुम इतनी दूर से आये हो, इसलिए मैंने अपने महाराज पर दबाव डालकर उन्हे राजी किया है। तुम खुद ही बना-बनाया काम बिगाडना चाहते हो। इस समय कुमार अपनी ननसाल मे है, वरना मुझे दिखाने मे कोई आपत्ति नहीं थी। तुम विश्वास रखो जैसा तुमने कुमार के बारे मे सुना है, वे वैसे ही हैं।

विवाह-मण्डप मे विमलापुरी मे तुम सब देखना। अगर जैसा हमने कहा है, कुमार कनकध्वज वैसे न हो तो हमसे कहना। हम स्वय ऐसा कोई काम नही करना चाहते, जिससे हम तुम दोनो को बाद मे लज्जित होना पडे। हम लोग भी सात बार छानकर पानी पीते है। हम लोग आपको कैसे फँसा सकते है? इस सचाई को तो सारा ससार जानता है कि कुवर कनकध्वज अद्वितीय सुन्दर है। अगर उनके सौन्दर्य की प्रसिद्धि न होती तो आप लोग यहाँ तक कैसे आते? आप लोग राजकुमारी प्रेमला के भाग्य की सराहना कीजिए, जो उसे कुंवर कनकध्वज जैसा रूपवान, तेजस्वी वर मिल गया।"

"राजन्! हम चारो ही मन्त्री हिंसक के बहकावे मे आ गये और धन के दबाव के कारण कोई प्रतिरोध न कर सके तथा कुंवर कनकध्वज को बिना देखे ही विवाह पक्का कर आये।"

चौथे मन्त्री की सत्यवादिता से राजा मकरध्वज और महामात्य सुबुद्धि बहुत प्रसन्न हुए। उसे मुक्त कर दिया गया। अन्य तीनो मन्त्रियो ने भी मूल सत्य तो कहा ही था, इसलिए उन्हे भी क्षमा कर दिया गया। अब सब स्थिति शीशे की तरह साफ थी। कनकरथ का पुत्र कनकध्वज जन्म से ही कोढी था। उसके दोष पर परदा डालने के लिए ही उसे तहखाने मे रखा गया और विवाह के दिन आभानरेश चन्द्र को कनकध्वज बनाकर प्रेमला के साथ विवाह किया गया।

सिंहलपति कनकरथ और मन्त्री हिंसक की इन धूर्ततापूर्ण शरारत को देखकर महाराज मकरध्वज बहुत क्रुद्ध थे और वे दोनो षड्यन्त्रकारियो को प्राण-दण्ड देना चाहते थे। किन्तु महामात्य सुबुद्धि ने उन्हे बताया कि राजा चन्द्र के पुत्र न मिलने तक

उन्हे कारागार मे ही बन्द रखा जाय। उन्हे खाने-पीने तथा रहन-सहन की सब सुविधाएँ दी जाये, क्योकि नीचो के सग मे नीच नही बना जाता। उनकी करनी का फल उनके लिए और हमारी करनी हमारे लिए। अब राजा चन्द्र की खोज-खबर ली जाए और उन्ही से पूछा जाए कि यह सब नाटक कैसे हुआ। वे कनकध्वज क्योकर बने तथा अठारह सौ योजन दूर आभापुरी से रातो-रात यहाँ कैसे आये? यह सब भी अपने मे एक रहस्य है। सब रहस्यो का ही उद्घाटन हो जाने के बाद ही कुछ करना उचित रहेगा।

महाराज मकरध्वज महामात्य सुबुद्धि का परामर्श पाकर बहुत प्रसन्न हुए। प्रेमलालच्छी के सत्साहस और उत्कृष्ट चरित्र की सभी ने प्रशंसा की। विमलापुरी के नर-नारियो की दृष्टि से प्रेमला पूजनीय बन गई और सिंहलवासियो को घृणा की दृष्टि से देखने लगी। राजा कनकरथ, रानी कनकवती, मन्त्री हिंसक, कपिला धाय तथा कुमार कनकध्वज—इन पाँच षड्यन्त्रकारियो को छोड़कर सिंहलपुरी से आये शेष बरातियो को ससम्मान विदा कर दिया गया। क्योकि इन लोगो का कोई दोष नहीं था। बराती तो भेड़ो के उस समूह के समान हैं जो अपने हाँकने वाले के कहने से जिधर वह ले जाना चाहता है, उधर चल देते हैं। अपराधी तो वर-पक्ष अथवा कन्या-पक्ष के स्वजन माता-पिता होते हैं।

प्रेमला अपनी सखियो के साथ अपना मन बहलाने का प्रयास करने लगी। विवाह के कुछ ही घण्टो बाद उसका पति से बिछोह हो गया था। अब भी उसका पुनर्मिलन विधि के हाथ मे था।

प्रेमला धर्म ध्यान मे लीन रहकर अपने प्राणवल्लभ महाराज चन्द्र से पुनः मिलने की प्रतीक्षा करने लगी।

× × ×

प्रेमला के पति आभापति चन्द्र की खोज कराने के लिए महाराज मकरध्वज ने उसके लिए एक दानशाला स्थापित की। राजकुमारी प्रेमलालच्छी अपने हाथो से याचको, साधु सन्यासियो तथा अभ्यागतो को मुक्तहस्त से नित्य दान करने लगी। दूर-दूर से आने वाले याचक परिव्राजको से प्रेमला आभापुरी और राजा चन्द्र के समाचार पूछती, पर कोई भी ऐसा व्यक्ति न मिलता जो राजा चन्द्र की बाते बताकर उसको शान्ति पहुँचाता। जब कभी-कभी प्रिय-मिलन दुर्लभ होता है तो प्रिय के समाचार से ही मिलन का-सा सुख मिलता है। निराकार मिलन अथवा आत्ममिलन का आनन्द भी अनिर्वचनीय है।

महाराज मकरध्वज का सुझाव और अनुमति से प्रेमलालच्छी प्रत्येक याचक से पूछती, पर दिन-प्रतिदिन उसे निराशा ही हाथ लगती। कोई कहता—हमने तो आभापुरी सुनी ही नही। कोई कहता—आभापुरी पूर्व दिशा मे है, इतना तो हमने भी सुना है, पर आज तक उधर जाना नही हो पाया। कोई कहता राजा चन्द्र की प्रसिद्धि तो सब जगह व्याप्त है। लेकिन उनके दर्शन हमने कभी नही किये। इस प्रकार प्रेमला हर दिन निराश होते-होते एक दिन अधीर हो उठी और एकान्त मे बैठकर अश्रुधारा बहाने लगी। फिर जब दुख का वेग कुछ कम हुआ तो मिलन-कल्पनाओ मे खो गई। चौसर खेलते हुए राजा चन्द्र के प्रथम-मिलन की मीठी स्मृतियो मे खो गई वह। कभी वह पूरे दिन और पूरी रात लगातार मन्त्र का जाप करती। मन्त्र जाप के प्रभाव-

स्वरूप उसके मन की बेचैनी और उद्विग्नता कम होने लगी। दुख काटने के दो ही उपाय हैं—एक ज्ञानी के लिए और दूसरा मूर्ख के लिए। कहावत है—मूरख काटे रोय के, अरु ज्ञानी काटे मुस्काय।

इसी क्रम मे कुछ दिन के बाद विमलापुरी मे एक जघाचरण मुनि का पदार्पण हुआ। नगरी के बाहर राजोद्यान मे मुनिवर की धर्मसभा जुडी। विमलापुरी की प्रजा का सौभाग्य जग गया। सभी प्रजाजन मुनि-दर्शन को गये और मुनि की धर्मसभा मे एकत्र हुए। इस स्थिति मे राजा भला क्यो पीछे रहते, बल्कि मुनि आगमन का सवाद देने वाले उद्यानपाल को महाराज मकरध्वज ने अपने गले का बहुमूल्य हार तुरन्त दे डाला था। इस शुभ सवाद से वे भी बहुत प्रफुल्लित हुए। पूरा राज-परिवार उद्यान मे पहुँचा। प्रेमलालच्छी भी पिता के साथ मुनि की वन्दना करने पहुँची। मुनि ने अपने सम्मुख बैठे नर-नारियो को सद्धर्म धारण करने का उपदेश दिया। उनके अमृत वचन सुनकर सभी सन्तुष्ट हुए। अन्त मे, प्रेमलालच्छी ने अपनी व्यथा भी मुनि से कही। मुनिवर ने प्रेमला से अमृतोपम वाणी मे कहा—

"राजपुत्री ! सुख दुख तो हर प्राणी के साथ लगे रहते हैं। पूर्वकृत कर्म का भोग सबको भोगना पडता है। जब तुम्हारे पापोदय का अन्त हो जायेगा, तब तुम्हे निश्चय ही तुम्हारा पति मिल जायेगा। सब चिन्ताएँ त्यागकर नवकार मन्त्र का जाप और भी अधिक निरन्तरता के साथ करो। उसी से तुम्हारा मगल होगा, साथ ही तुम्हारे स्वामी का भी शुभ होगा।"

गुरु वचनो को सुनकर प्रेमला की आस्था नवकार मन्त्र के प्रति और भी दृढ हो गई। मुनि के सत्सग से लौटने के बाद वह

तल्लीनता के साथ धर्म-ध्यान मे लीन रहने लगी। इसी तरह समय बीतता रहा। अब प्रेमला का जीवन शुद्ध समकित धारी श्राविका का जीवन हो गया। इस तरह जब कुछ दिन बीते तो नवकार मन्त्र के प्रभाव से शासन देवता ने प्रकट होकर कहा—

"श्राविके! तुझे तेरे स्वामी अवश्य मिलेंगे। पर सोलह वर्ष का अन्तराय अभी तेरे पति के मिलने मे है। ब्याह के दिन से सोलह वर्ष हो जाने के अनन्तर तेरे स्वामी आभापति राजा चन्द्र तुझे मिलेंगे, इसमे सन्देह नही। तुझे अपनी यह मिलन-अवधि धर्म ध्यान करते हुए ही बितानी चाहिए।"

शासनदेव का कथन महाराज मकरध्वज को भी मालूम हुआ। उनकी भी नवकार मन्त्र के प्रति अटूट श्रद्धा हो गई और वे प्रेमला की ओर से भी निश्चिन्त हो गये। अनिश्चित समय की आशा हमेशा झूला ही झुलाती रहती है और निश्चित समय को दीर्घ समय के बाद की आशा भी प्राप्तकर्ता को निश्चिन्त बना देती है।

एक दिन विचरण करती हुई कोई योगिनी प्रेमला के पास आ पहुँची। योगिनी को देखकर दर्शकों के मन में सहज श्रद्धा होती थी। उसका हृदय पर दुख-कातरता के गुण से ओत प्रोत था। उसके गैरिक वस्त्र को देखकर प्रचण्ड और लहराती हुई अग्नि शिखाओं का भ्रम होता था। हाथ मे वीणा, गले में रुद्राक्ष की माला और कोमल मधुर स्वर मे भगवद् पदों का आलाप दर्शकों को उसकी ओर खींचता था। प्रेमला ने भक्ति भाव से योगिनी की वन्दना कर अपने पास बैठाया और उसने उनका वासस्थान पूछा। योगिनी ने कहा—

"राजपुत्री ! जोगी, जल और पवन इनका कोई एक स्थान नहीं होता। मैं तो तीर्थभ्रमण करती हुई यहाँ आ निकली हूँ। जिस दिन, जिस रात जहाँ ठहर जाती हूँ, वही मेरा वासस्थान होता है।"

प्रेमला ने पूछा—

"मातेश्वरी ! क्या आप कभी पूर्व दिशा की ओर भी गई हो ? उधर एक आभापुरी नामक रम्य नगरी है। क्या आपने उस नगरी को भी देखा है ?"

प्रेमला के इस प्रश्न से प्रसन्न होकर योगिनी ने कहा—

"राजकुमारी ! तुमने बड़ी अच्छी जगह की याद दिलाई। वहाँ के राजा चन्द्र तो बड़े ही दानवीर और धर्मात्मा हैं। मैं उनकी आभापुरी में भी कुछ दिन रही। वे बड़े भक्ति-भाव से मुझे आहार आदि देते थे। लेकिन अब तो उनकी विचित्र दशा है। उनकी विमाता वीरमती ने विद्याबल से उन्हें मुर्गा बना दिया है। राजा चन्द्र की पटरानी गुणावली स्नेह-भाव से उस मुर्गे की सेवा करती है। इन दिनों तो राजा चन्द्र 'पिंजरे का पंछी' बने हुए हैं।"

अपने स्वामी का समाचार पाकर प्रेमला बहुत प्रसन्न हुई। यद्यपि यह समाचार हर्ष का नहीं था। पति तिर्यंच योनि में थे। फिर भी प्रेमला को प्रसन्नता हुई, क्योंकि पहली बार उसे प्रियतम का कुछ समाचार तो मिला था। प्रेमला, योगिनी को साथ लिए राजा मकरध्वज के पास ले गई और उन्हें सब बातें बताईं। सब बातें सुनने के बाद राजा मकरध्वज ने प्रेमला से कहा—

"बेटी ! तेरी सभी बातें सच्ची हैं। सिंहलपुरी वालो ने बहुत बडा धोखा किया है। मैं अपनी मूर्खता के कारण तुझे प्राणदण्ड की आज्ञा दे बैठा, जबकि तू सर्वथा निर्दोष थी।"

प्रेमला ने विनम्र होकर कहा—

"पिताजी ! ऊपर से दोषी दीखने वाले तो निमित्त मात्र हैं। मै प्राणदण्ड पाती तो भी अपने कर्मों के कारण ही पाती और अब प्राण बच गए, ये भी अपने कर्मों के कारण ही बचे हैं। आप तो सर्वथा निर्दोष है। सब दोष मेरे कर्मों का ही है।"

कुछ दिन विमलापुरी मे ठहरने के बाद योगिनी वहां प्रस्थान कर गई। प्रेमला का समय अब एक गति मे चलने लगा। उसके विचारो मे समता का भाव था। समता रस से अधिक आनन्द-दायिनी वस्तु इस त्रिलोकी मे नही है। अब तो सोलह वर्ष की अवधि ने प्रेमला, राजा मकरध्वज आदि को धैर्यपूर्ण निश्चिन्तता प्रदान कर दी थी। धीरे-धीरे अवधि-शिला का भार कम होता जा रहा था।

: ४ :

प्रेमला को छोड़कर आभानरेश राजा चन्द्र विमलापुरी के उद्यान मे आ गये और उसी आम्र वृक्ष के कोटर मे बैठ गये। बाद मे वीरमती और गुणावली—सास-बहू भी आम्र वृक्ष पर बैठी। वीरमती की आकाशगामिनी विद्या से वह वृक्ष आकाश मार्ग से तीनो को लेकर आभापुरी के राजोद्यान मे आ पहुँचा। सास-बहू पेड़ से नीचे उतरी। भावी विधान से वीरमती के मन मे एक प्रेरणा उठी और उसने रानी गुणावली से कहा—

"बहू! बड़ा सुहाना समय है! क्यो न हम लोग यहीं नित्य क्रिया से निवृत्त होकर कुछ देर वापी मे स्नान करें। अभी तो प्रभात के तारे भी पूरे नहीं छिपे। जल्दी क्या है, अभी तो सब सोते रहेंगे।"

सास-बहू नित्य कर्म मे लग गईं। राजा चन्द्र को अच्छा अवसर मिल गया। वे तुरन्त अपने शयन-कक्ष मे आये और शान्ताकृति से लिपटे कपड़े शय्या से उठाकर यथास्थान रख दिये तथा स्वयं मुँह ढककर बायें करवट से लेट गये। दैव अथवा भाग्य जैसा चाहता है, वैसे ही संयोग बन जाते हैं।

नित्य-कर्म से निवृत्त होकर सास-बहू दोनो उद्यान से राज-महल को आईं। सारी नगरी निस्तब्ध थी। पक्षियो ने भी चह-चहाना शुरू नहीं किया। यह सब वीरमती की अवस्वापिनी विद्या का प्रभाव था। राजमहल आकर उसने मन्त्र बल से सबको

जगा दिया। लोग उठे और अपने प्रातः कर्म मे लग गये। वीरमती ने गुणावली को कणेर की छडी देकर कहा—बहू! अब तुम इस छडी से अपने पति राजा चन्द्र को जगाओ। तेरे द्वारा छड़ी मारने से पहले वह नही जगेगा। अब तेरे मन का वहम अवश्य दूर हो जायेगा। तू जिस किसी रूपवान पुरुष को देखेगी, उसे ही राजा चन्द्र समझने की भी भूल अब नही करेगी। गुणावली छडी लेकर राजा चन्द्र के शयन कक्ष मे पहुँची। राजा चन्द्र अभिनय के रूप मे गहरी नीद मे सो रहे थे। गुणावली ने धीरे-धीरे कणेर की छडी से सोते हुए राजा का तीन वार स्पर्श किया और फिर उन्हे झकझोरते हुए बोली—

"प्राणवल्लभ! उठिये, सूर्योदय हो गया। आज आप अभी तक सो रहे है? आज तो आप ऐसे सोये कि रात को बीच मे जागना तो दूर रहा, आपने तो करवट भी नही बदला।"

राजा चन्द्र उसके बार-बार कहने और झकझोरने पर भी करवटें ही बदलते रहे, उठे नही। फिर ऐसी अँगडाई ली, मानो गहरी नीद से, नीद पूरी होने से पहले ही उन्हे जगा दिया गया है। फिर वे गुणावली से बोले—

"प्रिये! क्या बताऊँ, कल अचानक ऐसा तूफान आया कि दिन की ही रात बन गई। बेमौसम की बरसात मे कुछ भीग जाने के कारण तबीयत कुछ ढीली हो गई। वाकई, आज मैं बहुत सोया, बहुत देर हो गई।"

राजा चन्द्र को जगा देखकर गुणावली को निश्चय हो गया कि ये रात विमलापुरी मे नही थे। मुझे कोरा भ्रम ही हुआ था। इन्हीं की शक्ल का राजकुमार कनकध्वज था। ये तो माताजी की विद्या के प्रभाव से रात-भर यही सोते रहे। सचमुच माताजी

की विद्या का प्रभाव अमोघ है। इसके बाद गुणावली ने विनोद करते हुए राजा चन्द्र से कहा—

"स्वामी! रात को स्वप्न में कोई सम्पदा पा गये या किसी प्रेमिका के जाल में फँसे रहे?"

राजा चन्द्र ने गुणावली के हृदय को कुरेदते हुए कहा—

"प्रिये! आज तुम्हारी बातें मुझे बड़ी अच्छी लग रही हैं। क्योंकि तुमने रंग पलटना शुरू कर दिया है। रात मैंने एक अद्भुत स्वप्न देखा।"

चकित-चकित गुणावली ने जल्दी ही पूछा—

"कैसा स्वप्न देखा था स्वामी? मुझे भी बताइए।"

राजा चन्द्र कहने लगे—

"रात सपने में मैं विमलापुरी पहुँच गया। वहाँ राजा की बेटी का विवाह हो रहा था। मैंने तुम दोनों—सास-बहू को भी वहाँ देखा। तुम्हारी आँखें देखकर लगता है, यह सपना सच्चा है। ऐसा लगता है तुम रात-भर सोई नहीं हो, सैर सपाटे करती रही हो। तुम्हारी आँखों में रात्रि-जागरण के चिह्न हैं।"

अपनी घबराहट पर काबू करते हुए गुणावली ने कहा—

"स्वामी! आज आप कैसी बात कर रहे हैं? आपके चरणों को छोड़कर मैं कहाँ जा सकती हूँ? सपने भी कहीं सच्चे होते हैं? सपने तो सदा ही झूठे होते हैं। अवचेतन मन में छिपी बातें ही सपने में साकार हुआ करती हैं। मैं रातभर जागी हूँ, यह बात तो ठीक ही है। मैं ही नहीं, माताजी और मैं दोनों ही जागी हैं। इसका कारण भी आपकी [illegible] मगर [illegible] [illegible] था। रात्रि जागरण का कारण [illegible] में [illegible] हैं।

राजा चन्द्र ने मुस्कराकर कहा—

"सास-बहू की तुम्हारी जोडी बडी अच्छी बनी है। तुम दोनो की जोडी अमर रहे। अब वह कारण भी बताओ, जिससे तुम्हे रातभर जगाना पडा।"

गुणावली ने कहा—

"स्वामी ! वैताढ्य पर्वत पर विशाला नामक विद्याधरो की एक नगरी है। वहाँ मणिप्रभ नामक विद्याधर राजा राज्य करता है। विद्याधरी रानी का नाम चन्द्रलेखा है। आज रात को विद्याधर राजा मणिप्रभ का विमान आभापुरी के ऊपर होकर जा रहा था। कल जो तूफान आया था, उसके कारण उसका विमान रुक गया। विमान मे बैठी मणिप्रभ की रानी चन्द्रलेखा ने विद्याधर से पूछा—

"स्वामी ! आज यह बेमौसम वर्षा क्यो हुई और हम लोगो का विमान यहाँ क्यो स्थिर हो गया है ?"

विद्याधर मणिप्रभ ने रानी चन्द्रलेखा को बताया—

"प्रिये ! पराई बात के बारे मे हमे नही सोचना चाहिए। इस घटना से हमे क्या मतलब ?"

इस पर चन्द्रलेखा की उत्सुकता और भी बढ गई। उसने कारण जानने का हठ किया तो विद्याधर को बताना पडा—

"प्रिये ! आभा नगरी पर किसी देवता का प्रकोप हुआ है। देव ने राजा को कष्ट देने के लिए तूफान की सृष्टि की है और राजा चन्द्र के पुण्य प्रभाव से हमारा विमान भी यहाँ रुक गया है।'

"स्वामी ! जब चन्द्रलेखा ने विद्याधर से कहा कि आप राजा को चलकर कोई उपाय बतायें, 'जिससे राजा का मगल

हो, तब विद्याधर अपनी पत्नी सहित आपकी माताजी के पास आया और सब बाते बताते हुए कहा कि राजमाता वीरमती ! तुम्हारे पुत्र पर विपत्ति आने वाली है । अत आज की रात जागकर पूरी रात आप स्वय और राजा की रानी गुणावली नवकार मन्त्र का जाप करें । इससे तुम्हारे पुत्र का भावी अमगल टल जायेगा ।"

"स्वामी ! हम दोनो सास-बहू इसीलिए रातभर जागती रही ।"

गुणावली की पूरी बात सुनने के बाद राजा चन्द्र ने मन ही मन विचार किया—'स्त्री का चरित्र अथाह सागर है । अगर मैं स्वय अपनी आंखो से इसका चरित्र न देखता तो मैं भी इसकी मनगढन्त बात का विश्वास कर लेता । कैसी कहानी बनाई है । कही भी सन्देह की गुजाइश नही छोडी । लेकिन फिर भी गुणावली निर्दोष है । यह वास्तव मे भोली और सरल है । सब करतूत माता वीरमती की है । उसी ने इसे भरमाया है । वीरमती के कुसग से ही यह असत्य और कपट को अपना बैठी है । जिस तरह कपूर के ससर्ग से नारियल का पानी जहर बन जाता है, उसी तरह कुसग पाकर साधु भी असाधु बन जाता है । दुष्टो का सग नरकवास से भी बुरा है । दैव भले ही एक बार नरक का वास दे दे, पर दुष्टो का साथ न दे । इसके अलावा सग-कुसग का प्रभाव स्त्री पर जल्दी पडता है । कहावत है कि स्त्री, जल, तलवार, आंख, घोडा और राजा—इनको जिधर झुकाओ, उधर ही झुक जाते हैं ।'

यह सब विचार करते हुए राजा चन्द्र ने गुणावली से कहा—

"प्रिये ! पति की शुभकामना पत्नी और पुत्र की मगल कामना माता न करेगी तो कौन करेगा ? विपत्ति के समय ही तो स्त्री की परीक्षा होती है। तुम मेरे लिए रातभर जगी। मेरा तो लाभ हुआ ही, इस बहाने तुमने भी धर्म ध्यान कर लिया। नवकार मन्त्र के प्रभाव से तो विपत्ति के पहाड भी रज-कण बन जाते है, फिर मेरा अमगल क्यो न टलेगा ? वास्तव मे तुम्हारा पतिव्रत धन्य है, तुम धन्य हो और माता वीरमती भी धन्य है। मुझे तुम्हारी बात का पूरा विश्वास है। झूठ तो तुम बोल ही नही सकती। तुमने जो कुछ कहा है, सच ही कहा है।"

इसके बाद कुछ रुककर राजा चन्द्र पुन बोले—

"प्रिये ! जिस तरह तुम रात-भर जगती रही, उसी तरह मैंने स्वप्न मे तुम्हे तथा माताजी को यहाँ से अठारह सौ योजन दूर विमलापुरी मे घूमते देखा। तुम तो इस स्वप्न को झूठ बता ही चुकी हो, पर मुझे यह सत्य लगता है। लेकिन मेरे स्वप्न और तुम्हारी सच्ची कहानी मे बडा अन्तर है। मैं इसी दुविधा मे हूँ। फिर भी स्वप्न तो स्वप्न ही है, तुम्हारी ही बात सच्ची है। क्या झूठ है, क्या सच है, इसे तो अन्तर्यामी ही जाने, पर सामान्य जन-धारणा और लोकमत तो यही कहता है कि स्वप्न प्राय झूठे होते है और पतिव्रता स्त्री की बात सदा सत्य होती है।"

राजा चन्द्र की रहस्य एव व्यग भरी बातें सुनकर गुणावली भीतर-ही-भीतर ग्लानि से गली जा रही थी। वह मन-ही-मन बहुत लज्जित थी। उसे राजा चन्द्र की बातें आश्चर्य, शका, सन्देह और भय के झूले मे झुलाने लगी। पर अब जो भूल हो गई थी, उसे तो झूठ पर झूठ बोलकर छिपाना ही था। गुणावली

सचाई को मानने के लिए हरगिज तैयार नहीं थी। 'उल्टा चोर कोतवाल को डांटे' इस कहावत को चरितार्थ करते हुए गुणावली ने कुछ खीझकर राजा चन्द्र से कहा—

"स्वामी ! आप बार-बार स्वप्न की बात क्यों ले आते हैं ? असम्भव स्वप्न की ओर तो आपको ध्यान भी नहीं देना चाहिए। स्वप्न की बात आप दिल से एकदम निकाल दें। सोचिए तो सही, यहां से अठारह सौ योजन दूर कहां विमलापुरी और कहां आभापुरी ? रातोरात मैं विमलापुरी हो भी आई और लौट भी आई। ऐसे बेमेल स्वप्न पर आपने ध्यान ही क्यों दिया ? यह भी तो जरा विचार कीजिए कि मैं तो आपकी आज्ञा के बिना महल से बाहर कदम भी नहीं रखती, फिर भला आपसे बिना पूछे विमलापुरी कैसे चली जाती ? मैंने रात भर आपके लिए जागरण किया, उसका कोई विचार न कर बहकी-बहकी बातें कर रहे है। मेरे जागरण का आप ख्याल न करें, पर अन्तर्यामी भगवान तो करेगा ?"

'वाह रे त्रिया चरित्र ! झूठ को सांच और सांच को झूठ करना तुझे खूब आता है।' यह सोचते हुए राजा चन्द्र ने गुणावली से कहा—

"प्रिये ! इसमे नाराज होने की तो कोई बात नहीं है। मैं तो तुम्हारी ही बात सच मान रहा हूँ। जब मैं तुमसे कोई शिकायत ही नहीं कर रहा तो तुम किस बात पर नाराज हो ? मैं यह कब कह रहा हूं कि तुम विमलापुरी गई थी। पर मैं तो स्वप्न की बात कर रहा हूं। स्वप्न मे मैंने ऐसा ही देखा कि आकाशगामिनी विद्या के प्रभाव से तुम और माताजी विमलापुरी पहुंच गई हो और वहां की सैर कर रही हो। सम्भव-असम्भव

जैसा स्वप्न होगा, वैसा ही तो बताया जायेगा। मैं तो यही मानता हूँ कि नवकार मन्त्र का जाप-जागरण करते हुए ही तुम्हारी रात बीती है।"

'लेकिन तुमने मेरे लिए जो रात्रि-जागरण किया, उसके बारे मे इतना अवश्य कहूँगा कि विधाता ने तुम सास-बहू की जोडी अच्छी बनाई है। तुम दोनो मिलकर सब कुछ कर सकती हो। तुम मेरी आज्ञा के बिना महल से बाहर कदम नही रखती थी। पर अब मेरी ओर से निश्चिन्त रहो। मुझसे डरने की कोई जरूरत नही है। तुम दोनो सास-बहू कही जाओ, कही घूमो, मुझे कोई मतलब नही।"

अपराधी का दिल बहुत कमजोर होता है। तनिक सी बात से सहम जाता है। गुणावली अपराधिनी थी। अत सहमकर कुम्हलाये स्वर मे बोली—

"स्वामी! आप मुझ पर मर्म-प्रहार क्यो कर रहे हैं? आपकी बातो से तो यही प्रकट होता है कि आपका मुझ पर पहले जैसा प्रेम नही रहा। आप हँस-हँसकर शर-सन्धान करते जाते हैं। किसी चुगलखोर ने मेरे विरुद्ध आपके कान भरे हैं? इसीलिए आप व्यग्यवाणी मे बोल रहे है।"

गुणावली के इस कथन का राजा चन्द्र ने कोई जवाब नही दिया, बल्कि मुस्कराकर चुप हो गये। अपने पति को चुप देख गुणावली भी चुपचाप उधेड-बुन मे लगी रही। राजा चन्द्र के हाथ मे बँधा विवाह-कगन तथा शरीर पर अन्य विवाह-चिह्न गुणावली को दिखाई दे गये। अब तो वह बहुत भयभीत हुई। उसे निश्चय हो गया कि रात प्रेमलालच्छी के साथ विमलापुरी मे इन्ही का विवाह हुआ था। जब राजा चन्द्र शय्या त्याग कर

नित्यकर्म के लिए चले गये तो घबराई हुई गुणावली रानी वीरमती के पास आई और सब कुछ एक ही सांस मे बताते हुए अन्त मे बोली—

"माताजी ! यह तो गजब हो गया। उन्हे सब कुछ मालूम है। सम्भवत उनके पास भी कोई विद्या है। वे तो हमसे पहले ही लौट आये। मैंने उनके दाहिने हाथ मे विवाह-कगन देखा है। और भी विवाह-चिन्ह देखे है। स्वप्न के माध्यम से उन्होंने सब कुछ बता दिया। मैंने आपसे रात ही कहा था कि मण्डप मे कनकध्वज नही है, बल्कि आपके ही पुत्र हैं। लेकिन आपने मेरी बात नही मानी। अब मैं तो कही की न रही। मैं तो अब उनके हृदयासन से उतर ही गई। मैंने उनसे कपट किया, यह बहुत ही बुरा किया।"

गुणावली के मुंह से राजा चन्द्र की कारस्तानी सुनकर वीरमती बौखला गई। क्रोध से उसकी मुट्ठियां भिच गयी। वीरमती ने अनुमान लगाया—'आम का पेड, जिस पर बैठकर हम विमलापुरी गई थी, बहुत पुराना है। उसमे एक कोटर भी है। सम्भव है, यह उसी मे बैठकर हमारे साथ गया हो। कोई बात नही। मैं अभी उसका नशा हिरन किये देती हूँ।' सोच-विचार कर वीरमती ने क्रोध मे फुकारते हुए गुणावली से कहा—

"बहू ! मैंने तुझसे पहले ही कहा था कि अगर राजा चन्द्र को पता भी लग गया तो भी वह तेरा कुछ न बिगाड सकेगा। तू चिन्ता मत कर। मेरी विद्या का चमत्कार अभी और भी देख। मैं उसको ऐसा किये देती हूँ कि वह कभी चूं भी नही करेगा। सदा मेरी और तेरी दया पर ही जिन्दा रहेगा। उसका इतना साहस ही कैसा हुआ कि मेरे छिद्र देखने लगा ? बेटा होकर भी

मां की जासूसी करे ? मैं उसे ऐसी सजा दूंगी कि वह जन्म-भर याद ही करता रहेगा, पर किसी से कुछ कह नही पायेगा ।"

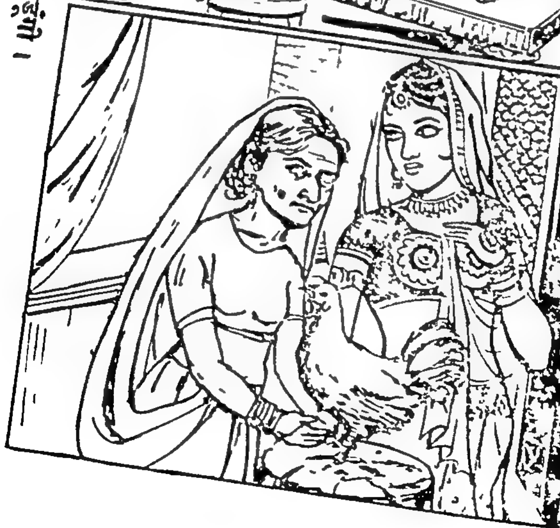
क्रोध मे बडबडाती हुई वीरमती हाथ मे नंगी तलवार लिये राजा चन्द्र के पास गई । पीछे-पीछे गुणावली भी दौडी । रानी वीरमती चन्द्र की छाती पर चढ बैठी और बोली—

"बोल, तूने बहू से क्या कहा था ? मैं तुझसे पहले ही कह चुकी थी कि कभी मेरे विरुद्ध कान भी मत हिलाना । अब तू मेरी जासूसी भी करता है ? मैं तुझे अब जिन्दा नही छोड़ूंगी । तुझे मेरी शक्ति का पता नही, देवता भी मुझसे डरते हैं । मेरी ही बदौलत आज तू सिंहासन पर बैठा है । अब मैं स्वयं राज्य-संचालन करूँगी और तुझे यमलोक भेजूंगी । अब तू अपने इष्ट का स्मरण कर ले ।"

राजा चन्द्र इस आकस्मिक आक्रमण को सहने के लिए तैयार न थे । वीरमती की बात सुनकर वे हक्के-बक्के हो गये । उनसे न तो कुछ कहते बना और न सुनते । वे पडे-पडे टुकुर-टुकुर देख रहे थे । गुणावली को ऐसा मालूम न था कि वीरमती ऐसी दुष्टा है । वह तो वीरमती की ठगाई मे आ चुकी थी । अन्ततः तो वह सती-साध्वी नारी थी । पति की ऐसी दुर्दशा वह कैसे देखती ? पर विद्या के अहंकार मे चूर वीरमती का वह बिगाड भी क्या सकती थी ? अतः वह गिडगिडाकर वीरमती के पैरो मे गिर पडी और आंचल पसारते हुए प्रार्थना करने लगी—

"माताजी ! मुझे सुहाग की भीख दीजिए । इन्हे कुछ हो गया तो आपकी ही जग-हँसाई होगी । आपका क्रोध मुझसे नही सहा जायेगा । आप महान शक्तिमती हैं । अपराधी आपके बेटे है ।

वीरमती ने कहा—अब मैं तुझे जिंदा नहीं छोड़ूंगी।



वीरमती के —त पकड़कर पैर के अँगूठे पर ज़ोर ...

लेकिन 'पूत कपूत हो जाता है, पर माता तो कभी कुमाता नही होती'। इस शाश्वत लोकोक्ति को झूठा मत कीजिए। मुझ पर तरस खाकर मेरे सुहाग को अचल रहने दीजिए।

"माताजी, बछडा रस्सी के बल पर ही कूदता है। इसी तरह पुत्र माता के बल पर ही उत्पात करता है।"

गुणावली की प्रार्थना सुनकर भी वीरमती का क्रोध शान्त नही हुआ, बल्कि अपनी प्रतिशोध की भावना को दूसरा मोड देते हुए उसने कहा—

"बहू! मैं तेरे कहने से इसे जिन्दा तो छोडे देती हूँ। पर अब इसे ऐसा कर दूंगी कि यह उम्रभर मेरे विरुद्ध जीभ भी न हिला सकेगा।

यह कहकर झटपट वीरमती ने राजा चन्द्र के पैर के अँगूठे मे मन्त्र पढकर एक डोरा बांध दिया और वे मुर्गा बन गये। हालत बडी दयनीय हो गई।

राजा चन्द्र को कुक्कुट पक्षी के रूप मे देखकर गुणावली हिचकियाँ भर-भर कर रोने लगी और वीरमती से बोली—

"माताजी! आपने यह क्या किया? आपने इन्हे प्राणदान तो दिया पर मरे से भी बुरी दशा कर दी। इन्हे कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया? आपका दिल पत्थर का है। आपके दिल मे बिलकुल दया नही है। मेरे स्वामी को 'पिंजरे का पंछी' बना दिया। अब ये स्वर्ण पिंजरे मे कैद रहकर ही जीवन काटेंगे। हाय!"

गुणावली के करुणापूरित विलाप का वीरमती के पत्थर दिल पर कोई प्रभाव नही हुआ। बल्कि विस्फारित नेत्रो से घूरते हुए गुणावली से बोली—

"वहू ! ज्यादा ची-चपड मत कर। मेरी ओर आँख उठाकर देखने वाले की इससे भी बुरी दशा होती है। मैंने इसे जिन्दा छोड दिया, यही क्या कम है।"

गुणावली ने हाथ जोडकर दीन स्वर मे पुन कहा—

"माताजी ! आपने इतनी कृपा की कि इन्हे जीवनदान दिया तो अव मुझ पर इतनी दया और कीजिए कि इन्हे पुन मनुष्य वना दीजिए। आपकी विद्याओ का लोहा ये भी मान गये। इनके लिए इतना ही दण्ड वहुत है। हम दोनो स्त्रियाँ हैं। आप और मैं किसका मुँह देखकर जियेंगी ? इनके विना राज-महल सूना है, आभापुरी सूनी है। अव सिंहासन की शोभा कौन वढायेगा ? आखिर तो ये आपके पुत्र ही है।"

वीरमती पर गुणावली की दीन वाणी का कोई असर नही हुआ। उसने निश्चय के स्वर मे साफ-साफ कहा—

"वहू ! मैंने तुझे मुर्गी नही वनाया और इसे जान मे नही मारा, मेरी यही कृपा वहुत है। तू इसी को गनीमत समझ। अगर तुझे भी इसके साथ मुर्गी वनना पसन्द हो तो आगे वोल। वरना चुपचाप इस मुर्गे को मेरी आंखो के सामने से ले जा।"

गुणावली को अव वीरमती से कोई आशा नही रही। वीर-मती वहाँ से तत्काल चली गई और गुणावली कुक्कुट रूपी राजा चन्द्र को देख-देखकर विलाप करने लगी—

"हा स्वामी ! मैंने आपसे जो कपट किया, उसका फल इसी लोक मे और तत्काल पा लिया। जो नारियाँ अपने हृदयदेव प्राणेश्वर से कपट करती है, उनकी दुर्दशा होती ही है। मुझ पापिन के तो लोक-परलोक दोनो ही विगड गये।"

इस तरह विलाप करते-करते गुणावली मूच्छित होकर गिर पडी। उसके मूच्छित होते ही दासियां दौड पडी और विविध शीतलोपचारो से उसे होश मे लाने का प्रयत्न करने लगी। कुछ समय बाद जब गुणावली को होश आया तो कुक्कुट रूपी आभापति चन्द्र को अपनी गोद मे बैठाकर इस प्रकार बातें करने लगी—

"हे प्राणनाथ! आपको इस रूप मे देखकर मैं अब कैसे जिन्दा रहूँगी? आपका यह रूप मेरे ही कारण बना है। अब तक आपके मस्तक पर रत्नजटित मुकुट शोभित होता था। आज आपके उसी सिर पर लाल कलगी लगी हुई है। प्राणनाथ! वस्त्राभूषणो से सज्जित रहने वाला आपका सुन्दर तन आज पखो से ढका हुआ है। जिन हाथो मे खड्ग शोभा पाता था, वहाँ अब केवल लम्बे नाखून ही रह गये हैं। अब तक आप वन्दीजनो द्वारा विरुदगान सुनकर जगते थे, अब आप स्वय दूसरो को जगायेंगे। अब तक आप भाँति-भाँति के व्यजन खाते थे, अब घूरे पर कूड़े-कर्कट पर आपकी निगाह पडेगी।"

"राजा चन्द्र सब सुन रहे थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि गुणावली निर्दोष है। वह तो मुझ पर प्राण न्योछावर करने वाली पतिपरायण नारी है। सारा दोष विमाता वीरमती का ही है। लेकिन वास्तविक दोषी तो वीरमती भी नही है। उसने जो कुछ किया, वह सब मेरे पूर्व पाप-कर्मो से प्रभावित होने के कारण ही किया। मैं तो अपने ही कर्मो का भोग पा रहा हूँ और सब तो निमित्त ही है। सब कुछ जानते, सोचते और सुनते हुए भी पक्षी होने के कारण वे कुछ कह नही पाते थे।

ज्यो-ज्यो समय बीतता है, दुख का बोझ हल्का पडता जाता

है। स्वयमेव भी समता का भाव प्रबल होता जाता है। गुणावली को उसकी सखी स्वरूपा दासियो ने समझाया, सात्वना दी और उसके अन्त करण ने भी उसे धीरज दिया। दैव की विडम्बना मानकर गुणावली ने सन्तोष किया और कुक्कुटवेशी राजा चन्द्र को एक स्वर्ण पिंजरे मे रखकर सदा अपने साथ रखने लगी। अब राजा चन्द्र राजा, चन्द्र न होकर 'पिंजरे का पछी' थे। दूसरो पर दया की वर्षा करने वाले राजा चन्द्र अब परोपजीवी और पराश्रित थे।

जब भाग्य टेढा होता है तो आँखें भी अपने प्राप्य को, अपने शुभ को नही देख पाती। भोला जीव विवेकशून्य हो जाता है। रानी वीरमती ने एक मत्रित धागा राजा चन्द्र के पैर के अँगूठे मे बाँधकर उन्हे मुर्गा बनाया था। वह धागा, अब भी मुर्गा रूप राजा चन्द्र के पैर मे बँधा हुआ था, अगर गुणावली वह धागा तोड देती तो राजा चन्द्र मुर्गे का रूप त्याग कर मनुज रूप मे आ जाते। पर वह तोडेगी कैसे ? राजा चन्द्र को तो सोलह वर्ष तक पिंजरे का पछी बनकर मारा-मारा फिरना था। इसीलिए गुणावली को न तो वह डोरा दिखाई ही दिया और न डोरा तोडने की बात ही उसके मन मे आई। जैसा दैव चाहता है, मनुष्य की बुद्धि उसी तरह काम करती है।

गुणावली की आशा थी कि क्रोध शान्त होने पर कुछ दिनो बाद रानी वीरमती ही मेरे स्वामी को पुन मनुष्य बना सकती है। इसलिए वह राजा चन्द्र की प्राणपण से हिफाजत करने लगी और साथ ही अनेक उपायो से रानी वीरमती को प्रसन्न करने की कोशिश भी। प्राण प्यारे कुक्कुट का बहुत ही ध्यान रखती थी। हर समय अपने ही पास रखती। क्षणभर को भी आंखो से

ओझल न होने देती। मुर्गा-रूप अपने स्वामी को अपने ही हाथो से भाँति-भाँति के मेवा-मिष्टान्न खिलाती और स्वर्णपिंजरे को अपने साथ-साथ लिये ही घूमती।

इसी तरह कुछ दिन बीतने के बाद एक दिन गुणावली पिंजरे के पछी—राजा चन्द्र को लेकर वीरमती के पास पहुँची। उसे आशा थी कि अब शायद इसका दिल पिघल जायेगा। अत वह वीरमती से अनुनयभरी वाणी मे कहने लगी—

"माताजी ! अब तो इन्होने अपने किये का दण्ड पा लिया। अब दया करके इन्हे पुन मनुष्य बना दीजिए।"

लेकिन इस प्रार्थना का उलटा ही असर हुआ। वीरमती मुर्गे को देखकर एकदम क्रुद्ध गई। उसके भीतर की प्रतिशोधाग्नि बाहर आ गई और गुणावली से बोली—

"बहू ! इसे मेरी आँखो के सामने से ले जा, वरना मैं इसके दो टुकडे कर दूँगी। तू तो निरी मूर्ख है, जो अब भी इसे चन्द्र की ही तरह प्यार करती है। अभी तो मैंने कुछ नही किया। अभी देखती जा मैं इसके क्या हाल करती हूँ।"

पत्थर के पसीजने की आशा करना ही व्यर्थ है। पहाडो मे कमल खिलते किसने देखे हैं ? मोर कितना ही मीठा बोले, पर क्या कभी वह सर्प-भक्षण करना छोड सकता है ? निराश-हताश होकर रानी गुणावली अपने प्राणप्यारे पिंजडे के पछी को लेकर अपने कक्ष मे आ गई और बहुत देर तक अपने पति की ओर देखते हुए आसू बहाती रही। जब उसका दुख कम हुआ तो सोने की कटोरी भरकर पिंजरे के पछी राजा चन्द्र को दूध पिलाने लगी। कुकुम मिश्रित जल से मुर्गे के पैर धोये और पिंजरे को अपनी गोद मे रख बातें करने लगी—

"स्वामी ! आप मेरी सब बातें सुनते-समझते हैं, पर अपनी नही कह पाते। काश ! आज मैं पक्षियो की भाषा समझ पाती तो आपकी कुकड् कूं बोली मे ही सब कुछ समझ लेती। कुछ भी हो, इस रूप मे भी आप मेरे प्राणवल्लभ हैं। मैं कभी भी आपको अपनी नजरो से दूर नही रखूंगी। वरना यह चाण्डालिनी वीरमती कभी भी आपके लिए बिल्ली बन सकती है। लेकिन आप किसी भी हालत मे अपने भविष्य की चिन्ता मत कीजिए। रात के बाद हमेशा दिन आता है। दुख के बाद भी सुख का ताना निश्चित है। एक दिन आप अपने असली रूप मे आकर आभापुरी के राजसिंहासन को शोभित करेंगे और आपकी मृणाल-सी बाँहें मेरे कण्ठ का आलिंगन करेंगी। यह तो दिनो का फेर है। दिनो के फेर से सूर्य-चन्द्र भी नही बचे। उन्हे भी ग्रहण लगता है। पर यह ग्रहण क्या हमेशा बना रहता है ?"

गुणावली इसी तरह राजा चन्द्र से बाते करके उन्हे सान्त्वना देती। सोने का पिंजडा उसके लिए मन्दिर था और पिंजरे का पछी राजा चन्द्र उस मन्दिर का जीता-जागता देवता था। समय पाते सब सामान्य हो गया था। मुर्गे की सेवा-शुश्रूषा गुणावली का स्वाभाविक नित्य-नियम बन गई थी, और पख फडफडाकर अपना प्यार जताना तथा कुकड़ू कूं की बोली से कुछ न-कुछ कहना पिंजरे के पछी राजा चन्द्र का भी सहज स्वभाव हो गया था।

एक दिन एक तपस्वी लब्धिधारी मुनि गोचरी के लिए गुणावली के द्वार पर आये। गुणावली ने मुनि का भक्ति-भावपूर्ण स्वागत-सत्कार किया। मुनि ने पिंजरे के पछी राजा चन्द्र को देखा को तिर्यंच बन्धन दोष पर विचार करते हुए कहने लगे—

"शुभे ! इस पछी ने तुम्हारा क्या बिगाडा है, जो तुमने इसे पिंजडे मे बन्दी बना रखा है ? पक्षी-बन्धन तो बहुत बडा पाप है। इस तो मुक्त ही रखो। इसे बन्द करके तुम दुस्सह कर्मो का बन्ध कर रही हो। इसके अलावा मुर्गा ऐसा शुभ पक्षी भी नही है, जिसे घर मे रखा जाये। भद्रे ! मेरी बात पर विचार करो।"

मुनि का कथन यथार्थ था। पर यहाँ तो बात ही दूसरी थी। शान्तचित्त होकर गुणावली ने मुनि की ज्ञानभरी बात सुनी और फिर बोली—

"महामुने ! आप ठीक कहते हैं। लेकिन यह पक्षी साधारण पक्षी नही है। बल्कि महाराजाधिराज आभापति राजा चन्द्र हैं और मेरे प्राणवल्लभ हैं। राजमाता वीरमती ने क्रुद्ध होकर इन्हे पिंजरे का पछी बना दिया है। दुनिया की नजरो मे ये मुर्गा है—पिजरे के पछी हैं, पर मेरे तो परमाराध्य और जीवनाधार ही हैं। मेरे किसी पूर्व पाप के कारण आज इनकी यह दशा हुई है।"

पर-दुख-कातर मुनि राजा चन्द्र को इस रूप मे देखकर बहुत खिन्न हुए। उन्होंने रानी गुणावली से कहा—

"शुभे ! मैं तो इस रहस्य से अनभिज्ञ था, इसलिए तुमसे कुछ कहा। वीरमती ने बहुत ही बुरा किया है। लेकिन तुम चिन्ता मत करो। पति-चरणो मे तुम्हारी जो सच्ची भक्ति है, उसके प्रताप से एक दिन अवश्य ही ये अपने मूलरूप को प्राप्त करेगे। कर्म के आगे किसी का वश नही चलता। किये का फल तो सभी को भोगना पडता है। सब दुविधा छोडकर तुम्हे धर्माराधन मे ही चित्त लगाना चाहिए। नवकार महामन्त्र के जाप से तुम्हारा सब विधि मगल होगा।"

भिक्षा लेकर मुनिजी चले गये और गुणावली ने उनकी देशना हृदय मे धारण कर ली। अब वह अपने पति का कल्याण करने की भावना से अधिकाधिक समय देकर धर्माराधन करने लगी।

× × ×

जब-जब राजा चन्द्र प्रकृत मुर्गे की तरह कुकड़ू कूं आवाज दिया करते तो विह्वल होकर गुणावली कहती—

"स्वामी ! आपके लिए तो यह आवाज सहज-स्वाभाविक है। कुकड़ू कूं करते आपको कोई कष्ट नही होता, पर इस वाणी से मेरा तो हृदय विदीर्ण हो जाता है। एक दिन वह भी था जब प्रातःकाल मुर्गे की बोली सुनकर नीद मे विघ्न पडने के कारण आप झल्ला पडते थे और आज स्वय ही इस बोली को बोलते हैं। आपकी इस बोली को सुनकर दुष्टा वीरमती तो अवश्य ही प्रसन्न होती होगी।"

बार-बार कुछ कहने का मन होते हुए भी राजा चन्द्र कुछ नही कह पाते थे। पक्षी होने के कारण वे मनुष्य की बोली मे कैसे बोलते ?

एक दिन गुणावली पिंजरे के पछी राजा चन्द्र को लेकर महल के झरोखे के पास बैठी थी। ऊपर से गुणावली नीचे वालो की सब गतिविधियाँ देख-सुन रही थी। नगरवासी आपस मे राजा चन्द्र की ही चर्चा कर रहे थे। एक नगरवासी दूसरे से कह रहा था—

"भाई ! आजकल राजा चन्द्र दिखाई नही देते ? पता नही, कहाँ चले गये हैं ? शायद महामन्त्री सुमति को मालूम हो कि वे कब लौटेंगे। उनके बिना तो यहाँ सब सूना-ही-सूना है। उनके

रहते चारण लोग उनकी सभा मे छहो ऋतुओ की विद्यमानता का रूपक-काव्य सुनाया करते थे। षट्दर्शनो के ज्ञाता पाँच सौ पडित कैसा वाद-विवाद करते थे। आज राजसभा मे कैसा विचित्र सन्नाटा रहता है।"

एक दूसरे ने दबी जबान से कहा—

"सुनो भाई! झूठ-सच को भगवान जाने। पर मैंने तो यह सुना है कि रानी वीरमती ने उन्हे अपनी विद्या से मुर्गा बना दिया है। अब वे राजा चन्द्र न रहकर पिंजरे का पछी बन गये है। रानी गुणावली सोने के पिंजरे मे उन्हे सदा अपने साथ ही रखती है।"

इस तरह की चर्चा करते-करते किसी की निगाह ऊपर झरोखे की ओर गई तो वहाँ रानी-गुणावली को बैठे देखा। रानी के पास ही स्वर्ण पिंजरे मे आभापति राजा चन्द्र भी कुक्कुट रूप मे बैठे थे। पिंजडे मे मुर्गे को देख एक आदमी ने दूसरे से कहा—

"भाई! मुझे तो तुम्हारी ही बात ठीक लगती है। वह देखो, मुर्गे के रूप मे राजा चन्द्र ही तो बैठे है। वरना महारानी गुणावली मुर्गे को भला क्यो पालती? निश्चय ही ये राजा चन्द्र ही है।"

इस तरह धीरे-धीरे सारी आभापुरी के लोग वीरमती की करतूत जान गये। महामन्त्री सुमति को भी सब बातें मालूम हुई। वे स्वयं इस बात मे चिन्तित थे कि महाराज चन्द्र कही क्यो नही दिखायी देते। महल के झरोखे के नीचे काफी भीड इकट्ठी हो गयी। सब लोग मुर्गे की ओर इशारा करके कानाफूसी करने लगे। कुछ लोग तो श्रद्धाभाव से मुर्गा रूप राजा चन्द्र को अभिवादन करने लगे। यह समाचार वीरमती के कानो तक भी

पहुँच गया। नगरजनो द्वारा अपनी निन्दा वह कभी भी बर्दाश्त नही कर सकती थी। क्रोध मे भरी हुई, हाथ मे तलवार लेकर वह झरोखे मे बैठी गुणावली के पास आई और उसके हाथ से पिंजरा झटक कर बोली—

"तू इस मुर्गे को लेकर यहाँ झरोखे मे इसलिए बैठी है कि लोग इस पर तरस खाकर मेरी निन्दा करे। ठहर, मै अभी इसका अस्तित्व मिटाये देती हूँ।"

गुणावली वीरमती के पैरो मे गिर पडी और फिर पिंजडे के ऊपर औधी पडकर बोली—

"माताजी! आप मेरे दो टुकडे कर दीजिए, पर इस मुर्गे मे कुछ न कहिए। यह तो मूक प्राणी है। सारा दोष तो मेरा ही है।"

वीरमती कुछ ढीली पडकर बोली—

"जा, अब तो मैं इसे छोड देती हूँ। लेकिन आइदा इसे झरोखे के पास लेकर कभी मत बैठना और न कभी इसे चन्द्र नाम से पुकारना। दूसरो को कभी यह जताने की कोशिश मत करना कि यह राजा चन्द्र है और मैंने इसे पिंजरे का पछी बनाया है। तेरा यह प्राण प्यारा है, पर मेरा तो परम शत्रु है। जहाँ तक हो, इसे मेरी आँखो के सामने मत पडने देना। तुझे यह बहुत प्यारा है तो तू इसे आराम से रख। इसकी चोच सोने से मढवा दे, खूब मेवा-मिष्ठान खिला, इसे खूब लाड लडा। लेकिन याद रख अब यह उम्र भर पिंजरे का पछी ही बना रहेगा, कभी आदमी नही बन सकता।"

वीरमती के शब्दो का एक-एक अक्षर गुणावली के हृदय मे तीखी शूल-सा चुभ रहा था, पर वह विवश थी। अत पिंजडे

को लेकर चुपचाप अपने महल को चली गई और एकान्त मे बैठकर फूट-फूट कर रोई। राजा चन्द्र की आंखो से भी अश्रु-



गुणावली मुर्गे को अपनी गोद मे लेकर एकान्त मे जा बैठी और फूट-फूटकर रोने लगी।

धारा प्रवाहित होने लगी। वे जितने अपनी विवशता से दुखी थे, उतने ज्यादा गुणावली के दुख से दुखी थे। उस दिन के बाद कभी भी गुणावली झरोखे की ओर नही गई। बस एकान्त मे रहकर ही पति सेवा और धर्मध्यान मे ही लगी रहती थी। उसका जीवन इसी आशा और विश्वास के साथ कट रहा था कि एक दिन मेरे स्वामी अवश्य ही अपने निज रूप मे आयेंगे। इस ससार मे कितने ही दुख हो, सकट हो, पर आशा और विश्वास रूपी

दो हाथ जिसके पास रहते हैं, उसे फिर कोई भी दुख दुखी नहीं कर सकता।

अपने स्वामी के कल्याण के लिए न चाहते हुए भी गुणावली वीरमती की हां-मे-हां मिलाया करती थी। सदा उसके अनुकूल रहती और कभी-कभी वीरमती के कहने पर उसके साथ देशाटन करने के लिए भी चली जाती। वही पुराना आम्र वृक्ष उन दोनों का विमान था। वीरमती की विद्याओ के कारण महलों मे भी उसका आतंक था और नगर मे भी लोग खुल्लमखुल्ला उसके विरुद्ध कुछ न कह पाते थे।

इसी तरह जब एक महीना पूरा हो गया तो कुछ प्रबुद्ध नागरिक महामात्य सुमति के पास पहुंचे और उन्होंने राजा चन्द्र के बारे मे जो कुछ सुना था, सब महामात्य को बताकर कहा—

"महामन्त्री जी! आज आप हमे महाराज चन्द्र के दर्शन अवश्य कराइये। एक महीने से उनके बिना सिंहासन सूना पडा है। राजसभा मे कोई रौनक नही है। उनके बिना हम सब अनाथ है।"

महामन्त्री सुमति ने सबको आश्वासन दिया—

"प्रजाजनो! महाराज के बिना मैं भी तो अपंग बन गया हूँ। मेरी आँखें भी उन्हे देखे बिना तरस रही हैं। पर मैं राज-माता वीरमती से बहुत डरता हूँ। उनकी विद्याएँ परोपकार की बजाय परपीडा के लिए प्रयुक्त होती हैं। राजा चन्द्र की जो दशा उन्होंने कर रखी है, उसे रहस्यरूप मे सब जानते हैं। फिर भी मैं आज उनसे कहूँगा कि वे राजा चन्द्र के दर्शन हम सबको करायें।"

प्रजाजनो को आश्वस्त कर महामन्त्री सुमति रानी वीरमती के पास आये। सब कुछ जानते हुए भी उन्होने अनभिज्ञ होकर रानी वीरमती से कहा—

"राजमाता ! राजा चन्द्र के दर्शनो के लिए प्रजा बहुत तरस रही है। उनके बिना राज्य के बहुत-से काम रुके हुए है। वे जहाँ भी हो, उन्हे बुलाकर सिंहासन पर शोभित कीजिए। उनके छिपे रहने से लोगो मे तरह-तरह की अफवाहे फैलती हैं। वे कही भी गये हो, पर जनता तो यही समझती है कि आप ही ने उन्हे कही छिपा रखा है।"

मन्त्री सुमति की बात सुनकर वीरमती उल्टा मन्त्री पर ही आरोप लगाते हुए बोली—

"महामन्त्री ! तुम ज्यादा अनजान और भोले बनने की कोशिश मत करो। मैं तुम्हारी सब चतुराई जानती हूँ। तुम्ही ने मेरे बेटे चन्द्र को कही लापता कर दिया है। सम्भव है, राज्य-लिप्सा के मोह मे पडकर तुमने उसे मार ही दिया हो। अब भोले बनकर मेरे पास अपने पाप पर परदा डालने आये हो। मैं तुम्हे इस कुकृत्य की कडी-से-कडी सजा दूंगी और हमेशा के लिए तुम्हे अपने राज्य से हटा दूंगी। सीधी तरह मेरा बेटा लाकर मुझे दो।"

वीरमती की ऐसी उल्टी बातें सुनकर महामन्त्री सुमति का चेहरा फक पड गया। भय के मारे उन्हे पसीना आ गया। कण्ठ अवरुद्ध हो गया। अनचाहे, यह नई मुसीबत उनके सिर पड गई। किसी तरह धीरज रखकर हाथ जोडकर बोले—

"राजमाता ! आप मुझ पर यह दोष क्यो लगा रही है ? मैं तो जन-आग्रह के कारण ही आपके पास आया था। आप जो चाहे सो करें, पर मेरी रक्षा करें।"

वीरमती का तीर निशाने पर बैठा था। अब वह निश्चिन्त थी। मन्त्री सुमति उनकी मुट्ठी मे एक ही घुडकी मे आ गया। अत अब उससे सांठ-गांठ करते हुए वीरमती बोली—

"महामन्त्री ! अगर मुझसे मिलकर चलोगे तो तुम्हारी पांचो घी मे रहेगी । अब आप राजा चन्द्र की चर्चा करना ही छोड दे । अगर आप मेरे अनुकूल रहे तो मैं सब कुछ बता दूंगी । लेकिन आपने स्वप्न मे भी मेरे विरुद्ध जाने की कोशिश की तो आपकी दशा बहुत बुरी होगी ।"

मन्त्री सुमति वीरमती की धमकी से डर गया । उसने आश्वासन दिया—

"राजमाता ! आप दिन को रात कहेंगी तो मैं यही कहूंगा कि आसमान मे तारे चमक रहे है । आप निश्चिन्त रहिए, मैं सदा आपके इशारो पर ही चलूंगा ।"

प्रसन्न होते हुए वीरमती ने मन्त्री सुमति से कहा—

" तो सुनो ! राजा चन्द्र को सदा-सदा के लिए भूल जाओ । उसका नाम भी मन से निकाल दो । मैंने उसका क्या किया, कहां रखा है, इसे जानने की चिन्ता छोडो और प्रजाजनो से यही कहो कि राजा चन्द्र देव-विद्या पढने के लिए किसी विद्याधर के पास गये हुए है । आज से आभापुरी का शासनसूत्र रानी वीरमती के हाथो रहेगा ।

"मन्त्री ! तुम आज ही नगर मे घोषणा करवा दो कि राज्याधिकारिणी अब मै ही हूं । राजसिंहासन पर अब मैं ही बैठा करूंगी । मेरी ओर से राज्य का सारा कार्य अब तुम करोगे । मैं तुम्हे विशेष अधिकार प्रदान करूंगी और तुम्हारी आय मे भी वृद्धि करूंगी ।"

शक्ति कम होने पर प्रबल शत्रु से न भिडना ही बुद्धिमानी है । यही बात महामन्त्री सुमति ने सोची थी । अन्त करण से

तो वे राजा चन्द्र और रानी गुणावली के ही हितरक्षक थे। उनके लिए अपने प्राण भी दे सकते थे। लेकिन बेमौके प्राण देने से भी तो कोई लाभ नही। अपना काम निकालने के लिए वे वीरमती के हो गये और समय की प्रतीक्षा करने लगे। उन्होने नगरवासियो को वह सब बता दिया जो पाठ उन्हे वीरमती ने पढाया था। उन्होने नगर मे घोषणा करवा दी—

"आज से आभापुरी का शासन राजमाता वीरमती चलायेंगी।

हर नगरवासी को उन्ही की आज्ञा माननी पडेगी। जो उनकी आज्ञा नही मानेगा, उसे देश से निर्वासित कर दिया जायेगा। जिसे आभापुरी मे रहना अच्छा न लगे और यमपुरी पसन्द हो, वही उनकी आज्ञा न मानने का साहस करे।"

यह घोषणा सुनकर प्रजाजनो के कान खडे हो गये। मन-ही-मन सब भयभीत हो गये। यद्यपि वीरमती का शासन कुशासन था, पर विवश होकर सभी को उसके शासन मे रहना पड रहा था। किसी भी सरदार या पार्षद् का इतना साहस न था कि वह वीरमती को कुछ सलाह भी देता। आभापुरी मे उसका ऐसा आतक छा गया कि चन्द्र का नाम लेना मौत को बुलावा देना ही समझा जाने लगा। महामन्त्री तो सदा उसी के स्वर मे बोलते। इतना ही नही, महामन्त्री सुमति कभी-कभी तो उसकी प्रशसा करते हुए कहते—

"महारानी जी! आपका शासन तो बहुत ही उत्तम है। आपकी शक्ति, शौर्य, तेज और बुद्धिमत्ता को देखकर कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि आभापुरी मे आपके अलावा सब स्त्रियाँ ही है, पुरुष तो बस आप ही है। आज तक किसी भी स्त्री ने ऐसा सुन्दर शासन नही किया।"

अपनी प्रशसा सुनकर रानी वीरमती का अहकार और भी आसमान पर चढ जाता। इस समय वह अपने को बहुत बडी शक्ति समझती थी। उसके समान ससार मे और कोई न होगा, ऐसा उसका विश्वास हो चला था। अबला शब्द स्त्रियो के लिए प्रयुक्त होता है, इसका वह अपवाद थी। अपनी प्रशसा के बदले मे वीरमती भी मन्त्री की पीठ ठोकते हुए कहती—

"मन्त्री जी ! तुम्हारी सेवाओ से मै बहुत प्रसन्न हूँ। तुममे राजभक्ति तो कूट-कूट कर भरी है। कभी किसी चीज की जरूरत पडे तो सकोच मत करना। मै आपकी हर कठिनाई दूर कर सकती हूँ।"

वीरमती की प्रसन्नता से मन्त्री सुमति भी बहुत खुश हुआ। एक बार ऊँट दूल्हा बनकर बरात लेकर जा रहा था तो गायन वाद्य का काम गर्दभ को सौंपा गया। लेकिन बरातियो मे से न तो किसी ने ऊँट के 'वर-रूप' को सराहा और न गर्दभ के स्वर की प्रशसा की। तब दोनो ने एक दूसरे को सराहा। गधे ने ऊँट से कहा—

'वाह रे रूप !"

और ऊँट ने जवाब दिया—

"वाह रे स्वर।"

इस समय यही हाल मन्त्री सुमति और रानी वीरमती का हो रहा था। इस प्रशसा से दोनो खुश थे। वीरमती इसलिए खुश थी कि मन्त्री सुमति उसकी मुट्ठी मे था और मन्त्री इसलिए खुश था कि खूँख्वार शेरनी उसके अनुकूल थी। मन्त्री का महलो मे भी आना-जाना था। एक दिन उसने रानी गुणावली के हाथ मे एक मुर्गे को पिंजरे मे बन्द देखा। यही राजा चन्द्र है, ऐसी

अफवाह वह सुन चुका था। फिर भी वीरमती को प्रसन्न जान कुछ जानने के विचार से उसने पूछा—

"महारानी जी ! यह मुर्गा आपने क्यो पाल रखा है ? पालना ही था तो किसी तोते को पालती ?"

वीरमती ने असली बात को छिपाते हुए कहा—

"मुझे तो कुछ भी पालने का शौक नही है। यह तो मैंने बहू का मन बहलाने के लिए रख लिया है। यह एक बहेलिये के फन्दे मे पडा था। वह तो इसका वध ही करता। दया करके मैंने इसे खरीद लिया और बहू को दे दिया। इस पर भी यह मेरे बडे काम का है। इसकी आवाज पर ही मैं जल्दी उठकर भगवद् भजन कर लेती हूँ। यह कुछ भी खाये, मैंने इसकी इजाजत बहू को दे रखी है। इसका खाना व्यर्थ नही जायेगा।"

सब बात सुनने के बाद मन्त्री सुमति ने कहा—

"लेकिन आपने इसे कब मोल लिया और कितने मे लिया ? इसकी कोई लिखा-पढी हमारे व्यय विभाग मे नही है। गृहामात्य ने इसके व्यय का मुझे कोई ब्यौरा नही दिया।

"महारानी जी ! राजपरिवार का समस्त व्यय हमारे गृह विभाग मे लिखा जाता है। इसका अकन 'अन्त पुर के लिए' नामक व्यय-पृष्ठ पर होना ही चाहिए था। वैसे भी आपके व्यय की बात मुझसे छिपी नही रहती।"

वीरमती ने सोचा, 'मैंने दो-चार बार मन्त्री की प्रशसा कर दी, इसलिए यह बहक गया। मेरे रौद्र रूप का डर कुछ कम हो गया है। इसीलिए हिसाब-किताब की बाते कर रहा है। इसे अपने महामन्त्री पद का अहसान होने लगा है। इसे अब पुन

सीधी राह पर लाना होगा।' यह सोच वीरमती ने क्रुद्ध स्वर और कठोर वाणी मे मन्त्री से कहा—

"मन्त्री जी ! छोटी-सी बात के लिए आप क्यो टें-टें कर रहे है ? मैंने इसे अपने एक आभूषण के विनिमय मे खरीदा है तो इसकी क्रयराशि आपके गृह-विभाग मे क्यो लिखनी ? अब आईन्दा मुझसे बेतुके प्रश्न मत करना। अगर जरा भी कुछ देखने की कोशिश की तो आपकी दशा इस मुर्गे से भी बदतर होगी।"

वीरमती की डांट सुनकर मन्त्री सुमति सहमकर चुप हो गया। ये सब बातें महल के अन्तरग कक्ष मे हो रही थी। मन्त्री ने गर्दन घुमाकर देखा तो गुणावली रो रही थी। मन्त्री का गुणावली से कुछ पूछने का साहस नही हुआ। लेकिन चतुर गुणावली ने अपने हथेली पर लिखकर मन्त्री को दिखा दिया कि 'यही राजा चन्द्र है'। वीरमती कुछ नही समझ पाई। मन्त्री सुमति को निश्चय हो गया कि अफवाह झूठी नही थी। इस दुष्टा ने देवरूप राजा चन्द्र को पिंजरे का पंछी बना दिया है। मन्त्री बिना कुछ कहे वीरमती के पास से उठ गया। अब पूरी आभापुरी जान गई कि राजा चन्द्र के बारे मे वास्तविकता क्या है। फिर भी वीरमती के भय से कोई चूं भी नही कर सकता था। इतना ही नहीं, वीरमती की विद्याओ का प्रभाव आसपास के राज्यो मे भी फैल गया था और कई राजाओ ने वीरमती की अधीनता भी स्वीकार कर ली थी। शक्ति के भय से अवगुण को भी गुण कहने को बाध्य होना पड़ता है। रगड पाकर पीतल भले ही सोना न बने, पर चमकने तो लगती ही है। जिन लोगो ने दूसरो से सुनकर ही वीरमती की अधीनता स्वीकार कर ली थी, उनका तो कुछ न बिगडा था, पर जिसने आंख उठाकर

वीरमती को देखने की कोशिश की थी, उन्हे झुककर अधीनता स्वीकार कर लेनी पडी थी।

हेमालय का राजा हेमरथ राजा चन्द्र का पुराना शत्रु था। राजा चन्द्र के समय मे वह कई वार मुह की खा चुका था। अब उसने सुना कि आभापुरी के राजसिंहासन पर एक औरत राज्य कर रही है तो उसकी क्षात्रशक्ति द्विगुणित हो गई। उसने मन मे दुस्सकल्प किया कि इस औरत को हराकर मैं चन्द्र का पुराना वैर चुकाऊंगा और अपने राज्य मे भी वृद्धि कर लूंगा। यद्यपि उसने वीरमती की विद्याओ का हाल सुन रखा था, पर इन वातो को वेपर की वाते मानता था। वह वीरमती को सामान्य स्त्री ही समझता था। हेमरथ ने युद्ध की पूरी तैयारियां करने के वाद एक दूत आभापुरी को भेजा। आभापुरी के राजदरवार मे हेमालय के दूत ने वीरमती के सामने राजा हेमरथ का सन्देश दिया—

"या तो हमारी अधीनता स्वीकार करे या आभापुरी के रणप्रागण मे हमसे युद्ध करें।"

हेमरथ का सन्देश सुनते ही वीरमती के तन-वदन मे आग लग गई। आग लगने की वात ही थी। वकरी का वच्चा शेरनी के सामने 'मैं-मैं' करे। शेरनी की तो एक ही झपट मे उसकी 'मैं' वन्द हो जाती है। वीरमती ने गरजकर कहा—

"दूत! तुझसे मैं क्या कहूँ? तू तो वेचारा दूत है। पर तू अपने राजा से जाकर कहना कि तुझे वीरमती ने शीघ्र ही बुलाया है। यदि तू अपने को क्षत्रिय समझता है और तूने अपनी माता का दूध पिया हो तो जल्दी आ—रणभूमि मे आभापुरी के रण-वांकुरे सैनिक तेरा सम्मान करेंगे। पिछली उन सभी मारो को

वह भूल गया, जब अनेक वार धूल चाटकर यहाँ से भागा था। पहले उसके साथ एक भल मनसाहत की जाती थी कि उसका हेमालय नही छीना जाता था। पर अबकी वार वीरमती उसे क्षमा नही करेगी। किसी ने ठीक ही कहा है, वार-वार क्षमा करने से अपराध करना अपराधी का एक स्वभाव वन जाता है। लेकिन इसमे वेचारे हेमरथ का भी क्या दोप है? चीटी को जब मरना होता है तो उसके पर निकल आते है। जब गीदड की मौत आती है तो वह जगल से वस्ती की ओर भागता है। दूत! अपने राजा से कह देना कि यहाँ आने के लिए उसका काल ही उसे उत्साहित कर रहा है।"

वीरमती की चेतावनी सुनकर हेमालय का दूत उलटे पाँवो राजा हेमरथ के राज-दरवार मे पहुँचा। दूत ने वीरमती का सदेश राजा को ज्यो-का-त्यो कह सुनाया और अपनी ओर से भी राजा को परामर्श दिया—

"प्रजारक्षक! मेरी विनम्र सम्मति यही है कि आप वीरमती से न टकराये। वीरमती कोई मामूली औरत नही है। आभापुरी मे उसका ऐसा रौव है कि वीर सेनापति और सभासद उसके सामने थर-थर काँपते हैं। आभापुरी के सारे पुरुप उस असाधारण औरत के आगे भीगी विल्ली वने हुए है। वडे-वडे राजा उसकी अधीनता स्वीकार कर चुके हैं। उसे छेडना सोती शेरनी को जगाना है।"

दूत की वात सुनकर राजा हेमरथ ने उससे कहा—

"दूत! तुम दौत्य कला मे ही चतुर हो। राजनीति की वातें तुम क्या समझो? कोई भी मुर्गा किसी विलाव को नही मार

सकती । यह तो उल्टी बात है । वीरमती का रौब वास्तविक नही है । जब मनुष्य अपनी शक्तियो को पहचानना छोड देता है तो अँधेरे मे रखी लकडी को भी भूत समझकर घबरा जाता है । लेकिन जब उजाला होता है तो सबका भ्रम मिट जाता है । लोगो के दिल और दिमाग मे वीरमती की विद्याओ का हौआ बैठा हुआ है, इसलिए उनका मनोबल गिर चुका है । झूठे रौब के कारण आभापुरी मे त्रिया राज्य चल रहा है । लेकिन मैं उसका झूठे डर का पर्दाफाश करके ही रहूँगा ।"

'काल दण्ड गहि काहु न मारा' की उक्ति के अनुसार हेमरथ अपने दुस्संकल्प पर दृढ रहा और अपनी विशाल वाहिनी लेकर आभापुरी की ओर रवाना हो गया । इधर वीरमती को भी उसके आगमन का पता लगा तो उसने महामात्य सुमति को आदेश दिया—

"महामन्त्री ! कालवश होकर हेमरथ आभापुरी पर चढकर आ रहा है । उसका स्वागत आभा की सीमा मे प्रविष्ट होने से पहले ही होना चाहिए । मैं स्वय उस भिनगे के लिए क्या जाऊँगी । तुम सेना लेकर उसको कुचलने पहुँच जाओ । आभापुरी का वह पुराना दुश्मन है । राजा चन्द्र ने अनेक बार उसे पराजित करके छोड दिया था । लेकिन नीति का कथन है कि शत्रु, अग्नि और सर्प इन तीनो को कभी भी शेष नही छोडना चाहिए । जीवित रहने पर ये तीनो कभी भी घातक हो सकते है ।"

वीरमती के आदेशानुसार महामात्य सुमति ने सेनापति को रण-सज्जा की आज्ञा दी और चतुरंगिनी सेना लेकर हेमरथ को मार्ग मे ही सबक देने जा पहुँचा । राजा हेमरथ आभा के निकट

आ चुका था। दोनो ओर की सेनाएँ डट गईं। आभापुरी के सैनिको ने हेमरथ की सेना को चारो ओर से घेर लिया तथा कुछ सेना घेरे के मध्य रहकर हेमरथ की सेना से युद्ध करने लगी। आभा के सैनिको ने ऐसी मारामार मचाई कि हेमरथ के सैनिक हथियार डाल बैठे। हेमरथ को बन्दी बना लिया गया। आभा के सैनिको मे अपनी मातृभूमि की रक्षा का उत्साह था और राजा चन्द्र के गौरव की रक्षा का सकल्प। इसलिए वे विजयी हुए। वीरमती के आदेश की उन्हे परवाह नही थी। वे अपने प्रजावत्सल राजा चन्द्र के पुराने वैरी हेमरथ को उसकी धृष्टता का दण्ड देना चाहते थे। कहावत है—'यतोधर्मस्ततो जय' सदा शुभ उद्देश्य और धर्म पक्ष की जय होती है।

बन्दी हेमरथ को रथ मे डालकर विजय-दुन्दुभी बजाते हुए महामन्त्री ने नगर मे प्रवेश किया। सैनिको को विशेष पुरस्कार बाँटा गया। अब हेमरथ के भाग्य का निर्णय वीरमती के हाथ मे था। उसे बन्दी रूप मे रानी वीरमती के समक्ष उपस्थित किया गया।

वीरमती ने कठोर स्वर मे मन्त्री सुमति को आदेश दिया—

"महामन्त्री ! इसकी यही सजा है कि इसे जीवन भर कैदखाने मे ही सडाया जाए।"

महामन्त्री सुमति ने अपनी ओर से ही रानी वीरमती को परामर्श दिया—

"महारानी जी ! शत्रु को शेष नही छोडना चाहिए, आपकी यह नीति बहुत उत्तम है। लेकिन मेरी विनम्र सम्मति मे शत्रु को मित्र बनाना और भी उत्तम है। राजा हेमरथ को हम मित्र

बनाकर ससम्मान मुक्त कर दें तो इससे आपके गौरव मे वृद्धि होगी।"

वीरमती ने मन्त्री से सहमत होते हुए कहा—

"मन्त्री! हेमरथ को तुमने अपने पौरुष से बन्दी बनाया है। इसलिए मैं तुम्हारी बात नही टाल सकती। तुम जैसा चाहो, करो।"

वीरमती की आज्ञा प्राप्त कर मन्त्री सुमति ने हेमरथ को बन्धन मुक्त किया। स्नानादि कराकर उसे उत्तम वस्त्र पहनाये और उपहार आदि देकर उसे अपना तथा आभापुरी राज्य का मित्र बनाकर ससम्मान विदा किया। हेमरथ के हृदय पर मन्त्री के सद्व्यवहार का अच्छा असर हुआ। उसने भी चिर शत्रुता को समाप्त करके आभापुरी का सदा मित्र बने रहने का शुभ सकल्प किया। हिंसा हिंसा से कभी पराजित नही होती, दुर्भाव को सद्भाव से ही जीता जा सकता है।

× × ×

सब यथावत् चल रहा था। कुछ दिनो बाद लोग असह्य या दुस्सह्य दुख को भी सहने के आदी हो जाते है। वीरमती के कुशासन को सहने के लोग अभ्यस्त हो गये थे। गुणावली भी अपने दुर्दिनों को समभावपूर्वक सहन कर रही थी। राजा चन्द्र को भी अपना कुक्कुट शरीर भा गया था। सब लोग अवसर और भाग्य की प्रतीक्षा मे जी रहे थे।

एक बार आभा नगरी मे एक नटमण्डली आई। नट का नायक शिवकुमार तथा उसकी पुत्री शिवमाला अपनी कला मे अद्वितीय थे। इस नटमण्डली की प्रसिद्धि दूर-दूर तक थी। शिवमाला कुशल नर्तकी, नटकला विशारदा तथा अन्य विद्याओ

मे भी पारगत थी। पक्षियो की बोली समझने मे वह बहुत पटु थी। वीरमती ने नटनायक शिवकुमार को कला-प्रदर्शन की अनुमति दे दी। राजसभा के सामने विशाल और भव्य मच तैयार कर दिया गया। प्रजा वर्ग और राज-परिवार के लोग यथास्थान नट-कौतुक देखने बैठ गये। गुणावली भी अपने स्वामी पिंजरे के पछी राजा चन्द्र को लेकर नटकला देखने बैठ गई। वीरमती ने प्रदर्शन की आज्ञा दी। खेल प्रारम्भ होने मे पूर्व औपचारिक रूप से नटनायक शिवकुमार ने वीरमती से निवेदन किया—

"महारानी जी ! मैं शिवकुमार नाम का नट उत्तर दिशा के अनेक राजाओ का मनोरजन करता हुआ यहाँ आ रहा हूँ। आप जैसे राजघराने के लोग ही मेरी और मेरी पुत्री शिवमाला की कला की कद्र जानते हैं। हम दोनो पिता-पुत्री तथा हमारी मण्डली के नट ऐसे-ऐसे कौतुक दिखायेंगे कि आपका चित्त बाग-बाग हो जायेगा।"

यथासमय खेल प्रारम्भ हो गया। पहले अन्य नटो ने नये-नये खेल दिखाये। कला-प्रदर्शन के साथ स्वर-लय मे बजने वाले बाजे सोने मे सुगन्ध का काम कर रहे थे। शिवकुमार ने भी नये-नये कौतुक दिखाकर सबको चमत्कृत किया। अन्त मे नट-कन्या शिवमाला का भी क्रम आया। शिवमाला ने एक लम्बा बाँस जमीन मे गाडा और फिर उसे चारो ओर से रस्सियो मे इस तरह से बांध दिया कि हिल-डुल न सके। उसके बाद आकाश मे बातें करते ऊँचे बाँस के सिरे पर एक सुपारी रखी गई। राजा चन्द्र की जय बोलने के बाद नटकन्या शिवमाला ने रानी वीरमती को प्रणाम किया और बाँस पर चढ गई। बांस के सिरे

पर रखी हुई सुपारी पर अपनी नाभि रखकर लेट गई और पेट के वल चारो ओर घूम-घूमकर कला दिखाने लगी। नीचे अन्य नट वाद्य वजाकर उसे उत्साहित कर रहे थे। कुछ नट वांस को चारो ओर से घेरे हुए गोलाकार खडे थे। इस तरह हैरत मे डालने वाली कलावाजी दिखाने के वाद शिवमाला सुपारी पर अपना मस्तक रख शीर्षासन से खडी हो गई। थोडी ही देर मे वहँ उल्टी से सीधी हो गई और वाएँ पैर की एडी के वल सुपारी पर एक टाँग से खडी हो गई और एक ही पैर से घूम-घूम कर नृत्य करने लगी। उसकी अद्‌भुत कला को देखकर दर्शक दांतो तले उँगली दवा गये। अभी तो वह दर्शको को और भी हैरत मे डालना चहती थी। उसने एक पैर से खडे-खडे ही एक पचरगी कपडा लेकर उसका एक फूल वनाया। उसका शरीर ऐसा सधा हुआ था कि फूल गूंथते समय कही भी सन्तुलन नही खोया।

अन्त मे मवको प्रणाम कर शिवमाला वांस से नीचे उतर आई। शिवकुमार नट ने पुत्री शिवमाला को गले से लगा लिया और उसे शावासी दी। प्रदशन समाप्त कर नटनायक शिवकुमार तथा नटपुत्री शिवमाला आदि वीरमती के सम्मुख उपस्थित हुए और राजा चन्द्र ती जय-जयकार वोलकर उससे पुरस्कार मांगने लगे। नटो द्वारा राजा चन्द्र की जय सुनकर वीरमती नीचे से ऊपर तक जल-भुन गई। उसे तो राजा चन्द्र का नाम सुनना भी वर्दाश्त नही था, और ये नट तो उसकी जय वोल रहे थे। फिर भला वीरमती उन्हे पुरस्कार कैसे दे सकती थी? लोक निन्दा के भय से वह नटो को दण्डित तो न कर सकी। लेकिन अन्दर-ही-अन्दर ईर्ष्याग्नि से दग्ध होने लगी और इनाम देना तो दूर रहा उसने नटो की कलावाजी की प्रशसा मे दो शब्द भी नही कहे।

दरबारी व दर्शक वीरमती की मनोभावना समझ रहे थे। पर नट उसकी इस मनोवृत्ति से अनभिज्ञ थे। उन्होंने उसकी उदासीनता का यही अर्थ लगाया कि हमारे कला प्रदर्शन मे रानी पूर्ण सन्तुष्ट नही है। उन्हे और भी खेल दिखाने चाहिए। यह सोच सभी नट पुन अपनी कला का प्रदर्शन करने लगे। इस बार तो वीरमती ने नटो की ओर आंख उठाकर भी नही देखा। अन्य दर्शक नटो के कौतुको को देखकर बहुत प्रसन्न हो रहे थे और नटो को पुरस्कार देने के लिए बहुत ही उत्सुक इच्छुक थे। लेकिन जब तक वीरमती कुछ न दें, किसी को पहल करने का साहस न था। दूसरी बार भी नटो ने राजा चन्द्र की जय बोली। रानी और भी क्रुद्ध गई। पिंजडे मे कुक्कुट रूप मे कैद राजा चन्द्र सब परस्थिति समझ रहे थे। वे अपने नाम की जय बोलने वाले नटो को निराश करना नही चाहते थे। क्योंकि कुछ न देने से सर्वत्र आभापुरी की निन्दा होगी और राजा चन्द्र के नाम को बट्टा लगेगा। अत मुर्गा रूप राजा चन्द्र ने अपनी चोच मे पानी पीने वाली सोने की कटोरी उठाकर नीचे डाल दी। नटो ने उसे लपक लिया और पुरस्कार पा कर पुन राजा चन्द्र की जय बोलने लगे।

रानी वीरमती क्रुद्ध होकर यह जानने के लिए बेचैन हो उठी कि यह प्रथम दान किसने दिया। दर्शक भी यह नही जान पाये कि यह दान किसने दिया। सभी एक दूसरे का मुँह देखने लगे। कुछ भी हो, उत्साह मे भरकर सभी दर्शक नटो को दान देने लगे। किसी ने गहने दिये, किसी ने कपडे, किसी ने मुद्राएँ दी। सबसे पुरस्कार लेकर नट अपने डेरों पर चले गये। उनके चले जाने के बाद वीरमती का स्वर गूंजा—

"कौन ऐसा दानवीर है, जिसने मुझसे पहले नटो को स्वर्ण-

दान देने का साहस किया। मालूम पड़ता है, वह दुस्साहसी अपने जीवन से ऊब चुका है। लेकिन उसका आयुष्य वल प्रवल है। इसीलिए मै उसे देख नही पाई। अगर देख पाती तो आज यम-लोक पहुँचा देती।"

वीरमती का अन्तिम वाक्य सुनकर गुणावली की जान मे जान आई। इधर महामन्त्री सुमति ने भी वीरमती को शान्त करने के अभिप्राय से कहा—

"महारानी जी! आप क्रोध न करे। जिसने भी आपसे पहले दान दिया है, उसने आपका यश ही बढाया है। उसने आपके वल पर ही यह कार्य किया है। वीर सैनिक राजा के भरोसे ही युद्ध-क्षेत्र मे अपनी वीरता दिखाते है। बाद मे भी जिन्होने नटो को दान दिया है, वे भी आपके प्रजाजन है। सारी प्रजा आपकी सन्तान है और आप सबकी माता है।"

मन्त्री सुमति के समझाने का कोई विशेष लाभ न हुआ। क्रोध मे भरी वीरमती सभा विसर्जित कर महलो को चली गई और एकान्त मे शय्या पर लेटी-लेटी विचार करने लगी कि आभापुरी मे ऐसा कौन है, जिसने मुझसे पहले दान देने का दुस्साहस किया? कोई मेरा गुप्त शत्रु तो प्रकट नही हो गया, जिसने मेरी उपेक्षा करके मुझसे पहले दान दिया? काफी सोच-विचार के बाद भी वह किसी पर सन्देह न कर सकी।

दूसरे दिन यथासमय वीरमती दरबार मे आई और नटो को बुलाकर पुन खेल दिखाने की आज्ञा दी। वीरमती के बुलावे पर नटो को बहुत भारी हर्ष हुआ। क्योकि कल वे उसे प्रसन्न नहीं कर पाये थे। नटो ने सोचा कि आज रानी वीरमती ने स्वय ही हमे बुलाया है तो अवश्य ही हमारे प्रदर्शन को रुचि के

साथ देखेंगी और प्रसन्न होकर पुरस्कार देंगी। वीरमती से पुरस्कार पाने की आशा से नट कला मच पर आ जमे और तरह-तरह के कौतुक दिखाने लगे। गुणावली भी पिंजडा गोद मे रख खेल देखने लगी। खेल समाप्त कर इस बार भी अनभिज्ञ नटो ने राजा चन्द्र की ही जय बोली और वीरमती से पुरस्कार मांगने लगे। वीरमती चुपचाप बैठी रही। उसने सामने खडे नटो की ओर कोई ध्यान नही दिया। वेचारे नट बहुत निराश हुए और वीरमती की उदासीनता का कोई कारण नही समझ पाये।

शिवकुमार नट ने सभा के चारो ओर निगाह उठाकर देखा। राजा चन्द्र के बिना उसे सभा उसी प्रकार सूनी दिखाई दी, जिस प्रकार नमक के बिना भोजन, जल के बिना नदी, हाथी बिना सेना और पत्तो के बिना वृक्ष सूने दिखायी देते हैं। इधर पिंजरे मे बैठे राजा चन्द्र से नटो की यह निराशा नही देखी गई, क्योकि नट लोग बार-बार उन्हीं की—राजा चन्द्र की जय बोल रहे थे, अत राजा चन्द्र ने कल की तरह आज भी अपनी चोच से सोने की एक कटोरी नीचे सरका दी। आज भी शिवकुमार ने उसे ऊपर-ही-ऊपर लपक लिया। सोने की यह कटोरी रत्न-जडित थी और कम-से-कम एक लाख के मूल्य की होगी। इस पुरस्कार को पाकर शिवकुमार बहुत ही खुश हुआ और जोर-जोर से राजा चन्द्र की जय-जयकार करने लगा। बाद मे अन्य दर्शको ने भी यथासामर्थ्य नट को पुरस्कार दिया। लेकिन इस बार वीरमती ने मुर्गा रूप चन्द्र को चोच से कटोरी नीचे फेंकते हुए देख लिया था। अत वह आग-बबूला होकर तलवार हाथ मे लिए सीधी गुणावली के पास पहुंची और मुर्गे को सम्बोधित कर बोली—

"अरे दुष्ट ! पक्षी होकर भी तेरा अहकार नही मिटा। तेरी यह मजाल कि तू मुझसे पहले दान देने की हिम्मत करे ? आज मैं तुझे जीवित नही छोड़ूंगी।"

कहते-कहते वीरमती ने खड्ग ऊपर उठाया, किन्तु गुणावली बीच मे पड़कर बोली—

"माताजी ! पक्षी को इतना ज्ञान कहाँ कि वह आपसे होड करे ? पानी पीते समय अनजान मे ही कटोरी नीचे गिर गई होगी। कटोरी नीचे गिरी और नट ने उठा ली, इसमे इनका क्या दोष है ? आप-जैसी शक्तिमती को पक्षी पर हाथ छोडना शोभा नही देगा। पक्षियो मे मनुष्यो की सी बुद्धि कहाँ होती है ? जैसे-तैसे ये आपकी दया पर जी रहे है। इन्हे इन्ही के हाल पर छोड दीजिए।"

वीरमती के क्रुद्ध स्वर और गुणावली की आर्त वाणी को सुन और लोग भी वहाँ इकट्ठे हो गये और सबके कहने-सुनने तथा समझाने-बुझाने पर राजा चन्द्र की जान बच गई और वीरमती सिहासन पर आकर बैठ गई। उसने नटो को पुन खेल दिखाने की आज्ञा दी। नट खेल दिखाने लगे। शिवमाला की बारी तो सबके बाद मे थी।

राजा चन्द्र इस रहस्य को जानते थे कि नट कन्या शिवमाला पक्षियो की भाषा समझती है। अत उन्होने अपनी तिर्यंच भाषा मे कहा

"कला की साक्षात् प्रतिमा शिवमाला ! तू जिस तरह नट विद्या मे निपुण है उसी तरह पक्षियो की भाषा भी जानती है। अत तू मेरी बात ध्यान देकर सुन। अपना खेल दिखाकर तुम लोग रानी वीरमती की ही जय बोलना। मैं राजा चन्द्र तो

पिंजरे का पछी बना यहाँ बैठा हूँ। जब तू अपना खेल दिखाने के बाद बाँस से उतरकर नीचे आये तो वीरमती की जय-जयकार करना। रानी वीरमती प्रसन्न होकर तुझसे कुछ माँगने को कहेगी तो तू मुझे ही माँग लेना। इसके चंगुल से निकलकर मेरे प्राण बच जायेंगे। शिवमाला! मै तेरा जीवन भर ऋणी रहूँगा।"

पक्षी-भाषा की मर्मज्ञ शिवमाला को यह जानकर बड़ा ही दुःख और आश्चर्य हुआ कि राजा चन्द्र पक्षी बने हुए है। उसने एकान्त मे अपने पिता शिवकुमार को भी सब रहस्य बता दिया। यथासमय खेल समाप्त होने पर सभी नट महारानी वीरमती की जय बोलने लगे। इस बार अपनी जय-जयकार सुनकर वीरमती बहुत ही प्रसन्न हुई। उसने नटनायक शिवकुमार से कहा—

"नटनागर! मै तुम्हारी और तुम्हारी पुत्री की कला देखकर बहुत प्रसन्न हुई हूँ। मैं तुम्हे वचन देती हूँ कि एक बार जो माँगोगे, वही मिलेगा। तुम अपनी इच्छानुसार कुछ भी माँग लो।"

शिवकुमार शिवमाला से सब रहस्य जान चुका था। अत उसने करबद्ध होकर कहा—

"महारानी जी! यदि आप मुझ पर प्रसन्न है तो अपना यह मुर्गा हमे दे दीजिए। मेरी बेटी शिवमाला मुर्गे की गति सीख रही है। अत हमे और कुछ नही चाहिए। बस, यह मुर्गा ही देने की कृपा करे।"

वीरमति बोली—

"शिवकुमार! माँगा भी तो तुमने क्या माँगा—पिंजरे का पछी ही माँगा। मै तुम्हे हीरे-मोती, रत्न, हाथी-घोडे जो चाहो सो दे सकती हूँ। यह मुर्गा तो मैंने बहू के लिए खरीदा है। इस

मुर्गे को देने से हमारे यश का पराभव होगा। धन-धान्य देने से ही हमारे यश की वृद्धि होगी।"

शिवकुमार ने पुन कहा—

"महारानी जी! आपकी कृपा से धन की मेरे पास कोई कमी नही। यदि कमी होगी तो दूसरे राजाओ से माँग लूँगा। मेरी वेटी की इस मुर्गा को लेने की वहुत इच्छा है। लगता है, आपको यह मुर्गा विशेष प्रिय है, वरना इसे देने मे आना-कानी नही करती। आप वचन दे चुकी हैं। मुर्गा देने से आपको यश का पराभव नही होगा, वल्कि वचन फेरने से ही अपकीर्ति होगी। अत सव वातो पर विचारकर मुझे इस मुर्गे को ही दीजिए।"

वीरमती सोच मे पड गई। अन्त मे, उसने मुर्गा देने का निश्चय कर ही लिया तथा मन्त्री को आज्ञा दी कि गुणावली से मुर्गा लाकर नट शिवकुमार को दे दो। वीरमती की आज्ञा पाकर मन्त्री गुणावली के पास पहुँचा और उससे मुर्गा माँगा और उसे समझाया कि राजा चन्द्र को यहाँ रखने की अपेक्षा नट को देना अधिक अच्छा है। यहाँ इनकी जान को हर समय वीरमती रूपी विल्ली का खतरा वना रहता है। किसी भी सामान्य विल्ली से इस मुर्गे की रक्षा आप भी कर सकती है, पर मानुषमुखी विल्ली वीरमती से इनकी रक्षा करना किसी के वश का नही।

गुणावली ने मन्त्री सुमति से कहा—

"महामन्त्री जी! आपकी सब वाते यथार्थ है, पर मै अपने प्राणो को अपने से अलग कैसे कर सकती हूँ? इन्हे देखकर ही तो मै किसी तरह जी रही हूँ।"

मन्त्री सुमति ने पुन कहा—

"महारानी जी ! वीरमती नट को वचन दे चुकी है। अगर आप मुर्गा न देंगी तो आपको मुर्गा भी देना पडेगा और दुष्टा वीरमती के कोप का भोजन बनना पडेगा। मैं आपके मन की व्यथा जानता हूँ। जिस दिन आपने अपनी हथेली पर लिखकर मुझे बताया था कि यह मुर्गा ही राजा चन्द्र है, उसी दिन से मैं अपने राजा की यह दशा देखकर दुखी हूँ। पर आजकल विधाता हम सबसे रुठा हुआ है।

"महारानी जी ! स्वास्थ्य लाभ के लिए कडवी औषध भी पीनी पडती है। राजा चन्द्र की भलाई के लिए हृदय पर पत्थर रखकर आप यह मुर्गा नट शिवकुमार को सौप दीजिए। हो सकता है कि दैव की यही इच्छा हो कि नट के साथ रहकर ही उन्हे निज रुप प्राप्त हो जाए।"

मन्त्री सुमति की बात गुणावली की समझ मे आ गई और वह मुर्गा देने को तैयार हो गई। मुर्गा सौपते समय उसका हृदय फटा जा रहा था। उसकी आँखो मे आँसुओ की धारा बह रही थी। उसको इतना दुखी देख राजा चन्द्र भी बहुत दुखी हुए, पर वे तो स्वय अपनी इच्छा से जाना चाहते थे। अत उन्होने पजे से लिखकर गुणावली को बताया—

"प्राणप्रिये ! तुम मेरी चिन्ता मत करो। तुम निश्चिन्त होकर मुझे शिवमाला को सौप दो। मै दूर रहकर भी सदा तुम्हारे पास रहूँगा और यदि दैव अनुकूल हुआ तो तुमसे निज रुप मे जाकर मिलूँगा। मै इसी विश्वास के साथ नटकन्या शिवमाला के साथ जा रहा हूँ कि वह मुझे मुर्गे से मनुष्य बना

देगी। यहाँ मेरा जीवन सुरक्षित नही है। तुम सब दुविधाओ को त्यागकर मुझे नटो को सौप दो।"

गुणावली ने पिंजरे का पछी मन्त्री के हाथो मे दे दिया और फिर रो-रो कर उससे कहने लगी—

"मेरे प्राणवल्लभ! आपसे बिछुडते हुए मेरे प्राण कण्ठ को आ रहे है। मुझ दासी को कभी मत भूलना। आपसे कपट करके मैंने बहुत बुरा फल पाया है। यदि यहाँ आप असुरक्षित न होते तो मै स्वप्न मे भी आपको अपने से अलग न करती। स्वामी! आप आइए और मुझ दासी को फिर अपनी चरण सेवा का अवसर दीजिए।"

वीरमती ने मुर्गे के रूप मे राजा चन्द्र, नटनायक शिवकुमार को सौंप दिया। मुर्गे को पाकर शिवकुमार और शिवमाला बहुत प्रसन्न हुए और वीरमती की जय बोलकर अपने डेरे मे आ गये। शिवकुमार और शिवमाला ने मुर्गे को मुर्गा न समझ राजा चन्द्र मानकर ही व्यवहार किया। उनके पिंजरे को एक ऊँचे आसन पर बिठाया, मानो अपने राजा को सिंहासनासीन किया हो। फिर सभी नटो ने मच पर विराजित राजा चन्द्र से कहा—

"हे स्वामी! दुनिया की दृष्टि से आप एक मुर्गा और पिंजरे का पछी रहेगे। पर हमारे लिए आप हमारे राजा चन्द्र ही है। हम सबसे पहले आपको अभिवादन करके किसी को खेल दिखायेगे। हम पाँच सौ नट ही आपकी प्रजा है, हम ही आपकी सेना है और हम ही आपकी सभा के सदस्य है।"

इस तरह से नटो ने पिंजरे के पछी राजा चन्द्र का बार-बार अभिवादन किया। तदनन्तर राजा चन्द्र ने अपनी बोली मे पछी-

भापा पण्डिता शिवमाला को अपनी सब व्यथा-कथा अथ से इति तक कह सुनाई। शिवमाला बडे भक्तिभाव से राजा चन्द्र की सेवा-शुश्रूषा करती, उन्हे तरह-तरह के मेवा-मिष्ठान्न खिलाती तथा नहलाती-धुलाती। नट लोग अभी आभापुरी मे ही ठहरे हुए थे। गुणावली ने मन्त्री सुमति को बुलाकर कहा—

"मन्त्री! कुछ भी हो, आप मेरे कुक्कुट देव को नटो से वापस ला दीजिए। भले ही मेरे स्वामी पक्षी है, पर मैं उनके बिना नही जी सकूँगी। अगर वीरमती उनका कुछ अनिष्ट करेगी तो मैं भी अपने प्राण दे दूंगी।"

मन्त्री सुमति ने गुणावली को समझाया—

"महारानी! मोह के वश होकर आप आगे की बात नही सोच रही। मुर्गे को वापस मगाना वीरमती को छेडना है। इस समय उसे न छेडना ही ठीक है। आप उस दिन की प्रतीक्षा कीजिए, जिस दिन वीरमती यमलोक पहुँचेगी और राजा चन्द्र निज रूप मे प्रकट होकर आपको तथा आभापुरी की प्रजा को सनाथ करेगे। वैसे मैं नटो के डेरे पर जा रहा हूँ। उनसे कहूँगा कि वे फिर भी यहाँ अपना खेल दिखाने आये तथा पत्र द्वारा भी उनके कुशल समाचार देते रहे।"

गुणावली ने अपने स्वामी राजा चन्द्र के लिए मन्त्री सुमति को मेवा-मिष्टान्न देकर कहा—

"मन्त्री जी! दैव की यही इच्छा है तो मैं इसी पर सन्तोष करूँगी। आप बार-बार समझाते है, पर नारी का हृदय बडा कोमल होता है। उनके बिना मुझे कुछ भी नही सुहायेगा। अब आप यह मेवा-मिष्टान्न शिवमाला को देकर कहिए कि वह उनका हर तरह का ख्याल रखे।"

गुणावली से विदा लेकर मन्त्री सुमति नटो के डेरो पर पहुँचा और शिवकुमार तथा उसकी बेटी शिवमाला से कहा—

"नटनायक ! आप यह तो जानते ही है कि ये मुर्गा नही है, बल्कि राजा चन्द्र ही है। इनकी विमाता वीरमती ने इन्हे विद्याबल से यह रूप दिया है। महारानी गुणावली तथा मेरी ओर से भी आपसे यह कहना है कि आप इनकी हर तरह से रक्षा कीजिए। इन्हे लेकर आप देश-देशान्तर घूमेगे। इन्हे लेकर कभी यहाँ भी आइए, ताकि हम पुन भी इनके दर्शन कर सकें। यदि और कुछ नही तो पत्र द्वारा ही इनकी कुशलता का समाचार देते रहे। इससे महारानी गुणावली को धीरज मिलता रहेगा।"

नटनायक शिवकुमार ने कहा—

"मन्त्री जी ! इनकी ओर से आप निश्चिन्त रहिए। हमारे लिए भी ये राजा चन्द्र ही है। इन्हे हम प्राणो से भी अधिक हिफाजत से रखेंगे। पाँच सौ नट सदा इनकी रक्षा मे तत्पर रहेंगे।"

महामन्त्री अपने स्थान को वापस आ गये और नट अन्यत्र जाने की तैयारी करने लगे। यथासमय नटो ने बाजे बजाते हुए आभापुरी से प्रस्थान किया। राजमार्ग मे होकर नटो का दल जा रहा था। कुछ नट ढोल, मृदग, तुरही आदि बजाते जा रहे थे। शिवमाला 'पिंजरे का 'पछी'—राजा चन्द्र को सिर पर रखे आगे-आगे जा रही थी। बाजो की आवाज सुनकर गुणावली महलो की छत पर आ गई और अपने प्राणवल्लभ कुक्कुट रूप राजा चन्द्र को जाते हुए टकटकी लगाकर देखने लगी। जब पिंजरे का पछी उसकी आँखो से ओझल हो गया तो वह लुटी-पिटी-सी नीचे उतर आई और जैसे मछली पानी के बिना छट-

पटाती है, उसी तरह गुणावली व्याकुल होने लगी। प्रियवियोग मे वह मूर्च्छित होकर गिर पडी। दासियो ने उसका उपचार किया और काफी देर बाद वह पुन सचेत हुई। उसी समय वीरमती भी वहाँ आ पहुँची। उसने जले पर नमक छिडकते हुए गुणावली को सम्बोधित किया—

"बह! चन्द्र के चले जाने मे आज मै बहुत खुश हूँ। यहाँ वह राजमहल मे रहता था, अब नटो के साथ मारा-मारा फिरता रहेगा। वह हम दोनो की राह का काँटा था। तू भी उसे छोडकर मेरे साथ कही जाने मे आना-कानी करती थी। अब हम दोनो निर्विघ्न होकर सैर-सपाटे किया करेंगी।"

वीरमती की ये बातें गुणावली के हृदय को विदीर्ण किये डाल रही थी। परिस्थिति विषम थी, इसलिए गुणावली मौन थी। सबके चले जाने के बाद एकान्त मे बैठकर गुणावली खूब रोई। दुख का आनन्द रोने मे और सुख का हँसने मे। जब तक आँखो मे से आँसू न गिरें तब तक, दुख, दुख नही—दुख का आभास भर है और बिना रोये दुख हल्का भी नही होता। रो कर मन की घुटन कम हो जाती है। रो-धोकर गुणावली भी शान्त-स्वस्थ हो गई। आखिर कब तक रोती, क्योकि रोना कोई उपाय नही, सिर्फ दुखी का एक सहारा है, साथी है। दुख पीडा पहुँचाता है और रुदन रूपी साथी दुखी प्राणी को सहानुभूति देता है।

राजा चन्द्र मुर्गे के रूप मे गुणावली के पास थे, फिर भी वह विरहिणी नही थी, पर अब तो वियोग-वेदना से बहुत व्याकुल थी। रातें काटे नही कटती थी और दिन पाचाली के चीर जैसे लम्बे हो गये थे। वह सदा पति की चिन्ता मे रहती थी। वह

अपने सब दुःख का कारण अशुभ कर्मों का उदय मानती थी, इसलिए कर्म-निर्जरा के लिए नये-नये तप, उपवास किया करती थी। नवकार मन्त्र का जाप तो उसका नित्य-नियम ही बन गया था। इसके अतिरिक्त उसने आभापुरी राज्य के अधीनस्थ सात मित्र राजाओं को अपने पास बुलाया और अपने स्वामी की रक्षा के लिए शिवकुमार की नटमण्डली के संग रहने के लिए कहा सातों छत्रधारी राजा अपनी-अपनी सेना सहित ढूंढते-खोजते शिवकुमार नट के पास पहुँचे और सात हजार सशस्त्र सैनिकों सहित राजा चन्द्र की रक्षा के लिए सदा नटमण्डली के साथ रहने लगे।

यह काल राजा चन्द्र के शुभ-अशुभ—मिश्रित कर्मों के उदय का काल था। अशुभ कर्मोदय के कारण वे पिंजरे का पंछी बनकर नटकन्या शिवमाला के साथ देश-विदेश मारे-मारे फिरते रहे और पक्षी रूप होकर भी वे एक राजा की तरह सम्मानित और पूजित थे। पांच सौ नट, सात हजार सैनिक और छत्रधारी सात राजा सदा उनकी सेवा में नियुक्त रहते थे। जहाँ भी नट लोग अपना कौतुक दिखाते मुर्गे के रूप में राजा चन्द्र को सबसे ऊँचे सिंहासन पर बैठाया जाता और सर्वप्रथम उन्हें प्रणाम करके ही खेल का आरम्भ होता तथा मुर्गा रूप में भी राजा चन्द्र की जय बोली जाती। सातों राजा मुर्गा को ही अपना महाराज मानते और प्राणपण से उनकी सेवा-रक्षा में तत्पर रहते। उन्होंने अपनी श्रद्धा राजा चन्द्र के समक्ष प्रकट की—

'हे आभापति ! आज आप पिंजरे के पंछी हैं तो क्या हुआ ? हमारे लिये तो आप पूर्ववत् ही महाराज हैं। हम आज भी आपके

अधीन है और महारानी गुणावली की आज्ञा से आपकी सेवा में सदा साथ रहने के लिए आये है।"

यों तो शिवकुमार नट के दल की पहले भी दूर-दूर तक प्रसिद्धि थी। पर अब तो उसका नट-दल असाधारण दल था। मुकुटधारी सात राजा और सात हजार सैनिक सदा नटमण्डली के साथ रहते थे। शिवकुमार के ऐसे वैभव को देखकर लोग चकित रह जाते थे। जब यह दल कही जाता तो रास्ते मे देखने वालों की भीड लग जाती थी। कुक्कुट रूप राजा चन्द्र सोने के पिंजरे मे सदा शिवमाला के मस्तक पर विराजते थे। पीछे पीछे पांच सौ नट, सात हजार सैनिक और सातों राजा चलते थे। सभी दर्शक सोचते थे, 'यह मुर्गा ही सबका अधिनायक है, सबका सरताज है—यही सबसे आगे रहता है। क्या पता मुर्गे के रूप मे यह कोई देव ही हो। तभी तो इतनी बडी सेना और राजा इसके पीछे-पीछे चलते है।'

मुर्गा को राजा मानने मे किसी को कोई सन्देह नही होता था, क्योकि शिवमाला के मस्तक पर उनका स्वर्ण पिंजर रहता था और पीछे-पीछे एक आदमी छत्र तानकर चलता था। और दाएँ-बाएँ दो आदमी चंवर डुलाते हुए चलते थे। इस रूप मे मुर्गे को देखकर किसे सन्देह होगा कि यह मुर्गा राजा नही है, पर इसके साथ ही सबको आश्चर्य भी बहुत होता क्योकि आज तक एक सामान्य पक्षी को इतना मानसम्मान देते न तो किसी ने सुना और न देखा। नटमण्डली के इस ठाट-बाट से आकर्षित होकर देश-देश के दर्शक पहले से दूनाचौगुना पुरस्कार देते थे। 

: ५ :

बंगाल देश के पृथ्वीभूषण नामक नगर मे अरिमर्दन नाम का राजा राज्य करता था। अरिमर्दन वीर-धीर और प्रजावत्सल राजा था। उसका नगर पृथ्वीभूषण भी श्रीसम्पन्न सेठ-साहूकारो से शोभित था। राजा अरिमर्दन आभापुरी के पूर्व राजा तथा राजा चन्द्र के पिता वीरसेन का अनन्य मित्र था। मित्र क्या, एक तरह से वह राजा वीरसेन का कृपापात्र ही था। वीरसेन के चारित्र ग्रहण करने के बाद जब राजा चन्द्र सिंहासनासीन हुए तो नरपाल अरिमर्दन ने उपहार-सामग्री भेजकर राजा चन्द्र को सम्मानित किया और अपने ऊपर सदा कृपा दृष्टि रखने की आकाक्षा प्रकट की थी।

एक बार शिवकुमार की नटमण्डली घूमते-घूमते पृथ्वीभूषण नगर मे पहुँच गई और राजा अरिमर्दन से आज्ञा प्राप्त कर अपने डेरे लगा दिये। यथासमय उन्होने अपना खेल राजा को दिखाना शुरू किया। खेल दिखाने से पहले मुर्गे के रूप मे राजा चन्द्र को एक उच्चासन पर पिंजरे सहित बैठाया गया। एक व्यक्ति सिर पर छत्र लेकर खड़ा हो गया। दाएँ-बाएँ दो व्यक्ति चँवर ढोरने लगे। तदनन्तर राजा चन्द्र की जय बोलकर शिवकुमार ने खेल शुरू करने की आज्ञा मांगी तो कुक्कुट रूपी राजा चन्द्र ने अपना

अधीन है और महारानी गुणावन्ती की आज्ञा से आपकी मेवा में सदा साथ रहने के लिए आये है।"

यो तो शिवकुमार नट के दल की पहले भी दूर-दूर तक प्रसिद्धि थी। पर अब तो उसका नट-दल असाधारण दल था। मुकुटधारी सात राजा और सात हजार सैनिक सदा नटमण्डली के साथ रहते थे। शिवकुमार के ऐसे वैभव को देखकर लोग चकित रह जाते थे। जब यह दल कही जाता तो रास्ते मे देखने वालो की भीड लग जाती थी। कुक्कुट रूप राजा चन्द्र सोने के पिंजरे मे सदा शिवमाला के मस्तक पर विराजते थे। पीछे पीछे पॉच सौ नट, सात हजार सैनिक और सातो राजा चलते थे। सभी दर्शक सोचते थे, 'यह मुर्गा ही सबका अधिनायक है, सबका सरताज है—यही सबसे आगे रहता है। क्या पता मुर्गे के रूप मे यह कोई देव ही हो। तभी तो इतनी बडी सेना और राजा इसके पीछे-पीछे चलते है।'

मुर्गा को राजा मानने मे किसी को कोई सन्देह नही होता था, क्योकि शिवमाला के मस्तक पर उनका स्वर्ण पिंजर रहता था और पीछे-पीछे एक आदमी छत्र तानकर चलता था। और दाएँ-बाएँ दो आदमी चँवर ढुलाते हुए चलते थे। इस रूप मे मुर्गे को देखकर किसे सन्देह होगा कि यह मुर्गा राजा नही है, पर इसके साथ ही सबको आश्चर्य भी बहुत होता क्योकि आज तक एक सामान्य पक्षी को इतना मानसम्मान देते न तो किसी ने सुना और न देखा। नटमण्डली के इस ठाट-बाट से आकर्षित होकर देश-देश के दर्शक पहले से दूनाचौगुना पुरस्कार देते थे।



: ५ :

बंगाल देश के पृथ्वीभूषण नामक नगर मे अरिमर्दन नाम का राजा राज्य करता था। अरिमर्दन वीर-धीर और प्रजावत्सल राजा था। उसका नगर पृथ्वीभूषण भी श्रीसम्पन्न सेठ-साहूकारो से शोभित था। राजा अरिमर्दन आभापुरी के पूर्व राजा तथा राजा चन्द्र के पिता वीरसेन का अनन्य मित्र था। मित्र क्या, एक तरह से वह राजा वीरसेन का कृपापात्र ही था। वीरसेन के चारित्र ग्रहण करने के बाद जब राजा चन्द्र सिंहासनासीन हुए तो नरपाल अरिमर्दन ने उपहार-सामग्री भेजकर राजा चन्द्र को सम्मानित किया और अपने ऊपर सदा कृपा दृष्टि रखने की आकाक्षा प्रकट की थी।

एक बार शिवकुमार की नटमण्डली घूमते-घूमते पृथ्वीभूषण नगर मे पहुँच गई और राजा अरिमर्दन से आज्ञा प्राप्त कर अपने डेरे लगा दिये। यथासमय उन्होने अपना खेल राजा को दिखाना शुरू किया। खेल दिखाने से पहले मुर्गे के रूप मे राजा चन्द्र को एक उच्चासन पर पिंजरे सहित बैठाया गया। एक व्यक्ति सिर पर छत्र लेकर खडा हो गया। दाएँ-बाएँ दो व्यक्ति चँवर ढोरने लगे। तदनन्तर राजा चन्द्र की जय बोलकर शिवकुमार ने खेल शुरू करने की आज्ञा मांगी तो कुक्कुट रूपी राजा चन्द्र ने अपना

दायाँ पैर ऊपर उठाकर आज्ञा प्रदान की। खेल शुरू हुआ। शिवकुमार तथा शिवमाला ने भाँति-भाँति के कौतुक दिखाये। राजा अरिमर्दन, उसकी राजसभा और पृथ्वीभूषण नगर की प्रजा सभी नट-कौतुक देखकर बहुत आनन्दित हुए। राजा अरि-मर्दन का ध्यान मुर्गे की ओर ही लगा हुआ था। नट को पुरस्कार आदि देने के बाद राजा ने नट शिवकुमार से पूछा—

"हे नटनायक! इस मुर्गे मे ऐसी क्या विशेषता है, जो तुम इसे भगवान की तरह पूजते हो? पक्षियो के प्रति प्रीति तो बहुतो को स्वजनो से भी अधिक होती है। पक्षियो के लिए लोग प्राण भी दे देते है। पर इस मुर्गे के प्रति तुम सबका जो सविशेष सम्मान है, यह एक विचित्र बात है। इसका क्या कारण है?"

नट शिवकुमार ने कहा—

"पृथ्वीनाथ! यह मुर्गा साधारण मुर्गा नही है, बल्कि मुर्गे के रूप मे ये आभापति राजा चन्द्र है। हम जो कुछ मान-सम्मान देते है वह भी इनके लिए थोडा है।"

राजा चन्द्र का नाम सुनते ही राजा अरिमर्दन हर्ष-मिश्रित आश्चर्य मे डूब गया और फिर कुक्कुट रूपी राजा चन्द्र के चरणो मे गिरकर कहने लगा।

"आभानरेश! आपकी जय हो। आपने बडी कृपा की जो हमारी नगरी मे पधारे। आपको इस रूप मे देखकर मेरा हृदय फटा जा रहा है। लेकिन दैव के आगे किसका वश चला है।"

इसके बाद नरश्रेष्ठ अरिमर्दन ने रत्नाभूषण, मणि-माणिक्य तथा हाथी-घोडे आदि भेंट करते हुए राजा चन्द्र से पुन कहा—

"हे नरनाथ ! मेरी यह तुच्छ भेट स्वीकार कीजिए। आपकी स्वीकृति से मैं धन्य हो जाऊँगा।"

राजा चन्द्र ने सकेत से शिवकुमार को भेंट लेने की अनुमति दे दी। शिवकुमार ने सब उपहार लेकर रख लिये। उसके बाद शिवकुमार नट का दल पृथ्वीभूषण नगर को छोडकर आगे के लिए रवाना हो गया। राजा चन्द्र को स्नेह-सम्मान देने के कारण राजा अरिमर्दन नटमण्डली को छोडने नगरसीमा तक नटो के साथ गये और राजा चन्द्र को प्रणाम कर लौट आये।

पृथ्वीभूषण से चलने के बाद नटमण्डली सिंहलद्वीप पहुँच गई और समुद्र तटवर्ती सिंहल नामक नगर मे ठहर गई। सिंहल के राजा ने नटमण्डली का स्वागत किया, क्योकि सात हजार सैनिको और मुकुटधारी सात राजाओ के कारण शिवकुमार की मण्डली का सब जगह स्वागत ही होता था। नटनायक शिवकुमार पिंजरे का पछी राजा चन्द्र को लेकर सिंहलनरेश की राजसभा मे पहुँचे। सिंहलपति नट शिवकुमार से इतना प्रभावित हुआ कि उसी समय पांच सौ जहाजो की चुंगी उसके पास आई थी, सो सब-की-सब राशि सिंहलपति ने शिवकुमार नट को तत्काल दे दी। यह सब राजा चन्द्र का ही प्रताप था। राजा चन्द्र के साथ रहने से शिवकुमार को अपार धन मिलता था और सम्मान भी प्राप्त होता था। नटो ने अपना खेल दिखाकर सिंहलपति तथा सिंहल की जनता को भी प्रसन्न किया और फिर सिंहल से आगे पोतनपुर नामक नगर को जाने की तैयारी करने लगे।

सिंहलनरेश की रानी ने जब से नटो के पास मुर्गे को देखा था, तब से वह मुर्गे पर न्योछावर हो गई थी। किसी भी मूल्य

पर वह मुर्गे को प्राप्त करना चाहती थी। अत उसने सिंहल के राजा से अपने मन की बात कही—

"प्राणनाथ ! नटो के पास जो मुर्गा है, उसने मेरा चित्त चुरा लिया है। उसके बिना मैं जीवित नही रह सकती। जैसे भी बने, आप उस मुर्गे को मेरे लिए ला दीजिए।"

राजा ने रानी को समझाया—

"रानी ! तुम तो बच्चो-जैसी बातें करती हो। भला एक राजा होकर मैं नटो से मुर्गा मांगू ? मांगना तो क्षत्रिय धर्म नही है। अगर तुम खरीद लेने की बात कहो तो भी वे लोग उस मुर्गे को क्यो बेचने लगे ? उस मुर्गे से उनकी जीविका चलती है। क्या तुमने देखा नही, वे उसे देवता की तरह पूजते है। इसके अलावा मुर्गा जैसी मामूली चीज के लिए तुम्हारा व्याकुल होना भी बडा अनुचित है।"

रानी ने पुन आग्रह किया—

"स्वामी ! मन की गति बडी विचित्र होती है। जिस पर नही लगना चाहिए, यह मन उस पर भी लग जाता है। मन का लगाव तर्को से और औचित्य समझाने पर भी दूर नही होता। समर्थ पति तो अपनी प्रिया के लिए सब कुछ कर सकते है। क्या आप मेरी एक मामूली-सी इच्छा पूरी नही कर सकते ? उस मुर्गे के बिना मैं जीवित नही रह सकती।

"स्वामी ! आप राजा है। राजा न तो मांगता है और न क्रय करता है। वह तो जिस चीज को चाहता है, उसे दूसरो से छीन लेता है। अगर नट लोग राजी से मुर्गा न दें तो आप उनसे छीन भी सकते हैं। कुछ भी करें, पर वह मुर्गा मेरे लिए अवश्य ला दे।"

रानी का इस तरह का आग्रह देखकर राजा भी लाचार हो गया। उसने एक आदमी नट के पास भेजा। राजा के आदमी ने उनका सन्देश नट से कहा—

'आपका मुर्गा हमारी रानी को बहुत पसन्द है। हमारे राजा की इच्छा है कि यह मुर्गा आप उन्हे दे दें और जो चाहे मूल्य ले लें।"

नट शिवकुमार को किसी का भय नही था। अतः उसने सहज भाव से कहा—

"यह मुर्गा केवल मुर्गा ही नही है, बल्कि हमारा राजा है। हम तो इस मुर्गा के सेवक हैं। अगर मुर्गा चाहे तो हमे चाहे जिसको दे सकता है। सेवक स्वामी को दे, यह तो अनहोनी बात है। आप अपने राजा से जाकर कहे कि हमारा खेल देखने के एवज मे उन्होने जो कुछ दिया है, उसे भी वापस ले लें, पर ऐसी माग अब न करे।"

राजा के आदमी ने पुन कहा—

"हे नटनायक! आपका यह मुर्गा हमारी महारानी जी के प्राणो का आधार है। इसके बिना वे अपने प्राण-त्याग देगी। अत. उनकी प्राण रक्षा का विचार करके ही यह मुर्गा हमे दे दीजिए।"

शिवकुमार ने इस बार कुछ आक्रोश मे भरकर कहा—

"आपकी महारानी मरे या जीवित रहे, इस बात से हमे कोई मतलब नही। बस, हम तो इतना जानते हैं कि अपना यह मुर्गा आपको नही दे सकते।"

राजा का आदमी अपना-सा मुँह लेकर वापस लौटा और उसने नट का उत्तर ज्यो का त्यो बता दिया।

नट शिवकुमार का ऐसा धृष्टतापूर्ण उत्तर सुनकर सिहल का राजा आग-बबूला हो गया और शिवकुमार को दण्ड देने की ठान ली। उसने सभा के मध्य कहा—

"इस नट ने अपने को समझा ही क्या है ? मैं बलपूर्वक उससे मुर्गा छीन लूंगा और उसकी हेकडी का मजा उसे चखाऊँगा।"

यह कहकर सिहलपति ने सेना तैयार होने की आज्ञा दी और फिर सेना लेकर नटो पर धावा बोल दिया। आज पहली बार ऐसा अवसर आया था, जब राजा चन्द्र की रक्षा के निमित्त तैनात सात हजार सैनिक, पाँच सौ नट और रणवीर सात राजा अपना शौर्य दिखाते। सिहलपति को ससैन्य अपनी ओर आते देख नटमण्डली के सैनिक भी मुकाबले को आ डटे और उन्होंने संकल्पबद्ध होकर ऐसा युद्ध किया कि सिहलपति के सैनिक भागते नजर आये। रानी की हठ के कारण सिहल के राजा को नट के आगे लज्जित होना पडा और विजयनाद करते हुए तथा राजा चन्द्र की जय बोलते हुए नटो का दल डंके की चोट पोतनपुर की ओर रवाना हो गया।

× × ×

पोतनपुर नाम का नगर बहुत विशाल और साथ ही देवपुरी के समान शोभा-सम्पन्न था। यहाँ राजा जयसिंह का शासन था। जयसिंह का महामात्य सुबुद्धि बहुत ही चतुर और नीतिज्ञ था। उसे अपने बुद्धि-चातुर्य पर इतना भरोसा था कि अपनी युक्तियो से विधि की लिखी भाग्यलिपि को भी मेटने की सामर्थ्य रखता था। उसकी पत्नी मंजूषा रूप-लावण्यमयी और पतिपरायणा थी। उसकी कोख से उत्पन्न सुबुद्धि की पुत्री लीलावती माँ के समान सुन्दर और पिता के समान बुद्धिमती

थी। पोतनपुर नगर मे ही धनद नाम का एक कोटीश्वर सेठ रहता था। धनद के घर लक्ष्मी की वर्षा होती थी। उसके पास इतना धन था कि उसकी कई पीढियां बैठकर खा सकती थी। धनद का एक मात्र पुत्र लीलाधर बहुत ही रूपमान, बहत्तर कलाओ मे निष्णात तथा वणिक्‌पुत्र होते हुए वीर, धीर, साहसी और दृढप्रतिज्ञ था। लीलाधर एक बार जो निश्चय कर लेता था, उसे करके ही छोडता था। सब तरह से अपनी पुत्री लीलावती के अनुकूल समझकर पोतनपुर के महामन्त्री सुबुद्धि ने अपनी पुत्री लीलावती का विवाह धनद श्रेष्ठी के पुत्र लीलाधर के साथ कर दिया। यो तो लीलाधर श्रीसम्पन्न पिता का पुत्र था, फिर भी महामन्त्री सुबुद्धि का जामाता बनने के कारण उसका ऐश्वर्य ठाट-बाट और भी अधिक बढ गया। उसमे दान देने की उदारता भी थी। वह सदा मुक्तहस्त से दान दिया करता था। लीलावती जैसी अनिन्द्य सुन्दरी पत्नी को पाकर उसका जीवन सुख से बीत रहा था। दोनो की जोडी रति-कामदेव जैसी लगती थी।

एक बार कोई पुण्यहीन याचक लीलाधर के पास आया और उससे जरूरत-भर धन मांगने लगा। उसके प्रारब्ध से प्रभावित प्रेरणा के वशीभूत लीलाधर ने याचक से इन्कार कर दिया। इतना ही नही, उसे फटकार भी दिया। याचक का भी स्वाभिमान होता है। यह बात दूसरी है कि मांगते समय उसका स्वाभिमान सोया रहता है। लेकिन कभी वह जग भी जाता है। लीलाधर के इन्कार करने पर याचक का स्वाभिमान फुरफुरा कर जाग्रत हो गया, जैसे सोते शेर को किसी ने ढेला मार दिया हो। क्रुद्ध क्षुब्ध याचक ने लीलाधर को आडे हाथो लेते हुए कहा—

"वाह रे अभिमानी श्रेष्ठिपुत्र ! तू किसके धन पर इतना इठलाता है ? हाथो मे रत्नजटित अँगूठियाँ तथा शरीर पर कीमती वस्त्र और आभूषण पहन कर तुझे अपने धनी होने का भ्रम हो गया है। तेरा अहकार मिथ्या है। तुझसे तो मैं लाख दर्जे अच्छा हूँ, क्योकि अपनी कमाई पर जीता हूँ और तू पिता के धन पर—पराये धन पर इठलाता है। क्या शास्त्र की इतनी सी मोटी बात भी नही जानता कि वयस्क होने पर जो पुत्र पिता की लक्ष्मी का उपभोग करता है, वह नराधम है, क्योकि पिता की लक्ष्मी माता के समान होती है। वणिक्पुत्र होकर भी तूने अपने हाथ से एक भी धेले का उपार्जन नही किया। दिये हुए धन से तो कोई भी धनी बन सकता है, पर सच्चा धनी तो वही है जो अपने दो हाथो से धन कमाता है। मैं तो तेरे झूठे ऐश्वर्य को और तेरे धनी होने के मिथ्या अहकार को धिक्-धिक् ही कहूँगा।"

सच्ची बात की चोट हथौडे की तरह लगती है। मूर्ख प्राणी सच्ची-सही बात सुनकर क्रुद्ध हो जाते है, पर ज्ञानी और विवेकी अपने भीतर झाँकने लगते हैं और कुछ नसीहत भी लेते हैं। लीलाधर विवेकवान् था। यद्यपि याचक की उपर्युक्त बाते चुभने वाली थी, फिर भी लीलाधर को क्रोध नही आया। बल्कि उसने नम्र होकर याचक से कहा—

हे याचक ! तुमने मेरी आँखें खोल दी। तुम मेरे गुरु हो, मेरे मार्गदर्शक हो। वास्तव मे मैं भूला हुआ था। अब तो मेरा इतना अधिकार भी नही कि पिता के धन मे से किसी को दान करूँ। अपनी कमाई का धन दान करने से ही दातार की शोभा है।

"याचक ! तुमने ठीक ही कहा है। पिता का धन मेरी

कमाई नही। मैं अब अपनी कमाई करके ही धन कमाऊँगा। विदेश जाने से ही कर्म-परीक्षा होती है। अब मै निश्चय ही विदेश-यात्रा करके धन कमाकर लौटूंगा। तुम्हारे मार्गदर्शन के लिए मै ऋणी रहूँगा और विदेश से लौटने के बाद तुम से फिर कभी भेट हुई तो तुम्हे धन देकर सम्मानित करूँगा।"

याचक अपने रास्ते चला गया और लीलाधर अनमना-सा होकर एक टूटी-सी खाट पर जा लेटा। पुत्र को इस अवस्था मे लेटे देखकर सेठ धनद बहुत चकराया और साथ ही घबराया भी। उसने तुरन्त ही पूछा—

"वत्स लीलाधर ! क्या हुआ ? इतने उदास क्यो हो ? अगर तबीयत खराब है तो ऊपर कमरे मे लेटते। यहाँ टूटी खाट पर क्यो पडे हो ? चलो उठो।"

लीलाधर ने कहा—

"पिताजी ! मुझे कोई कष्ट नही है। आपकी उस सुकोमल फेन-सी शय्या पर मेरा अब कोई अधिकार नही। ये कपडे और यह जेवर सब पराए है।"

सेठ धनद की समझ मे कुछ नही आया। पता नही यह लीलाधर क्या बे सिर-पैर की बातें कहे जा रहा है ? उसने पुन पूछा—

"बेटा ! पहेली मत बुझाओ। जो भी बात हो, साफ-साफ कह डालो।"

लीलाधर ने साफ-साफ ही कहा—

"तो सुनिये पिताजी ! मैं अब यहाँ नहीं रहूँगा। कल ही विदेश-यात्रा के लिए प्रस्थान करूँगा। अपने पुरुषार्थ और भाग्य

के सहयोग से जो भी कमाऊँगा, वह मेरा धन होगा। मैं अब आपकी कमाई पर गुलछर्रे उडाना नही चाहता।

पुत्र के इस निश्चय से सेठ धनद को एक धक्का-सा लगा। उसको समझाते हुए बोले—

"बेटा ! यह धन तो अधिकारपूर्वक तेरा ही है। तू मेरा इकलौता बेटा है। तेरा कोई दूसरा भाई भी तो नही, जो इस धन का हिस्सेदार बने। लोक और शास्त्र दोनो की, यही नीति है कि पिता का धन पुत्र को ही मिलता है।"

लीलाधर ने बात पकडी—

"पिताजी ! आपने ठीक कहा—पिता का धन पुत्र को ही मिलता है। पुत्र का होता है और पुत्र को मिलता है, इसमे बडा भेद है। पुत्र पिता के धन का उत्तराधिकारी होता है, सहभोगी नही। पिता के बाद विरासत मे वह धन पुत्र का ही होगा, पर पिता के जीतेजी समर्थ पुत्र को बैठकर नही खाना चाहिए। मैं सब तरह से योग्य हूँ। व्यापार नीति जानता हूँ। वाणिज्य-विद्या भी पढा हूँ और विदेश जाकर व्यापार भी कर सकता हूँ। फिर क्यो न बाहर जाकर धन कमाऊँ ? वैसे भी निठल्ले होकर खाना पाप है। इसलिए मैंने व्यापार-निमित्त विदेश जाने का निश्चय किया है।"

पुत्र लीलाधर की युक्तियुक्त बात सुनकर सेठ धनद निरुत्तर हो गया, पर असफल नही हुआ। उसने दूसरे तर्क से लीलाधर को विदेश जाने से रोकना चाहा और कहा—

"लीलाधर ! तुम्हारी बात ठीक है। मूषक का बच्चा तो बिल ही खोदेगा। बनिये का बेटा भी व्यापार करेगा। तुम्हे भी

करना चाहिए। लेकिन हर काम का समय होता है। अभी-अभी तुम्हारा विवाह हुआ है। अभी तो वहू के हाथो की मेहदी भी नही छूटी और तुम उसे छोडकर विदेश जाना चाहते हो। मैं विदेश जाने के लिए नही रोकता, पर अभी मत जाओ। अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है? अभी तो खाने-खेलने के दिन हैं।"

लीलाधर ने सेठ की इस वात को भी उसी की वात से काटा—

"पिताजी! यह भी आप ठीक कहते है कि हर काम का समय होता है। जव मैं सयाना हो गया, मुझे तभी विदेश चले जाना चाहिए था। लेकिन कुछ देर हो गई। मैं अपने दायित्व को भूला रहा। जव भी भूल सामने आये, उसे उसी समय सुधारना ठीक होता है। अत भूल सुधारने का यही समय है कि मैं विदेश जाऊँ। मैं असमय मे विदेश नही जा रहा, उपयुक्त समय पर ही जा रहा हूँ।"

धनद ने दूसरी वात कही—

'पुत्र! तुम्हे परदेश के सकटो का अहसास नही। विदेश मे न जाने क्या सकट आ जाए। तूफान, विपरीत पवन आदि अनेक उपद्रव हैं। जानवूझकर सकटो को दावत देना तो वुद्धिमानी नही है। तुम्हे घर पर रहने मे ही सुख मिलेगा।"

लीलाधर अपनी वात पर अडा था। अत उसने यह वात भी काटी—

"पिताजी! सुख-दुख घर-वाहर का ध्यान नही रखते। वे तो कर्मो का फल होते है। जहां प्राणी रहता है, वही उसे सुख-दुख मिलते हैं। अगर भाग्य मे कष्ट है तो घर पर भी आयेंगे

और यदि सुखो का योग है तो घर से बाहर भी सुख-ही-सुख है—जगल मे भी मगल है।

"पिताजी! परदेश मे ही मनुष्य की कर्म-परीक्षा होती है। विदेश जाने से ही अनुभव बढता है। यात्रा से ऐसे-ऐसे नये व्यक्तियो का सम्पर्क-लाभ मिलता है, जो घर पर नही मिलता।

"मैंने हर मूल्य पर विदेश जाने का निश्चय कर लिया है। मैं विदेश अवश्य जाऊँगा।"

लीलाधर दृढ प्रतिज्ञ और साहसी था। उसका निश्चय अटल था। धनद किसी भी युक्ति से लीलाधर को घर पर रोकने के लिए राजी न कर सका। लीलावती के प्रयत्न भी विफल हुए। वह भी उसे अपने प्रेम जाल मे न फांस पायी। उसकी मनुहारें अरण्यरोदन सिद्ध हुईं। अन्तत महामन्त्री सुबुद्धि के कानो मे भी लीलाधर के विदेश-गमन के निश्चय की बात पडी। अपनी पुत्री के वियोग दुख का ख्याल करके वह भी हर कीमत पर जामाता लीलाधर को रोकना चाहता था। सुबुद्धि आखिरकार सुबुद्धि था। जो काम शक्ति से नही होते, वे युक्ति से हो जाते हैं। सेठ धनद और पुत्री लीलावती की असफलता वह देख चुका था। अतः सुबुद्धि ने सोचा विरोध करके तो जामाता को रोका नही जा सकता, समर्थन करके रोका जा सकता है। अत उसने एक योजना बना ली और राज्य के कुछ ज्योतिषियो को सिखा-पढा दिया। यथासमय मन्त्री सुबुद्धि ने जामाता लीलाधर से कहा—

"वत्स! तुम व्यापार के लिए विदेश जाना चाहते हो, यह तो बहुत अच्छा विचार है। तुम्हारे इस शुभ सकल्प का मैं अनुमोदन करता हूँ। लेकिन कोई भी यात्रा शुभ समय मे ही

करनी चाहिए। अत मैं ज्योतिषियो को बुलाकर यात्रा का मुहूर्त निकलवाये देता हूँ।"

लीलाधर को श्वसुर की सलाह पसन्द आई। उसके श्वसुर मन्त्री सुबुद्धि ने ज्योतिषियो को बुलवाया। उन्होने लीलाधर की राशि के अनुसार कारण, योग, भद्रा, नक्षत्र आदि पचागो का मिलान कर मुहूर्त निकाला—

"अभी तो छह महीने तक घर से बाहर जाने का कोई शुभ योग नही है। हाँ, जमाई जी जल्दी ही जाना चाहें तो एक काम करें। जैसे ही सुबह मुर्गा बोले प्रस्थान कर दे।"

ज्योतिषियो के इस मुहूर्त-निश्चय मे मन्त्री की चाल थी। लेकिन चाल इस तरह से चली गई थी कि लीलाधर को कोई सन्देह नही हुआ। छह महीने तक वह भला कैसे रुक सकता था। अत दूसरे दिन मुर्गे की आवाज के साथ ही प्रस्थान करने का निश्चय कर लिया। इधर मन्त्री ने नगर के सभी मुर्गे नगर से बाहर निकलवा दिये। पोतनपुर मे कही भी मुर्गा दिखाई नही दिया। लीलाधर रात को सजग-सावधान रहा। लेकिन कोई मुर्गा होता तो बोलता। लीलाधर को रुक जाना पडा। उसे मन्त्री की इस चाल का क्या पता था? अत उसने विचार किया—

'आज न सही, कल सही। आज मुर्गा नही बोला तो कल तो बोलेगा ही। दैव की इच्छा का भी विरोध नही करना चाहिए। जब दैव की इच्छा होगी, तभी मुर्गा बोलेगा। यदि दैव की इच्छा न होती तो क्या पोतनपुर नगर के सभी मुर्गे गूँगे हो जाते?'

लीलाधर हर रात चौकन्ना होकर सोता, पर किसी भी दिन मुर्गा नही बोला। इसी तरह कई दिन बीत गये। मन्त्री सुबुद्धि को

अपनी सफलता पर गर्व था। लीलावती भी प्रसन्न थी। पिता-पुत्री दोनों को यही भरोसा और विश्वास था कि लीलाधर अब विदेश जाने का निश्चय भूल जायेगा और इसी तरह कुछ ही दिनों में मुर्गे की आवाज की प्रतीक्षा करना छोड़ देगा। लेकिन दैव से ज्यादा चालबाज कौन है? उसने आज तक किसी की युक्ति नहीं चलने दी। मनुष्य भी वही युक्ति चलाता है, जो दैव चाहता है। मन्त्री सुबुद्धि की सब योजना दैव इच्छा से प्रभावित ही थी।

× × ×

सिंहल के राजा को युद्ध में परास्त कर शिवकुमार नट की मण्डली सिंहल से प्रस्थान कर पोतनपुर की ओर रवाना हो चुकी थी। यथासमय नटमण्डली पोतनपुर नगर आ पहुँची। पिंजरे के पंछी राजा चन्द्र के वही ठाट थे। कुक्कुटराज की जय बोलते हुए नटमण्डली पोतनपुर की सीमा में पहुँच गई। सात हजार सैनिक और उन सैनिकों के नायक सातों राजा—नगर के बाहर ही ठहर गये। पोतनपुर-नरेश राजा जयसिंह की आज्ञा से शिव-कुमार ने नगर में डेरे डाले। मुर्गे के रूप में राजा चन्द्र को देखकर नगर निवासियों ने नटनायक शिवकुमार से कहा—

"आप इस मुर्गे को कहीं बाहर छिपाकर ही रखिये। मन्त्री की आज्ञा से नगर के सभी मुर्गे बाहर भिजवा दिये गये हैं। मुर्गे की आवाज सुनते ही मन्त्री के जमाई लीलाधर विदेश के लिए चले जायेंगे। इसीलिए ऐसा किया गया है। अगर तुम्हारे मुर्गे ने आवाज दे दी तो बड़ा भारी अनर्थ हो जायेगा।"

नगर-निवासियों की बात राजा चन्द्र ने भी सुनी। उन्होंने मौन रहने का निश्चय कर लिया। राजा चन्द्र का मनोभाव

समझ कर शिवकुमार नट ने भी नगरवासियो को आश्वासन दिया—

"हमारे ये कुक्कुटराज साधारण पक्षी नही हैं। वे भी यह नही चाहते कि लीलावती को पति का वियोग सहना पडे अत वे मौन ही रहेगे।"

दैव इच्छा से राजा चन्द्र लीलावती का प्रसग भूल गये और सुबह होने की सूचना देने के निमित्त वे सहज भाव से ही कुकड़ूकूं बोल उठे। उनके ये शब्द लीलाधर को अमृत के समान लगे और वह तुरन्त विदेश के लिए रवाना हो गया। लीलावती के तो प्राणो पर ही आ बनी। मुर्गे के जो शब्द लीलाधर को अमृत के समान लगे थे। वही लीलावती को विष के समान लगे। एक ही चीज किसी के लिए आनन्द की वर्षा करती है तो दूसरे के प्राण ही हर लेती है। सूर्योदय से जहाँ कमल विकसित होते हैं वहाँ कुमुदिनी मुरझा जाती है। लीलाधर चला गया, उसका दुख तो लीलावती को था ही, मुर्गा तो उसे काल ही लगने लगा। अगर उसे अभी वह हृदय विदारक मुर्गा मिल जाता तो उसे जिन्दा न छोडती। वह मन ही-मन सोच रही थी—'आज किसने मुझसे किसी पुराने वैर का बदला लिया है? किसका इतना साहस है, जिसने मेरे पिता की आज्ञा के विरुद्ध नगर मे मुर्गा रखा? लगता है, इस मुर्गे की मेरी पिछले जन्म की शत्रुता होगी।' सोचते-सोचते लीलावती शोक और क्रोध मे व्याकुल हो उठी। उसने अपने पिता मन्त्री सुबुद्धि से कहा—

"पिताजी! आप वह मुर्गा खोज कर मेरे पास ले आइए, जिसकी बोली ने मेरे स्वामी मुझसे अलग किये है।"

मन्त्री ने खोजबीन की तो शिवकुमार नट के डेरों मे मुर्गा मिल गया। उसने पुत्री लीलावती से कहा—

"बेटी! वह मुर्गा तुम्हारे क्रोध का पात्र नही है। हमारे नगर मे जो नटमण्डली ठहरी हुई है, उन्ही के पास वह मुर्गा है। वे बेचारे कल ही हमारे नगर मे आये हैं। उन्हे कुछ पता न था फिर मुर्गा तो बेचारा पक्षी है, उसे इतनी समझ कहाँ कि कब बोलना चाहिए, कब नही बोलना चाहिए?"

लीलावती ने कहा—

"पिताजी! कुछ भी हो वह मुर्गा मेरा शत्रु है। उसी ने हो मेरे स्वामी को विदेश भेजा है। एक बार मैं उस बैरी मुर्गे को देखना चाहती हूँ। आप नटो से वह मुर्गा लाकर मुझे दीजिए।"

मन्त्री ने अपनी पुत्री लीलावती को समझाया—

"बेटी! वह मुर्गा तुम्हे नही मिल सकता। नट लोग परदेशी हैं। हम उनसे मुर्गा कैसे माँग सकते हैं? नट वैसे भी बहुत झगडालू होते हैं। दूसरे उस मुर्गे से उनकी जीविका चलती है। वे मुर्गा हमे हरगिज नही देंगे।"

लीलावती ने अपना हठ नही छोडा और मुर्गा न मिलने तक अन्न-जल का त्याग कर दिया। आखिर मन्त्री को मुर्गा लेने नटो के पास जाना ही पडा। मन्त्री ने अपनी शक्ति को तोलते हुए नट शिवकुमार से कहा—

"नटराज! तुम्हारा यह मुर्गा मेरी पुत्री लीलावती का अपराधी है। अत यह मुर्गा हमे सौंप दो। जब तक आप यह मुर्गा हमे न देंगे, तब तक मेरी बेटी अन्न-जल ग्रहण नही करेगी। अत यह मुर्गा तुम्हे देना ही पडेगा।"

शिवकुमार ने भी ईंट का जवाब पत्थर से दिया—

"महामन्त्री ! यह मुर्गा हमारा राजा है। हम सब इसके सेवक हैं। इसके इशारे पर ही यहां खून की नदियां बह सकती हैं। आपको विश्वास न हो तो सिंहल के राजा से पूछ लो, इस मुर्गे के पीछे उनकी सेना की क्या गति हुई थी। प्राण रहते हम इनका बाल भी बांका नहीं होने देंगे। हम लोग पांच सौ नट, सात मुकुटधारी राजा और सात हजार सैनिक इसकी रक्षा के लिए सदा तत्पर रहते हैं। नगर के बाहर इनकी रक्षा के निमित्त सात हजार सैनिक और सात राजा पडाव डाले पडे हैं। बस, उन्हें खबर करने की ही देर है। इसलिए उस मुर्गे को पाने का विचार आप मन से निकाल दीजिए।"

नटो की ऐसी बातें सुनकर मन्त्री बहुत चकित हुआ। अत वह उल्टे पैरो लौट आया और अपनी पुत्री को समझाते हुए कहा—

"बेटी ! जो होना था, सो हो चुका। भले ही तुम मुर्गे को जान से मार दो, पर लीलाधर तो अब जा ही चुका है। वह तो अपना कार्य पूरा करके ही लौटेगा। तुम्हारी तनिक-सी जिद के लिए नटो से युद्ध ठानना बहुत बडी मूर्खता होगी।"

लीलावती ने पुन कहा—

"पिताजी ! मैंने अन्न-जल ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा की है। अत प्रतिज्ञा-पूर्ति के लिए तो आपको एक बार वह मुर्गा लाना ही पडेगा। मैं उस मुर्गे का कुछ नहीं बिगाडूंगी और ज्यों-का-त्यों सुरक्षित लौटा दूंगी, पर एक बार उस मुर्गे को मेरे पास लाना जरूरी है।"

मन्त्री अपने पुत्र को लेकर पुन नटो के पास गया और नम्र होकर कहा—

"नटराज ! एक बार थोडी देर के लिए आप अपना मुर्गा हमे दे दीजिए। मैं उसे वापस कर दूंगा। आपके विश्वास के लिए मैं अपना पुत्र आपके पास छोडे जाता हूँ। जब मैं आपका मुर्गा लौटा दूं, तब आप मेरा बेटा मुझ सौंप दीजिए।"

मन्त्री की इस शर्त पर शिवकुमार नट ने मुर्गा दे दिया। कुक्कुट का मोहक रूप देखते ही लीलावती का क्रोध प्रेम मे बदल गया। उसने मुर्गा-रूप राजा चन्द्र को स्वर्ण पिंजरे से बाहर निकाला और अपनी गोद मे बैठाकर उस पर प्यार से हाथ फेरने लगी। फिर बोली—

"कुक्कुटराज ! मुझे तडफाकर तुम्हे क्या मिला ? अगर तुम न बोलते तो मुझे पति-वियोग का कठिन दुख न सहना पडता। क्या तुम्हारे हृदय मे दया नाम की की कोई चीज नहीं ? नट लोग तुम्हे अपना राजा मानते हैं। तुम तो हर तरह से सुखी हो तुम्हारे भाग्य से हर मनुष्य को ईर्ष्या होगी। लेकिन तुम बेचारे वियोग-व्यथा क्या जानो ? वियोगिनी की तडपन वियोगी ही जान सकता है। 'क्या जाने वह पीर पराई, जाके कबहुं न फटी बिवाई'। लेकिन कुक्कुटराज ! पक्षी भी तो अपने जीवन-साथी के वियोग मे दुखी होते है।"

लीलावती की बातें सुनते-सुनते राजा चन्द्र की आंखो से आँसू गिरने लगे और रोते-रोते वे मूर्च्छित होकर लीलावती की ही गोद मे लुढक गए। लीलावती घबरा गई। उसके हाथ-पाँव फूल गए। पराई अमानत, अब क्या होगा ? लेकिन उसने धीरज

मे मुर्गे का उपचार किया। मुर्गा सावधान हो गया। लीलावती फिर बोली—

"पक्षिराज ! मेरी वात का बुरा मान गये ? मैंने तो ऐसी कोई वात नहीं कही। लेकिन लगता है, भीतर से तुम भी दुखी हो। अगर तुम बोल पाते तो मैं तुम्हारी भी कुछ सुनती-समझती।"

राजा चन्द्र लीलावती की गोद से उतरे और पजे से धरती पर अपना जीवन भेद लिखकर बतलाया। उसे पढ कर तो लीलावती हर्ष, दुख और आश्चर्य से अभिभूत हो गई। कातर स्वर मे बोली—

"हाय वीरमती ! तूने यह क्या कर डाला ? तो तुम राजा चन्द्र हो ? मुझे क्या पता था कि तुम भाग्यवश आज पिंजरे के पछी वने हुए हो ? निश्चय ही एक दिन तुम नर-तन पाओगे। लेकिन तुम अपनी इस बहन को न भूल जाना। आज से तुम मेरे धर्म के भाई हो।"

राजा चन्द्र ने पुन लिखा—

'प्यारी वहिन लीलावती ! अपने वियोग की तुलना गुणावली के वियोग से करो। तुम्हारे स्वामी लीलाधर तो व्यापार के लिए गये हैं। विदेश जाना तो वणिकपुत्र का सहज धर्म है। वे तो देर-सवेर कभी-न-कभी लौट भी आयेंगे। लेकिन गुणावली को तो कोई आशा नही कि मैं पुन उससे मिल सकूंगा। उस के वियोग और मेरी विवशता को देखकर तुम धीरज रखो।"

लीलावती ने राजा चन्द्र को गोद मे उठा लिया और बोली—

"भाई चन्द्र ! तुम ठीक ही कहते हो। तुम्हारा दुख और भाभी गुणावली की पीडा बहुत भारी है। तुम्हारा पक्षी के रूप मे रहना,

नगर-नगर घूमना बडा ही पीडाप्रद है। लेकिन मेरा विश्वास अटल है कि एक दिन आभापुरी तुमसे जरूर सनाथ होगी। आपको मेरा भाई बनाने के लिए ही ऐसा सयोग बना कि आप इस रूप मे प्राप्त हो गये।"

उसके बाद लीलावती ने धर्म-भ्राता राजा चन्द्र को स्नान कराया। फल-मेवा खाने को दी और न चाहते हुए भी पिंजरे का पछी अपने पिता सुबुद्धि को सौप दिया। मन्त्री ने पिंजरे का पछी—राजा चन्द्र शिवकुमार नट को वापस कर दिया और अपना बेटा लेकर वापस आ गया।

नटमण्डली कुछ दिन तक पोतनपुर रही। अपने कौतुक दिखाये और पोतनपुर के राजा जयसिंह तथा मन्त्री सुबुद्धि आदि ने नटो को पुरस्कृत किया।

नटो ने पोतनपुर से प्रस्थान कर दिया और इसी तरह नगर-नगर तथा देश विदेश घूमते-ठहरते तथा खेल दिखाते हुए कीर्ति का विस्तार और धन का सग्रह करने लगे। मुर्गे के लिए उन्हे अनेक स्थानो पर सघर्ष भी करने पडे, पर हर बार जीत उन्ही की हुई। इसी प्रकार वे घूमते-फिरते सोरठ देश की राजधानी विमलापुरी पहुँच गये और राजा मकरध्वज की आज्ञा से नगर के उद्यान मे पडाव डाल दिया।

: ६ :

कुक्कुट रूप मे राजा चन्द्र ने उस स्थान को तुरन्त पहचान लिया, जहां आभापुरी का आम्र-वृक्ष आरोपित हुआ था। जिस आम्रवृक्ष के कोटर मे बैठकर वे विमलापुरी आये थे, वह वृक्ष यही स्थापित हुआ था। यही से वे वीरमती के पीछे-पीछे नगरी मे गये थे और नगरद्वार पर सिंहलपति राजा कनकरथ के आदमी ने उन्हे रोका था। राजा चन्द्र को हिंसक की बातें, प्रेमला साथ चौपड खेलना आदि सब स्मृतियां उनके सामने साकार-सी बनी थी। वे सोच रहे थे, जब मैं बार-बार बाहर जाने को होता था तो प्रेमलालच्छी छाया की तरह मेरे पीछे लगी हुई थी। पर जब हिंसक मन्त्री आ गया तो मौका देखकर मुझे भागना ही पडा। मेरे पीछे उस बेचारी का न जाने क्या हुआ होगा ? कोढी कनकध्वज ने ही उसे अपनी पत्नी बनाया होगा। लेकिन मेरा मन बार-बार यही कहता है कि प्रेमला उसके साथ सिंहलपुरी नही गयी होगी। वह तो यही होगी। लेकिन वह बेचारी मुझे क्या पहचानेगी ?"

सोचते-सोचते राजा चन्द्र की आंखें गीली हो गई। वे फिर विचारो मे खो गये—'विमाता वीरमती ने मेरे साथ कितना अच्छा किया कि मुझे पक्षी बना दिया, वरना फिर मैं दुबारा विमलापुरी क्यो कर आता ? चलो इस बहाने मे अपनी प्राण-प्रिया के पुन दर्शन तो कर लूंगा।"

इधर राजा चन्द्र अपनी सुखद स्मृतियो मे खोये थे और उधर नट शिवकुमार पछी का पिंजरा हाथ मे लिए राजा मकरध्वज के दरबार मे पहुँचा। राजा को भेट उपहार देकर नटनायक शिवकुमार ने अपना परिचय दिया और विमलापुरी मे अपने खेल दिखाने की आज्ञा माँगी। राजा मकरध्वज को क्या ऐतराज था ? उन्होने सहर्ष आज्ञा दे दी। आज्ञा प्राप्त कर नट लोग राजसभा के सामने प्रदर्शन-मच बनाने की तैयारी मे जुट गये। सबसे पहले उन्होने राजा चन्द्र के लिए सबसे ऊँचा आसन तैयार किया और फिर बांस-बल्ली गाडकर कौतुक भूमि को तैयार करने लगे।

प्रेमलालच्छी अपनी सखियो से घिरी बैठी थी। अचानक ही उसका बायां नेत्र फडकने लगा। इस शुभ शकुन से हर्षित होकर उसने अपनी सखियो से कहा—

"सखियो! आज मेरा बायां नेत्र बडी जोरो से फडक रहा है। कहते तो यही हैं कि स्त्री का बायां नेत्र फडके तो कोई हर्ष का समाचार मिलता है।"

एक सखी बोली—

"प्यारी सखी! अब को तुम्हारे प्रियतम ही तुम्हे मिलने वाले हैं। शकुन-अपशकुन अपना प्रभाव अवश्य दिखाते हैं।"

प्रेमला चौंकी, जैसे कोई बात याद आ गई हो। बोली—

"सखी! शासनदेव ने प्रकट होकर मुझे बताया था कि विवाह के दिन से सोलह वर्ष पूरे होने के बाद मुझे मेरे प्राणाधार मिलेंगे। अब तो सोलह वर्ष की अवधि भी लगभग पूरी ही हो चुकी। लगता है, तेरी ही बात सच हो। अगर ऐसा हो गया तो मैं तेरा मुह लड्डुओ से भर दूंगी।"

कहते-कहते प्रेमला उदास हो गई और पुन उसी सखी से बोली—

"सखी ! मेरे ऐसे भाग्य कहाँ, जो मेरे स्वामी इतनी आसानी से मुझे मिल जायें ? कहाँ विमलापुरी और कहाँ अठारह सौ योजन दूर आभापुरी। आज तक स्वामी का कोई समाचार भी नही मिला। भला वे अचानक यहाँ कैसे प्रकट हो सकते हैं ?"

सखी ने कहा—

"प्यारी सखी ! भाग्य पर भरोसा रखो। तुम्हारी बरात तो सिंहलपुरी से आई थी। फिर भी वे आभापुरी से अचानक प्रकट हुए थे और तुम्हे व्याह कर छोड गये। कब आये, कैसे आये, इसे कौन जाने ? वह भी तो एक चमत्कार था। क्या ऐसा चमत्कार फिर नही हो सकता कि वे अचानक ही प्रकट हो जायें ? भाग्य तो सदा चमत्कार ही दिखाता है।"

सखी की बातो से प्रेमला कुछ आश्वस्त हुई और उसने आशा का छोर पकड लिया। आशा सबको किनारे लगाती है।

आभापुरी से एक नटमण्डली आई है, यह खबर पूरी विमलापुरी मे फैल गई। नटो का कौतुक देखने दर्शको की भीड लग गई। मेरी ससुराल की नटमण्डली है, यह सुनकर प्रेमला बहुत हर्षित हुई। वह भी नटो का खेल देखने गई और माता-पिता के पास ही एक स्थान पर बैठ गई।

राजा चन्द्र पिंजरे मे बन्द थे और सबसे ऊँचे सिंहासन पर विराजमान थे। उनका वैभव भी राजा मकरध्वज से कम न था। सिर पर छत्र रखा था। चारो ओर अगरक्षक खडे थे और नट लोग कुक्कुटराज की जय-जयकार कर रहे थे। फिर यथाविधि कुक्कुटराज को अभिवादन कर नटनायक शिवकुमार ने राजा

चन्द्र ने खेल दिखाने की अनुमति ली और तरह-तरह के कौतुक दिखाये। सबके बाद नटकन्या शिवमाला ने भी हैरत में डालने वाले खेल दिखाकर सबको चमत्कृत किया। खेल समाप्ति के अनन्तर राजा मकरध्वज ने नटों को पुरस्कृत किया तथा अन्य दर्शकों ने भी पुरस्कार दिया।

प्रेमला बराबर कुक्कुटरूपी राजा चन्द्र को ही देख रही थी। किसी अज्ञात कारण से वह मुर्गे की ओर बहुत आकर्षित हुई। उसका मन हुआ कि किसी तरह यह मुर्गा मुझे मिल जाय। एक एक बार जब एक योगिनी प्रेमला से मिली थी तो उसने प्रेमला को बताया था कि मैं बहुत दिनों तक आभापुरी में रही। राजा चन्द्र को भी देखा, पर उनकी विमाता ने उन्हें विद्याबल से मुर्गा बना दिया है। लेकिन आज प्रेमला सब बातें भूल चुकी थी। योगिनी की बात उसके स्मृति-पटल से उतर चुकी थी। वरना वह तो यही सोचती—यह मुर्गा कहीं मेरे पति राजा चन्द्र ही तो नहीं हैं। राजा चन्द्र भी टकटकी लगाकर प्रेमला को देख रहे थे। कुक्कुट-राज की उस टकटकी से प्रेमला और भी विभोर हो गई—सच हो है—प्रीति पुरातन लखी न जाई। दोनों ओर के इस प्रेम-अवलोकन में अन्तर था तो बस यही कि राजा चन्द्र प्रेमला को पहचान गये थे और प्रेमला अनजान थी।

राजा चन्द्र सोच रहे थे—अगर प्रेमला भी शिवमाला की तरह पक्षियों की बोली समझती तो मैं उससे कहता कि तू नटों से मुझे माँग ले। अब अगर भाग्य ही इसके मन में इच्छा जागृत करे तो यह मुझे माँग सकती है। क्या ही अच्छा हो कि मैं अपनी प्रियतमा के पास जाऊँ! पास होते हुए भी मैं कितना विवश हूँ कि उड़कर भी उसके पास नहीं जा सकता। पक्षी का

रूप मिला, पर वह भी पिंजरे के पछी का। पिंजरे का पंछी कितना विवश होता है।"

इधर प्रेमला सोच रही थी—'इस मुर्गे मे ऐसी क्या विशेषता है, जो नट इन्हे वार-वार प्रणाम करते हैं और अपने राजा का-सा सम्मान देते हैं।' राजा मकरध्वज भी मुर्गे की ओर वहुत आकर्षित हुए। इतना ही नही, नटो से कहकर उन्होंने पिंजरा अपने पास मँगाया और कुक्कुटराज को अपनी गोद मे बैठाकर प्यार करने लगे। तदनन्तर उन्होने नटनायक शिवकुमार से पूछा—

"नटनायक! इस मुर्गे का क्या रहस्य है? तुम इसे इतना मान-सम्मान क्यो देते हो?

नटो मे प्रश्न करने के वाद महाराज मकरध्वज ने मुर्गे का पिंजरा प्रेमला को दे दिया। अब प्रेमला आनन्दविभोर होकर मुर्गे को देखने लगी और अपनी गोद मे बैठाकर प्यार करने लगी। राजा का प्रश्न सुनकर नटनायक शिवकुमार ने कहा—

"राजन्! आभापुरी के राजा चन्द्र के यहाँ से यह मुर्गा हमने प्राप्त किया। यह मुर्गा उनके महलो मे रहा है। हम इसे राजा चन्द्र ही मानते है और इसे राजा का सा सम्मान देते है। लेकिन राजा चन्द्र को हमने नही देखा। उनकी विमाता ने उन्हे कहीं छिपा रखा है। यह मुर्गा हमे वहुत अच्छा लगा सो हमने इसे रानी वीरमती से माँग लिया।"

नट शिवकुमार तथा शिवमाला यह अच्छी तरह जानते थे कि राजा मकरध्वज राजा चन्द्र के श्वसुर हैं और प्रेमला उनकी पत्नी है। लेकिन वे सब रहस्य छिपाना चाहते थे। अत उन्होंने हेर-फेर करके कुछ-का-कुछ राजा मकरध्वज को वता दिया।

'यह मुर्गा मेरे स्वामी के घर का है', यह सोचकर प्रेमला की प्रीति मुर्गे पर और भी बढ गई। दैव की माया देखिये कि उसे योगिनी वाली बात अब भी याद नही आई। वरना तो वह जान ही जाती कि यह मेरे प्राणाधार राजा चन्द्र हैं। रानी वीरमती ने उन्ही को कुक्कुट बनाया था।

शिवकुमार नट ने आगे फिर कहा—

"महाराज ! यह मुर्गा वास्तव मे राजा ही है। सात हजार सैनिक और सात राजा इसकी सेवा-रक्षा के लिए सदा साथ रहते हैं। हम पांच सौ नट भी इसके लिए प्राण देते हैं। इस कुक्कुट के लिए हमे अनेक राजाओ से युद्ध भी करने पड़े हैं। इस मुर्गे पर राजा चन्द्र की रानी गुणावली बहुत प्यार करती थी। लेकिन उन्होने प्रसन्न होकर यह हमे दे दिया और हम इसे लेकर घूमते-घूमते यहाँ आ पहुँचे।

"अन्नदाता ! हम लोग बहुत घूमे है। अब तो ऐसी इच्छा है कि बरसात के चार महीने आपकी नगरी मे ही बितायें। हमने बहुत-से नगर देखे, पर विमलापुरी के समान शोभाशाली नगरी आभापुरी को छोडकर और कोई नही देखी।"

राजा मकरध्वज ने कहा—

"नटराज ! तुम्हारे यहाँ ठहरने से हमे भला क्या आपत्ति हो सकती है ? तुम आराम से चातुर्मास यही बिताओ। बल्कि तुम्हारे रहने से हम सबका मनोरंजन ही होगा। तुम्हें यहाँ किसी बात की असुविधा नहीं होगी जिस चीज की जरूरत हो, हमारे महामन्त्री सुबुद्धि से कहकर माँग लेना।"

नट लोगो ने चार महीने विमला पुरी मे बिताने का निश्चय कर लिया और कुक्कुटराज को लेकर अपने डेरे पर आ गये।

इधर कुक्कुटराज को देने के बाद प्रेमला बहुत उदास हो गई। उसने अपने पिता से कहा—

"पिताजी! किसी तरह नटो से यह मुर्गा मुझे ला दीजिए। यह मेरे स्वामी के घर का है, इसलिए मुझे बहुत अच्छा लगता है। ज्यादा नही तो जब तक नट लोग यहाँ रहे, तब तक के लिए ही इसे ला दीजिए।"

राजा मकरध्वज बोले—

"बेटी! मैं भी यही सोचता था कि नटो से यह मुर्गा तुम्हे दिला दूं। यह तुम्हारी ससुराल के घर का पक्षी है। इसके लालन-पालन मे तुम्हारा मन लग जायेगा। जब विधि ने तुम्हारी ससुराल के पक्षी से तुम्हारी भेट करा दी है तो वह तुम्हारे स्वामी राजा चन्द्र से भी तुम्हे अवश्य मिलायेगा।"

"बेटी, पहले मैं तुम्हारी बातो को गलत मानता था। सिंहलपुरी के दुष्टो की बातो मे आकर मै तुम्हे प्राणदण्ड भी दे बैठा। अब तो मुझे तुम्हारी ही बात सही लगती है।"

प्रेमला से बात करने के बाद राजा मकरध्वज ने नटो के मुखिया शिवकुमार को अपने पास बुलवाया और उससे कहा—

"नटनायक! तुम्हारे पास जो मुर्गा है, वह मेरी बेटी प्रेमला के पति के घर का है। जिस तरह राजा चन्द्र की प्रथम पत्नी गुणावली का इस पर अतिशय प्रेम है, उसी तरह मेरी बेटी प्रेमला की भी इस पर अत्यधिक प्रीति है। तुम यह मुर्गा उसे दे दो तो मैं तुम्हारा बडा आभारी रहूँगा।"

नट शिवकुमार ने राजा की मांग का उत्तर देते हुए कहा—

"अन्नदाता! यदि और कोई इस मुर्गे को मांगता तो हम इसे कदापि न देते। लेकिन मैं आपको यह मुर्गा एक शर्त पर दे

रखता हूँ। वह शर्त यह कि मेरी बेटी शिवमाला मुर्गे से पूछेगी कि वह आपके पास आने मे राजी है या नही। मेरी बेटी पक्षियो की भाषा समझती है। यदि मुर्गा ने स्वीकृति दे दी तो मैं सहर्ष यह मुर्गा आपकी बेटी के लिए आपको दे दूंगा, अन्यथा मजबूरी ही है। वह मुर्गा हमे प्राणो से भी ज्यादा प्यारा है।"

राजा मकरध्वज को आश्वासन देकर शिवकुमार अपने डेरे पर आ गया और सब बातें शिवमाला को बताई। शिवमाला ने कुक्कुटरूपी राजा चन्द्र से पूछा तो राजा चन्द्र ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। राजा की इस स्वीकृति से शिवमाला बहुत दुखी हुई। उसने रो-रोकर राजा चन्द्र से कहा—

"स्वामी! मुझसे आप क्यो रूठ गये? मुझे छोडकर आप प्रेमला के पास क्यो जाना चाहते है? स्वामी! मैंने तो सदा आपको प्राणो से भी अधिक चाहा। आपके कहने से मैंने वीरमती से रत्न-आभूषण नहीं मांगे, बल्कि आपको ही मांग लिया। क्या मेरी प्रीति का यही बदला है? आपके बिना मैं कैसे रहूंगी? मेरा आपका इतने दिनो का साथ है और आप क्षण-भर मे ही निर्मोही बन गये! आपकी इच्छा के विरुद्ध मैं आपको रोक भी नही सकती और अपनी इच्छा के कारण आपको दे भी नही सकती। मैं तो आपको अपने सिर का मुकुट समझकर सदा अपने सिर पर लिये-लिये घूमती रही। आखिर मुझमे ऐसी कौन-सी भूल हुई, जिसके कारण आप मुझे छोडकर जाना चाहते है?"

राजा चन्द्र ने कुक्कुट की बोली मे ही शिवमाला से कहा—

"शिवमाला! तू मुझे गलत क्यो समझ रही है? तेरा उपकार तो मैं जन्मभर नही भूलूंगा। तेरे कारण ही मेरे प्राण बच गये। अगर मेरी बात मानकर तू मुझे अपने साथ न लाती

तो वीरमती मुझे कब का मार देती। तुझमे बिछुडते समय मैं भी कम दु खी नही हूँ। दुर्जनो का मिलन जितना कष्टप्रद होता है, सज्जनो का वियोग उससे भी ज्यादा पीडामय होता है। पर क्या करूं? दैव की यही इच्छा है कि मैं प्रेमला के पास रहूँ। तेरे साथ रहकर मैं इतने दिन तक जीवित रह सका और प्रेमला के साथ रहकर मैं शायद अपने निज रूप को प्राप्त कर लूं, ऐसा मुझे विश्वास है। इसी विश्वास के कारण मैं उसके पास जाना चाहता हूँ। क्या तुम नही चाहती कि मेरा कक्कुट रूप समाप्त हो और मैं पुन अपने नर-रूप को प्राप्त करूँ? यह तुम्हे मैं बता ही चुका हूँ कि राजा मकरध्वज की पुत्री प्रेमला के साथ मेरा विवाह हुआ था। इस विवाह के कारण ही तो राजमाता वीरमती ने मुझे पिंजरे का पछी बनाया था।

"शिवमाला! मैं तुम्हारा ऋणी हूँ और ऋणी ही रहूँगा। इसलिए जहाँ भी रखोगी, मैं वही रहूँगा। यदि तुम प्रसन्नतापूर्वक मुझे देना चाहो तो प्रेमला को दे दो। तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध मैं भी वहाँ जाना नही चाहूगा।"

शिवमाला रोते-रोते ही बोली—

"स्वामी! मैं आपको देने को सहर्ष तैयार हूँ। लेकिन वियोग की, विछोह की पीडा से मेरा हृदय फटा जा रहा है। फिर भी मुझे सन्तोष है कि चार महीने हम लोग भी विमलापुरी ही रहेंगे। मैं भी प्रेमला के पास जाकर आपके दर्शन कर आया करूँगी। आप प्रेमला के प्राणाधार हैं, यह रहस्य जानते हुए भी मैं भावावेग मे भूल गई थी। इसलिए आपको उपालम्भ दिये। मुझे तो इस बात से और भी खुशी है कि मेरे कारण आप अपनी प्राणवल्लभा से मिलेंगे। आज मेरी सब सेवाएँ और सब श्रम सार्थक हो गया।"

इधर राजा मकरध्वज शिवकुमार के निर्णय की प्रतीक्षा कर रहे थे। लेकिन प्रतीक्षा करते-करते वे इतने अधीर हो गये कि स्वयं नटो के डेरो पर पहुँच गये। शिवकुमार ने उनका बहुत सम्मान किया और कुक्कुटरूपी राजा चन्द्र का पिंजरा उन्हे सौप दिया। पिंजरा सौपते समय नट शिवकुमार ने रहस्यमयी भाषा मे राजा मकरध्वज से कहा—

"राजन्! आप इसे केवल मुर्गा ही न समझे, बल्कि आभापति राजा चन्द्र ही समझे। हम आज तक इन्हे राजा चन्द्र ही मानते और समझते आये है। मुझे ऐसा लगता है कि इस मुर्गे से आपकी बेटी की समस्त आशाएँ पूरी होगी।"

मुर्गे का पिंजरा लेकर राजा महल को लौट आये और पिंजरा प्रेमला को सौप दिया। कुक्कुट को पाकर प्रेमला बहुत आनन्दित हुई। पिंजरा लेते समय भी उसकी बायी आँख बार-बार फड़क रही थी। प्रेम-विभोर होकर प्रेमला ने कुक्कुट को पिंजरे से बाहर निकाल लिया और बड़े प्रेम से अपनी गोद मे बैठा लिया। प्राणप्रिया के सुखद स्पर्श से राजा चन्द्र भी रोमांचित हो उठे। मुर्गे को गोद मे बैठाकर प्रेमला उससे बातें करने लगी—

"अरे कुक्कुट! तू तो मेरे स्वामी के घर का है। तू मेरी बड़ी बहिन—मेरे स्वामी की प्रथम प्रियतमा के हाथ मे मेवा मिष्टान्न खाता होगा। अब मेरे हाथ से भी खाना। मैं भी तो तेरे स्वामी राजा चन्द्र के चरणो की दासी हूँ। वे तो ऐसे निष्ठुर निकले कि आज तक उन्होने मेरी खबर भी नहीं ली। अवश्य ही मैने उनका कोई अपराध किया होगा, तभी तो वे मुझे एक कोढ़ी को सौंपकर चले गये। लेकिन अगर उन्हे छोड़ना ही था तो मेरा हाथ ही क्यो पकड़ा था? लेकिन मैं तो उन्हे दोष नहीं

समझती। वे मुझे अबला जानकर हाथ छुड़ाकर चले गये, लेकिन मैं तो उन्हें वीर तब मानती, जब वे मेरे हृदय से भी चले जाते। अब तो मैंने उन्हें अपने हृदय मे कैद कर लिया है और वे अब भाग नही सकते।

"कुक्कुटराज! तू उन्ही के घर का पक्षी है, इसलिए मैं तुझसे उनकी शिकायत कर रही हूँ। शिकायत क्या मुझे तो तू बहुत ही प्रिय है। तुझे पाकर ऐसा लगता है कि मैं अपने स्वामी को ही पा गई हूँ। लेकिन तू अब मुझे छोड़कर मत जाना।

राजा चन्द्र प्रेमला की प्रीति देखकर बड़े ही पुलकित हो रहे थे, पर अपनी विवशता पर दुखी भी बहुत हुए। उनका मन हुआ कि पंजे से लिखकर सब बातें प्रेमला को बताऊँ। लेकिन वे यह सोचकर विचार बदल बैठे कि इससे प्रेमला को और भी दुख होगा।

जिस समय प्रेमला कुक्कुट से बातें कर रही थी, उसी समय शिवमाला भी वहाँ आ पहुँची। उसने भी कुक्कुट को अपनी गोद मे बिठाया और रहस्यपूर्ण ढंग मे प्रेमला से बोली—

'आपको यह पक्षी बहुत प्रिय है। आपकी ससुराल का है न, इसीलिए आप इसी से चिपटी रहती हैं। प्रिय के संसर्ग में आने वाली हर वस्तु प्रिय के समान ही प्रिय होती है। प्रिय के मुख, कपोल और केशों का स्पर्श करने वाले करचीर (रुमाल) को पाकर भी प्रिया धन्य हो उठती है।

राजकुमारी जी! चार महीने तक हम लोग आपकी नगरी मे रहेंगे। तब तक आप इस पक्षी को अपने पास रखिये। यदि इस अवधि तक आपका कार्य सिद्ध हो जाय—आपका अभीप्सित पूर्ण हो जाय तो मैं इस कुक्कुट को आपके पास ही छोड़ जाऊँगी।

वरना जाते समय आप इसे हमे दे दीजिए। हमे भी यह बहुत प्यारा है। मुझे विश्वास है कि आपकी आशा इसी से पूरी होगी।"

इस प्रकार रहस्यपूर्ण संकेत देकर शिवमाला अपने डेरे पर चली गई। लेकिन भोली-भाली प्रेमला कुछ भी नही समझ पाई। वह मुर्गे को ही अपना सब कुछ समझती थी। रात को भी पिंजरा लेकर सोती और रात मे जब कभी उसकी आंख खुल जाती तो मुर्गे से ही बातें करते-करते सवेरा कर देती। एक दिन रात्रि के तीसरे प्रहर मे जब प्रेमला की नींद उचट गई तो कुक्कुटराज से कहने लगी—

"कुक्कुटराज! अभी-अभी मैंने स्वप्न मे अपने स्वामी को देखा था। वे कह रहे थे, प्यारी प्रेमला! मैं तो हर समय तेरे ही पास रहता हूँ। लेकिन तू मुझे पहचान नही पाती।' पर यह तो सपना था, सपने भी कहीं सच होते हैं? सपने की मिठाई से किसका पेट भरा है?

"कुक्कुटराज! तुम्हारे आने से पहले मैंने कभी भी सपने मे अपने स्वामी को नही देखा। लेकिन जब से तुम आये हो, तब से कभी कभी सपने मे 'उन्हे' देख लेती हूँ। लेकिन आजकल तो नींद ही मेरी दुश्मन बन गई है। वह तो मेरे पास ही नही फटकती। जब नींद आती है तो सपना आता है और जब सपना आता है, तो वे मिल जाते हैं। लेकिन उनके वियोग मे न तो नींद आती है और न सपना ही आता है।"

वर्षा की सुहानी ऋतु थी। सूखे सरोवर पानी से भर गये थे। मानो पीड़ा के कारण किसी की आँखें भर आयी हों। हर समय बादल घिरे रहते थे। बिजली कड़कती थी, बादल गरजते थे और कभी मूसलाधार तथा कभी रिमझिम-रिमझिम पानी बरसता

था। प्यासी धरती अपनी प्यास बुझा रही थी और यह वर्षा विरहिणियो की कामाग्नि मे घी का काम कर रही थी। ज्यो-ज्यो पानी बरसता था, प्रेमला की प्रेम-प्यास और भी बढती जाती थी।

वर्षा बीतने के अनन्तर शरद ऋतु आई। न अधिक गरमी, न अधिक ठड। ऐसे सुन्दर समय मे प्रेमला की इच्छा पर्वत विहार की हुई। विमलापुरी सिद्धाचल पर्वत की तलहटी मे बनी थी। सिद्धाचल की पर्वतीय शोभा बडी आकर्षक थी। प्रेमला ने राजा मकरध्वज के सामने पर्वतश्री देखने की इच्छा प्रकट की तो उन्होने सहर्ष अनुमति दे दी और पर्वतारोही दल की व्यवस्था करके सब सुविधा-सामग्री तथा वाहनो सहित राजा मकरध्वज ने प्रेमला के जाने की व्यवस्था कर दी। प्रेमला अपनी सखियो को साथ लेकर तपोगिरि सिद्धाचल की यात्रा के लिए रवाना हो गई। 'पिंजरे का पछी' भी उसके साथ था।

यथासमय प्रेमला सिद्धाचल पर्वत पर पहुंची और एक स्थान पर पडाव डाल दिया। शरद् ऋतु मे पर्वत की शोभा और भी आकर्षक हो गई थी। ऊंची-ऊंची पर्वत की चोटियाँ मानो कह रही थी, इसी तरह सिर उठाकर जीना चाहिए। चोटियो पर जमी बर्फ सूर्य-किरणो से ऐसी चमक रही थी, जैसे किसी साधक का ललाट तपोतेज से चमकता है। पर्वतीय झरने बडे अच्छे लग रहे थे। ऐसा सुरम्य और एकान्त स्थान देखकर ही साधक लोग यहाँ ध्यानस्थ होते थे। अनेक मुनियो ने यहाँ सिद्धपद प्राप्त किया था, इसलिए यह पर्वत भाग्यशाली था।

सिद्धाचल पर्वत पर एक सरोवर बना था, जो निर्मल नीर से पूरित था। यह सरोवर सूर्यकुण्ड के नाम से जाना जाता था। एक दिन प्रेमलालच्छी कुक्कुटराज का पिंजरा लेकर सूर्यकुण्ड

की मनोरम छटा देखने गई। उसकी सखियाँ भी उसके साथ थी। प्रेमला ने कुक्कुटरूपी राजा चन्द्र को पिंजरे से बाहर निकाला और गोद मे बैठाकर उस पर प्यार भरा हाथ फेरने लगी और मधुर स्मृतियो मे खो गई। इधर कुक्कुट रूपी राजा चन्द्र अपनी हीनता और परवशता पर विचार करने लगे—'मेरा जीना धिक्कार है। मैं मानव से पछी हो गया और दूसरो के सहारे जीवन बिता रहा हूँ। भाग्य ने पछी भी बनाया तो डाल का पछी नही बनाया। स्वच्छन्द विचरण करने वाले पछी मुझसे हजार गुना अच्छे है। मैं हमेशा पिंजरे मे कैद रहता हूँ। जब जिसकी इच्छा होती है, पिंजरे से बाहर निकाल देता है, वरना मैं हर समय कैद मे रहता हूँ। मेरा जीवन भी कोई जीवन है? गुणावली से शिवमाला के हाथो मे आया, शिवमाला से प्रेमला ने लिया और अब न जाने और किस-किस के हाथो मे जाना रहूँगा। आज सोलह वर्ष हो गए। जब अभी तक मुझे निज-रूप प्राप्त नही हुआ तो अब क्या होगा? कहा मेरी राजधानी आभापुरी, रानी गुणावली और मेरा मानव-शरीर और कहाँ यह कुक्कुट रूप? मुझे अब परोपजीवी बनकर जीने का कोई अधिकार नही। अब तो मरकर ही इस शरीर से छुटकारा मिल सकता है। मैं अब इस जीवन से ऊब गया, अब मैं जिन्दा नही रहूँगा।'

यह सोचते-सोचते कुक्कुट सूर्यकुण्ड मे कूद पड़ा। प्रेमला पहले ही स्मृतियो मे डूबी थी। उसे जो जब पता लगा, तब कुक्कुट पानी मे गोता मार रहा था। यह देखते ही प्रेमला [illegible] छटपटाई—

'हे कुक्कुटराज! तुमने यह क्या किया? क्या मेरे प्रेम की परीक्षा लेना चाहते थे? तो लो मैं भी तुम्हारे पीछे आई।"

यह कहकर प्रेमला भी सूर्यकुण्ड मे कूद पडी और कुक्कुट को पकडकर खींचने लगी। प्रेमला की इस खींचा-तानी मे कुक्कुट के पैर मे बँधा अभिमन्त्रित धागा प्रेमला के हाथ से टूट गया। वीरमती ने अभिमन्त्रित करके यह धागा राजा चन्द्र के पैर मे बांध दिया था, इससे वे मुर्गा बन गये थे। यदि यह धागा, पहले ही तोड दिया जाता तो राजा चन्द्र मुर्गे से मनुष्य बन सकते थे। लेकिन विधि का विधान सोलह वर्ष तक उन्हे मुर्गा के रूप मे रहने का था। अत अब तक न तो किसी का डोरे की ओर ध्यान ही गया और न कोई ऐसा सयोग ही बना कि डोरा टूट जाता। आज राजा चन्द्र का तिर्यंच योनि से उद्धार होना था, सो प्रेमला के हाथ से वह डोरा अनजाने मे ही टूट गया। डोरे के टूटते ही राजा चन्द्र अपने नर तन मे आ गये। उसी समय शासनदेवी ने राजा चन्द्र और प्रेमलालच्छी को बाहर निकाला तथा दोनो को आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो गई।

इधर प्रेमला की सब सखियां हाय-तोबा कर रही थी। वे न तो सूर्यकुण्ड मे ही कूद पा रही थी और न उनसे कुछ करते ही बन रहा था। लेकिन जब उन्होने प्रेमला के साथ राजा चन्द्र को खडे देखा तो आश्चर्यचकित रह गई।

थोडी ही देर पहले जो प्रेमला कुक्कुटरूपी राजा चन्द्र को गोद मे बैठाकर बातें कर रही थी, वही प्रेमला अब असली रूप मे राजा चन्द्र को देखकर शरमा रही थी। लज्जा से उसकी पलकें ऊपर नही उठ पा रही थी। राजा चन्द्र को देखते ही विवाह दिन का सम्पूर्ण दृश्य प्रेमला की आंखो के सामने घूम गया। उनका चौपड खेलना, समस्या-काव्य मे अपना परिचय बताना, गगाजल की प्रशसा करना तथा उसे छोडकर

जाना। आज वह जी भरकर उलाहने देना चाहती थी, पर प्रेमभरी लज्जा ने उसकी जीभ पर ताला डाल दिया था। सोलह वर्ष के बाद आज प्रेमला की आशाएँ पूरी हुई थी। आनन्दातिरेक मे प्रेमला विभोर हो रही थी। आज उसे योगिनी का वह कथन भी याद आ गया, जिसने उससे कहा था कि राजा चन्द्र को उनकी विमाता वीरमती ने मुर्गा बना दिया है। खडी खडी प्रेमला सोच रही थी—'मै योगिनी का कथन इतने दिनो कैसे भूली हुई थी? मुझे क्या पता कि मेरे स्वामी ही कुक्कुट बनकर मुझे सनाथ करने आये है। मैं तो उनसे अज्ञात रूप मे ही प्रेम करती थी और उन्हे अपनी सौत गुणावली गुणमाला का पालतू पक्षी ही समझकर आनन्द मानती थी।'

इधर राजा चन्द्र भी विभोर होकर कुछ नही कह पा रहे थे, मानो आज भी वे कुक्कुट रूप की तरह बोलने मे विवश हो।

राजा चन्द्र के प्रकट होने की चर्चा विमलापुरी भी पहुँच गई। सभी ने यही जाना कि सूर्यकुण्ड के प्रताप से ही उन्हे विचित्र रूप से मुक्ति मिली है। विमलापुरी राजा मकरध्वज के हर्ष का तो ओर-छोर ही न था। उन्होने उसी समय एक विशेष सभा का आयोजन किया। शिवकुमार की नटमण्डली के समस्त नट, शिवमाला तथा राजा चन्द्र की रक्षा मे रहे वाले सब राजाओ को आमन्त्रित किया और उन्हे यह हर्ष-समाचार सुनाया। सभी ने हर्ष मनाया। जिस तरह प्रेमला के विवाह के दिन सोलह वर्ष पूर्व विमलापुरी सजी थी, उसी तरह आज फिर विमलापुरी नववधू सी सज गई। मंगल गीतो और वाद्यो से वातावरण आनन्दमय हो गया। इसके अनन्तर राजा मकरध्वज, महामन्त्री सुबुद्धि तथा अन्य सभासद मिलकर [illegible]

वाहनो तथा सैन्य दल सहित राजा चन्द्र को लेने सिद्धाचल पर्वत पर गये। राजा चन्द्र और राजा मकरध्वज का स्नेह-मिलन हुआ। राजा चन्द्र के मोहक रूप को देखकर राजा मकरध्वज बहुत ही प्रसन्न हो रहे थे। शिवकुमार नट और शिवमाला भी वहाँ उपस्थित थे। राजा मकरध्वज ने नटनायक और नटपुत्री को सम्बोधित करते हुए कहा—

"ऐसा देव-स्वरूप जामाता मुझे आप लोगो के कारण ही मिला है, वरना मैं तो इन्हे पाकर भी खो चुका था। मै तो अपनी पुत्री को विषकन्या और कोढी राजकुमार कनकध्वज को ही अपना जामाता मानने लगा था। शिवकुमार की पुत्री शिवमाला, शिवकुमार नट, उनके साथी नट, सात हजार सैनिक, उनके स्वामी सातो राजा—मेरा रोम-रोम इन सबका आभारी है, इन सबकी बदौलत ही मुझे राजा चन्द्र की प्राप्ति हुई है।"

इसके बाद प्रेमला ने भी मुस्कराकर अपने पिता से कहा—

'पिताजी ! आप अपने जामाता को देखकर अच्छी तरह पहचान लीजिए कि विवाह-मण्डप मे मेरी इन्ही के साथ भाँवरें पडी थी या किसी और के साथ ?

"पिताजी ! इस ससार मे एक से एक सुन्दर पुरुष मौजूद हैं, पर आपके जामाता जैसा एक भी नही है। आपकी कृपा से आज मेरा कलक दूर हो गया।"

राजा मकरध्वज ने प्रेमला से कहा—

"बेटी ! तेरी पति-भक्ति भावी पीढियो के लिए आदर्श गाथा बनेगी। कविजन तेरी यशोगाथा लिखकर अपनी काव्य-प्रतिभा को सफल बनायेगे। वास्तव मे मैं बडा अपराधी हूँ। मैने तुम पर बहुत अत्याचार किये। सिहल का राजा कनकरथ और

मन्त्री हिसक की बातो मे आकर मैंने तुझे विषकन्या तक मान लिया। इतना ही नही, तुझे प्राणदण्ड भी दे बैठा। तूने मुझे पाप-कर्म से बचाकर मेरा बडा उपकार किया है। यहाँ से विमलापुरी पहुँचकर मै सिंहल के षड्यन्त्रकारियो को अवश्य ही मौत के हवाले करूंगा।"

इसके बाद उन्होने महामन्त्री सुबुद्धि को धन्यवाद दिया—

"महामन्त्री! आज जो शुभ दिन मैं देख रहा हू, इसका सब श्रेय आपको ही है। यदि मैं आपकी बात न मानता तो आज सिवा पछताने के मेरे हाथ मे कुछ न रहता। मैं अपनी पुत्री से भी हाथ धो बैठता और पाप-कर्मो का बन्ध भी करता। आपने ही मेरी पुत्री के प्राणो की रक्षा की है, आपने ही मुझे दुष्कर्म से बचाया है।"

राजा मकरध्वज अपने पिछले व्यवहार को याद करके बहुत दुखी होने लगे। तब प्रेमला ने उन्हे धीरज देते हुए कहा—

"पिताजी! आप बिलकुल दुखी मत होइए। कोई भी प्राणी जो भी सुख-दुख पाता है, वह अपने कर्मो के कारण ही पाता है। मैंने जो कुछ संकट पाये, वे सब अपने कृतकर्मों के परिणाम से पाये। आपको पिछली बातो पर तनिक भी ध्यान नहीं देना चाहिए। इस प्रकरण मे राजा सिंहरथ, मन्त्री हिंसक, कपिला धाय और कुमार कनकध्वज तो निमित्त मात्र ही हैं। सारा दोष तो मेरे कर्मो का ही है। आपके प्रताप से तो मुझे देवोपम उत्तम पति की प्राप्ति हुई है।"

कुछ देर मौन रहने के बाद प्रेमला ने पुनः कहना शुरू किया—

"पिताजी! अब तो आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि आप मुझ पर और इन राजाओं पर कृपा बनाए रखें। इसी

माता वीरमती तो इनके प्राणो की दुश्मन बनी हुई है। उनके रहते ये अभी आभापुरी नही लौट सकते। अत हम दोनो को यही अपनी छत्रछाया मे रखिये।"

प्रेमला की बात सुनने के बाद राजा मकरध्वज ने कहा—

"बेटी! यह भी कोई कहने की बात थी? तुम दोनो तो मेरी दो आँखें हो। तेरे कहने से पहले ही मैंने विमलापुरी और आभापुरी के बीच का प्रदेश इन्हे देने का निश्चय कर लिया है। इस सम्पूर्ण भूभाग के यही स्वामी हैं। तुम दोनो प्रसन्न रहो और अपने ऐश्वर्य तथा सुखो की वृद्धि करो, यही मेरा आशीर्वाद है।"

इस प्रकार कुछ दिनो तक पूरा राज-परिवार, सेना तथा सभासद सिद्धाचल पर्वत पर ही रहे। अब राजा चन्द्र के साथ राजा मकरध्वज ने विमलापुरी चलने का निश्चय किया। यथा-समय सब लोग पर्वत से नीचे उतरे और हर्ष वाद्यो की ध्वनि सहित विमलापुरी मे प्रवेश करने लगे। राजा चन्द्र एक विशाल-काय हाथी पर आरूढ थे। उनके सिर पर छत्र शोभायमान था तथा दोनो ओर से चँवर ढोरे जा रहे थे। राजा मकरध्वज दूसरे हाथी पर सवार थे। प्रेमला और उसकी माता रथ मे बैठी हुई थी। आगे-पीछे तथा दाएँ-बाएँ सेना चल रही थी। नट लोग भी गाते-बजाते जा रहे थे। राजा चन्द्र के अधीन सातो राजा अलग, अलग घोडो पर सवार थे। धीरे-धीरे राजसमाज नगरी के निकट पहुँच रहा था। विमलापुरी के भवनो पर लगी ध्वजाएँ फहरा-फहरा कर इनका स्वागत कर रही थी। राजसमाज राजमार्ग से होकर राजमहल के निकट पहुँच रहा था। विमलापुरी की जनता मार्ग के दोनो ओर खडी राजा चन्द्र की जय-जयकार कर रही थी। छतो और छज्जो पर नर नारियो की भीड ऊपर से पुष्प-

वर्षा कर रही थी। यथासमय राजसमाज राजमहल के पास पहुँचा। राजा मकरध्वज और राजा चन्द्र हाथी से नीचे उतरे और उन्होंने उसी समय याचकों को दान दिया। राजा चन्द्र ने शिवकुमार को इतना धन दिया कि उसकी हस्ती-हैसियत छोटे-मोटे एक राजा की सी हो गई। जो सात राजा उनके साथ रहते थे, राजा चन्द्र ने उन्हें भी सम्मानित किया और अपने समस्त उपकारियों के प्रति आभार प्रदर्शित किया। उन सातों को अपना मित्र घोषित कर उन्हें बराबर का स्थान प्रदान किया। राजमहल जगमगा रहा था और विमलापुरी के हर घर में त्योहार का-सा उत्सव मनाया जा रहा था।

राजा चन्द्र से विदा लेकर सातों राजा अपने-अपने सैन्य दलों सहित अपने अपने देशों को चले गये। शिवकुमार की मण्डली विमलापुरी में ही रह गई। सर्वत्र आनन्द का साम्राज्य था। प्रेमला का शरीर तो कंचुकी में ही नहीं समा रहा था।

राजा मकरध्वज ने एक दिन फिर विशेष दरबार का आयोजन किया। आज राजा मकरध्वज बहुत ही जोश में थे। उन्हीं के बराबर एक सिंहासन पर उनके जामाता राजा चन्द्र भी विराजमान थे। मन्त्री सुबुद्धि भी यथास्थान बैठे थे। सभा के बीच में गजानन भी बैठे थे। सभी सभासद उनके मुँह की ओर देख रहे थे। राजा मकरध्वज ने अपने सेवकों को आज्ञा दी कि सिंहल के बन्दियों को मेरे सामने उपस्थित करो। उनकी आज्ञा हुआ [illegible] सिंहलपुरी के राजा कनकध्वज, रानी कनकवती, मन्त्री हिंसक, कपिला दाई तथा [illegible]—पाँचों बन्दियों को उपस्थित किया गया। उनके [illegible] निर्णय का परिणाम [illegible] [illegible] पहुँची। [illegible] बन्दियों को देखकर [illegible]

मकरध्वज का पारा और भी ऊपर चढ गया उन्होने कठोर स्वर मे कहा—

"अरे दुष्टो ! तुम्हारे लिए तो यह अच्छी खासी दिल्लगी रही, पर तुमने मेरी बेटी का जीवन बरबाद करने मे कोई कसर नही छोडी। मुझे आज ही पता लगा कि षड्यन्त्रकारी तिल का ताड बना देते हैं। तुमने धोखे से कोढी कनकध्वज को मेरी बेटी का पति बनाना चाहा। इतना ही नही, मेरी बेटी को विषकन्या भी सिद्ध कर दिया। तुम पाँचो घोर अपराधी हो। अपराध की भी कोई सीमा होती है? लेकिन तुमने तो धूर्तता की सीमा ही तोड दी। आज तुम्हें अपने पापो का फल अवश्य मिलेगा। अब तुम पाँचो अपने इष्ट का स्मरण कर लो। मौत तुम्हारे सिर पर नाच रही है।"

इस प्रकार सिंहलवासियो को फटकारने के बाद विमलापति मकरध्वज ने पाँचो को वधिको के हाथो मे सौंप दिया। पाँचो अपराधी अपने पापो की गुरुता से इतने दबे हुए थे कि राजा मकरध्वज से प्राणो की भीख भी नही माँग सकते थे। राजा कनकरथ धीरे-धीरे मन्त्री हिंसक से कह रहे थे—

"अरे दुष्ट ! तेरे षड्यन्त्र का फल मुझे भी भोगना पड रहा है। मैंने तुझसे बार-बार कहा था कि किसी को धोखा देना ठीक नही। मेरे बार-बार मना करने पर भी तू नही माना। तूने ही राजकुमार को जन्म से ही तहखाने मे रखवाया और तूने ही यह अफवाह फैलाई कि कुमार कनकध्वज देवोपम रूपवान हैं। उन्हें नजर लग जायेगी, इसलिए उन्हे तहखाने मे रखा जाता है। तूने ही उनका विवाह पक्का किया। तेरे कारण हम चारो निरपराध मारे जा रहे हैं। लेकिन सारा दोष तो मेरा ही है। कुसग का

फल तो हरेक को मिलना है। गेहूँ के साथ घुन हमेशा से पिसता आया है।"

जब वधिक लोग पाँचों को वधस्थल की ओर ले जाने लगे तो उन्हें रोककर राजा चन्द्र ने अपने श्वसुर विमलापति मकरध्वज से प्रार्थना की—

"राजन्! इन पाँचों को अभयदान दीजिए। अभयदान सबसे बड़ा दान है। जो कुछ इन्होंने किया है, उनका फल तो ये स्वयं ही पायेंगे। कर्म करके फल पाने से कोई नहीं बचा। इन्हें प्राणदण्ड देकर आप क्यों पाप के भागी बनते हैं? अगर गहराई से विचार करें तो इन्होंने भी हमारे इन कर्मों से प्रेरित होकर ही षड्यन्त्र रचा था। मैंने या प्रेमला ने इनके द्वारा जो भी कष्ट पाया है, वह अपने ही इन कर्मों के कारण पाया है। ये सब तो निमित्त मात्र हैं। इन्होंने बुरा किया और

होकर किया है ये लोग कुमार कनकध्वज के मोह से प्रेरित होकर करणीय-अकरणीय भूल बैठे। इन्हे क्षमा कर दीजिए।"

राजा चन्द्र की युक्तियुक्त बातो से राजा मकरध्वज बहुत प्रभावित हुए। उन्होने तत्काल पाँचो को बन्धन मुक्त कर दिया। इसी समय प्रेमलालच्छी उठकर खडी हुई और सबको आश्चर्य-चकित करते हुए उसने प्राणपति राजा चन्द्र के चरण धोये तथा अजलि मे चरणोदक लेकर बोली—

यदि पति के चरणो मे मेरी सच्ची भक्ति हो, यदि मेरा मन आज तक पति चरणो मे उसी प्रकार लगा रहा हो, जैसे पतग डोरे मे लगी रहती है तो मेरे स्वामी के चरणामृत से सिंहल-कुमार कनकध्वज का कोढ तत्काल दूर हो जाए।"

यह कहते ही उसने अजली का जल कुमार कनकध्वज पर छिडक दिया। देखते-देखते कनकध्वज की काया कचन जैसी हो गई। उसका कोढ जादू की तरह गायब हो गया। सभी ने प्रेमला के सतीत्व और पतिभक्ति की सराहना की। उसी समय देवताओ ने भी पुष्प-वृष्टि की और राजा चन्द्र तथा रानी प्रेमला की जय-जयकार की। अपनी कचन काया देखकर कुमार कनकध्वज राजा चन्द्र के पैरो मे गिर पडा। सिंहलपति राजा कनकरथ ने भी राजा चन्द्र का अभिनन्दन किया। राजा मकरध्वज ने पाँचो सिंहलवासियो को अपना अतिथि माना और कई दिन तक स्वागत सत्कारपूर्वक अपने यहाँ रखा।

एक दिन सब लोग इकट्ठे थे। इधर-उधर की बातें हो रही थी। सभी के सामने राजा मकरध्वज ने राजा चन्द्र से पूछा—

"आपको पाकर मै इतना खुश हुआ कि मैं असली बात पूछना तो भूल ही गया। कई दिन यो ही बीत गये। आज ही

मुझे याद आया। आप यह तो बताइए कि प्रेमला के विवाह वाले दिन आप अठारह सौ योजन दूर आभापुरी से यहाँ कैसे और क्यों आये और उसी रात कैसे चले गये ? यह भी बताइए कि आपकी विमाता ने आपको पिंजरे का पंछी कैसे बनाया ?"

राजा चन्द्र कहने लगे—

"महाराज ! ये सब बातें आपको एक चमत्कार लगती होंगी, पर यह कोई चमत्कार नहीं है, क्योंकि दैव अथवा भाग्य जो न करे, वही थोड़ा है। मुझे प्रेमला मिलनी थी, इसलिए यह सब हो गया।"

"बात यह है कि मेरी माता चन्द्रावती और पिता राजा वीरसेन ने तो मुझे राजा बनाकर चारित्र ग्रहण कर लिया था और अब तो वे सिद्ध पद भी पा चुके। आभापुरी के राजपरिवार में हम तीन ही प्राणी हैं—विमाता वीरमती, मैं स्वयं तथा मेरी पत्नी रानी गुणावली। मेरी माता वीरमती को कुछ दिव्य विद्याएँ

राजा चन्द्रकुमार हूँ। सिंहलपति की कुलदेवी ने मेरी पहचान और आने का समय बता रखा था। ये लोग मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। राजा कनकरथ तथा मन्त्री हिंसक के दबाव, खुसामद तथा अपनी परिस्थिति का विचारकर मुझे उस दिन कनकध्वज बनकर प्रेमला के साथ विवाह करना पड़ा। उसके बाद रंगमहल मे चौपड खेलते समय मैंने प्रेमला को अपना परिचय संकेत के रूप मे दे दिया था। वचनबद्धता के कारण तथा मन्त्री हिंसक के बार-बार आग्रह के कारण मैं प्रेमला को छोडकर उसी आम्र-कोटर मे जा छिपा। यथासमय विवाहोत्सव देखकर वीरमती और गुणावली उस भी वृक्ष पर बैठकर गगनपथ से आभापुरी पहुँच गई।

"राजन्! दूसरे दिन राजमाता वीरमती को पता लग गया कि मैं उनका रहस्य जानता हूँ, अत विद्याबल से उसने मुझे मुर्गा बना दिया। उसने कई बार मुझे मारने की कोशिश की, पर गुणावली ने मुझे बचा लिया। एक बार शिवकुमार की नट-मण्डली आभापुरी मे आई। नटकन्या शिवमाला पक्षियो की भाषा समझती है। अतः मैंने अपनी मुर्गे की बोली मे उसे बताया कि वह रानी वीरमती से मुझे माँग ले। शिवमाला ने मुझे माँग लिया और घूमते-घूमते उसकी मण्डली के साथ यहाँ आ गया और आपके पुण्य-प्रताप से अब आपके सामने बैठा हूँ।"

समस्त वृतान्त सुनकर राजा मकरध्वज ने एक निःश्वास छोड़ा और इतना ही कहा—

"विधि के रहस्य विधान को कौन जान पाया है? भाग्य और कर्म लीला बड़ी विचित्र है।"

राजा चन्द्र एक अलग महल मे प्रेमला के साथ दाम्पत्य सुख भोग रहे थे। वे विमलापुरी के अतिथि थे—राज जामाता थे और साथ ही राजा मकरध्वज ने उन्हे आभापुरी तथा विमलापुरी के बीच के भूभाग का स्वतन्त्र अधिपति भी बना दिया था। इसके अलावा उन्हे अपना आधा राज्य भी दे दिया था। राजा चन्द्र [illegible] राजा भी थे। उनकी सेना, सभासद तथा [illegible] आदि [illegible] थे। उनका वैभव यहाँ भी आभापुरी से कुछ कम न था। उन्हे अनिन्द्य सुन्दरी प्रेमला जैसी पत्नी मिली थी। उनके पूर्व पापो का फल-भोग पूरा हो चुका था और अब पुण्यो का [illegible] था। वे प्रेमला को पाकर सुखी थे और प्रेमला [illegible] पाकर धन्य थी। दोनो का समय बड़े चैन से बीत रहा था।

: ७ :

राजा चन्द्र अपने शयन-कक्ष मे सो रहे थे। आधी रात बीतने के अनन्तर उनकी नीद उचट गयी। वे विचारो मे खो गए। उनका मन गुणावली के पास पहुँच गया। विचारो मे डूबे राजा चन्द्र सोचने लगे—

"मै अपनी प्यारी गुणावली को तो भूल ही गया। मैं तो यहाँ प्रेमला के साथ राजसुख भोग रहा हूँ, पर गुणावली के तो प्राणो पर ही बीत रही होगी। अब मुझे उसकी खबर लेनी चाहिए। उसका प्रेम और पतिभक्ति सराहनीय है। वह मुझे बहुत चाहती है। वह तो बेचारी इतनी भोली और सरल है कि वीरमती की बातो मे आ गई। लेकिन गुणावली का कपट मेरे लिए तो वरदान ही बन गया। उसी के कारण तो मैंने प्रेमला-लच्छी को पाया। उसी के कारण यहाँ राजसुख भोग रहा हूँ। मेरे मुर्गा बनने मे तो गुणावली का कोई दोष न था। यह तो वीरमती की ही दुष्टता थी। जब मै मुर्गा बन गया था तो वह बेचारी रात-दिन आँसू बहाया करती थी। मुझे वीरमती ने कई बार जान से मार देने की कोशिश की, गुणावली ने ही मुझे बचा लिया। उसकी प्रीति तो असंदिग्ध है। अब वह मेरे वियोग मे तडपती ही होगी, ऊपर से वीरमती का भय भी उसे सदा बना रहता होगा। अब तो मुझे उसकी खैर-खबर लेनी ही चाहिए।'

सोचते सोचते सवेरा हो गया। राजा चन्द्र नित्यकर्म से निवृत हुए और गुणावली को पत्र लिखने बैठ गए। पत्र

के बाद उन्होंने एक विश्वासी तथा साहसी सेवक को बुलाकर पत्र दिया और इस प्रकार समझाया—

"मेरा यह पत्र लेकर तुम आभापुरी चले जाओ। यह पत्र तुरन्त मेरे महामन्त्री सुमति को देना। वह इसे गुणावली के पास पहुँचा देगा। गुणावली अपना प्रतिपत्र तुम्हें देगी, उसे लेकर मेरे पास आना। तुम्हें इतनी सावधानी रखनी है कि तुम्हारा आना जाना और पत्रों का आदान-प्रदान वीरमती न जानने पाये। अवसर पाकर गुणावली से एकान्त में मिलना। मेरे कुशल-समाचार देना तथा उसके कुशल-समाचार भी पूछकर मुझे बताना।"

आ गया हूँ और तुम्हे यह पत्र लिख रहा हूँ। अब मैं शीघ्र ही तुम्हारी छोटी बहिन प्रेमलालच्छी को लेकर तुम्हारे पास आऊँगा। पहले की तरह मैं आभापुरी का राजा बनूंगा और तुम मेरी पटरानी बनोगी।"

"भाग्य के चमत्कार बडे विचित्र होते है। मैं शिवकुमार की नटमण्डली के साथ विमलापुरी आ गया था। प्रेमला ने शिवमाला से मुझे मांग लिया था और प्रेमला एक दिन मुझे सिद्धाचल पर्वत पर ले गई थी। सिद्धाचल पर एक सरोवर है, जिसे सूर्यकुण्ड कहते हैं। अपने कुक्कुट जीवन से ऊबकर मैं सूर्यकुण्ड मे कूद पडा और मुझे मनुष्यत्व प्राप्त हो गया। यहाँ के लोग तो यही कहते हैं कि यह सूर्यकुण्ड का चमत्कार है, पर मुझे तो अपने भाग्योदय का ही चमत्कार लगता है। किसी भी जल मे चमत्कार नही होता—सब चमत्कार कर्मों के ही होते है।

"प्रिये! मै सदा तुम्हारी याद करता रहता हूं। लेकिन मुझे तुम्हारी कणेर की वह छडी भी याद आती है, जिसके स्पर्श से तुमने मुझे निद्राधीन किया था और विमलापुरी लौटकर छडी द्वारा ही जगाया था। सास वीरमती की बातो मे आकर तुम अपना सहज गुण भी भूल गई? लेकिन स्त्रियो का स्वभाव ही ऐसा है? प्रकृति रूप से उनमे साहस, झूठ, चचलता, माया, अविवेक, अपवित्रता, और निर्दयता ये आठ अवगुण सदा रहते है। स्त्री का चरित्र तो देवता भी नही जान सकते। तुमने विमलापुरी से लौटकर अपने रात्रि-जागरण का जो कारण बताया था और मणिप्रभ विद्याधर की जो मनगढन्त कहानी सुनाई थी, उसे कोई भी सत्य मान सकता था अगर मैं तुम्हारे साथ बैठकर विमलापुरी न आया होता मैं भी उसे सत्य मान लेता।

"प्यारी ! मैं तो तन-मन धन से तुझसे प्रेम करता था। मुझे स्वप्न मे भी आशा नही थी कि तुम ऐसा करोगी। तुमने मुझसे सलाह तक न ली। अब वह सास क्या तुम्हे सदा सुख देती रहेगी, जिसकी बातो मे आकर तुमने मुझे धोखा दिया ?

"प्यारी गुणावली ! अन्त मे, मैं सब अपने कर्मो का ही दोष मानता हू। मैं तुमसे प्यार करता हूँ, इसलिए तुम्हे इतने उपालम्भ दिये। उपालम्भ अपनो को ही दिये जाते हैं। वीरमती तो मेरी विमाता है, उसने ऐसा किया तो कोई आश्चर्य नही।

"गुणावली ! अब ज्यादा क्या लिखूं ? अपने कुशल समाचार देना और पुरानी सब बातो को भूल जाना। अन्ततोगत्वा तो तुम मेरी प्राणेश्वरी ही हो, इसलिए तुम्हारे सब अपराध क्षम्य हैं। तुमने भी अपनी भूल का काफी पश्चात्ताप कर लिया है।

"प्रिये ! इस पत्र को सावधानी से पढना। अभी सब रहस्य वीरमती से छिपा कर रखना है। तुम्हारा प्रतिपत्र पाकर मैं शीघ्र ही यहाँ से चलने की तैयारी करूँगा।"

—स्नेहाधीन
चन्द्रकुमार

पत्र समाप्त करके गुणावली बहुत देर तक अपने किये पर पछताती रही। उसकी आँखो से झरझर आँसू गिरने लगे। सोचते-सोचते गुणावली के चेहरे पर एकदम मुस्कान बिखर गई। गुणावली मन-ही मन कहने लगी—जब स्वामी यहाँ आजायेंगे, तो मैं उनसे कहूँगी कि मेरे इस कपट के कारण ही तो उन्हें देव-कन्या जैसी रूपसी प्रेमलालच्छी मिल गई। गुणावली सँभलकर बैठ गई और राजा चन्द्र को पत्र लिखने लगी—

"मेरे जीवनधन ! मुझ घोर अपराधिनी का भयकरतम अपराध आपने क्षमा कर दिया और मैं धन्य हो गई। मेरे अपराध को देखते हुए, आपने जो कुछ कहा है, वह बहुत ही थोडा है। उस समय न जाने मेरी बुद्धि पर कैसे पत्थर पड गये थे कि मैं दुष्टा वीरमती की बातो मे आ गई ? यह सब मेरे पापो के उदय के कारण ही हुआ था कि मेरी मति मारी गई, सुमति का स्थान कुमति ने ले लिया।

"मेरे प्राणवल्लभ ! आप सागर के समान धीर-गम्भीर और विशाल हैं। मुझ जैसी अवगुणो की खान को यदि आप क्षमा न करेंगे तो कौन करेगा ? स्वामी ! आपके बिना मेरा एक-एक पल युगो के समान बीता है। जब आप पछी के रूप मे मेरे पास थे, तो किसी तरह वक्त कट जाता था, पर आपके पीछे तो रातें पहाड हो गई और दिन का ओर-छोर ही दिखाई नही देता था। आपकी याद मे रो-रो कर मैं अपने पापो को धोने का प्रयत्न करती रही और जब तक आप अपने शुभ दर्शन देकर मुझे कृतार्थ नही करेंगे, तब तक मैं रो-रोकर ही अपना कलक धोती रहूँगी।

"प्राणाधार ! मैंने स्वय ही अपने पैरो मे कुल्हाडी मारी थी। मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी, इसलिए मैंने स्वय ही अपने पथ मे काटे बोये थे। मैंने विमलापुरी मे ऐसा कौतुक देखा कि स्वय अपने लिए ही कौतुक बन गई।

'मेरे प्राणरक्षक ! सोलह वर्ष के विरही जीवन मे मैंने अपनी सास वीरमती के द्वारा जो-जो कष्ट सहन किये है, उन्हे मैं ही जानती हूँ। जब आप आयेंगे, तभी मैं अपनी कष्ट-कहानी आपको सुनाऊँगी। इस पत्र मे इतना सब कहाँ तक लिख पाऊँगी ?

"मेरे हृदयहार ! कुक्कुट रूप को त्याग आप पुन मनुष्य बन गये, इस हर्ष-सवाद को सुनकर मैं अपने सब कष्ट भूल गई हूँ। हर्षावेग से मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठा है। मेरी आंखे आपके दर्शनो को तरस रही है। आप जल्दी ही दर्शन दीजिए। कही इतनी देर मत कर देना कि आपके दर्शनो की प्यासी मेरी आंखे खुली-की-खुली ही रह जाये और खुली रहकर भी आपके दर्शन न कर सके।

"नयनरजन ! अन्त मे, अब इतना ही लिखूंगी कि मेरे सब अपराधो को विसारकर शीघ्र ही दर्शन देकर कृतार्थ कीजिए।"

आपकी चरणदासी
गुणावली

पत्र लिखकर गुणावली ने विमलापुरी से आये हुए दूत को दे दिया। पत्र लेकर दूत विमलापुरी के लिए रवाना हो गया। राजा चन्द्र को नरतन प्राप्त हो गया है, यह समाचार गुणावली और महामन्त्री सुमति दोनो ने ही गुप्त रखा। वीरमती को पता न लगने दिया। लेकिन जैसे पुष्प की गन्ध छिपाने पर नही छिपती, उसी तरह कानो कान यह समाचार आभापुरी मे फैल गया। वीरमती को भी पता चल ही गया कि विमलापुरी मे जाकर राजा चन्द्र को मनुष्यत्व प्राप्त हो गया है। यह समाचार सुनकर वीरमती बौखला उठी और बड़बड़ाती हुई गुणावली के पास आकर कहने लगी—

"बहू ! मैने सुना है कि जिस चन्द्र को मैंने पिंजरे का पछी बनाया था, वह पुन मनुष्य बन गया है और यहाँ आभापुरी मे आना चाहता है ? क्या अभी वह मेरे प्रताप और प्रियाबल से परिचित नही हो पाया ? शायद उसकी मौत ने ही उसे यहाँ आने को प्रेरित किया होगा। लेकिन मैं तो उसे वहीं जाकर मारने मे

समर्थ हूँ। वह यहाँ क्या खाक आयेगा ? मै विमलापुरी जाकर ही उसको यमलोक पहुँचाऊँगी।

"बहू ! तू भी मेरी शक्ति को भूल गई और तूने मुझसे यह समाचार छिपाया। अब तू चन्द्र को खबर कर दे कि यहाँ आने का विचार भी न करे। यदि तूने उसे सूचित नही किया और मुझे धोखा दिया तो तू भी बुरी मौत मारी जायेगी। तुझे यह भी सावधानी रखनी होगी कि मेरी इन सब बातो को गुप्त ही रखना। मैं उसे दण्ड देने विमलापुरी जाऊँगी, तब तक तू आनन्द से रहना। एक बार तुझे फिर सावधान करती हूँ कि मुझे धोखा देने की कोशिश मत करना।"

वीरमती की बातें सुनकर गुणावली सिहर उठी। वह उसके दुष्ट स्वभाव से और साथ ही उसकी शक्तियो से परिचित थी। वह तो एक बार की ही भूल का दुष्परिणाम भोग रही थी। किसी तरह वह वीरमती को अपने स्वामी के अनुकूल करना चाहती थी। अत गुणावली ने मीठी वाणी मे कहा—

"माताजी ! जो कुछ आपने सुना है, मुझे तो यह बेपर की झूठी अफवाह ही मालूम पडती है। मुझे तो इस अफवाह पर तनिक भी विश्वास नही होता। आपके अलावा और किसमे इतनी शक्ति है, जो उन्हे कुक्कुट से पुन मनुष्य बना सके ? हाँ, आप ही यदि चाहे तो उन्हे फिर मनुष्य बना सकती है। वे तो उन नटो के साथ न जाने कहाँ-कहाँ मारे-मारे फिरते होगे ? कोई भी विद्याप्राप्त प्राणी आपसे शत्रुता मोल लेकर उन्हे मनुष्य नही बना सकता। इसके अलावा आप जैसा विद्याप्राप्त और शक्ति-सम्पन्न प्राणी इस धरती पर दूसरा नही है। मुझे तो इसी बात

का आश्चर्य है कि आपने इस अफवाह पर विश्वास कैसे कर लिया।

"माताजी! आप विमलापुरी जाना चाहे, तो शौक से जाइए। लेकिन वहां जाने से कोई लाभ नही है। फिर जैसी आपकी इच्छा हो, सो कीजिए।"

वीरमती की अनुनय-विनय कर गुणावली चली गई। वीरमती तो प्रतिशोध की ज्वाला मे दग्ध हो रही थी। अत गुणावली की बात का कोई उत्तर न दे, वह अपनी विद्याओ के देवो का आवाहन करने बैठ गई। सभी देव प्रकट हुए और वीरमती से अपने बुलाने का कारण पूछा तो वीरमती ने बताया—

"मेरे साथ विमलापुरी चलकर तुम्हे राजा चन्द्र को नष्ट करना है। इसी कार्य के लिए मैंने तुम्हारा आवाहन किया है"

एक स्वर से विद्याओ के अधिष्ठाता सभी देवो ने कहा—

"रानी वीरमती! तुम अप्सरा की चेतावनी को क्यो भूल गई? अगर तुम राजा चन्द्र का अनिष्ट करने का प्रयास करोगी तो उल्टा तुम्हारा ही अनिष्ट होगा। इसके अलावा हममे इतनी शक्ति नही है कि हम राजा चन्द्र का बाल भी बांका कर सके क्योकि वह प्रबल पुण्यशाली है। अब उसके शुभकर्मों का उदय हो चुका है और कोई कार्य हो तो बताओ। यह काम हमारे वश का नही है। राजा चन्द्र के पुण्य हम से अधिक बलवान है।

वीरमती क्रोध मे बेभान थी। अत देवो की शिक्षा पर उसने कोई ध्यान नही दिया तथा चन्द्र को मारने के लिए दृढ-संकल्प हो गई। देवता तो अन्तर्धान हो गये और वीरमती महामन्त्री सुमति के पास आई तथा उससे कहने लगी—

"महामन्त्री ! मैं तो विद्यावल से राजा चन्द्र को दण्ड देने के लिए विमला पुरी जा रही हूँ। मेरे पीछे तुम राज्य की समुचित देखभाल रखना।"

महामन्त्री सुमति ने कहा—

"महारानी जी ! आप निश्चिन्त होकर विमलापुरी जाइए। आपके पीछे मैं सब व्यवस्था ठीक रखूँगा। आभापुरी की ओर से आप निश्चिन्त रहिए।"

मन्त्री का आश्वासन पाकर वीरमती ने पुन सब देवो को बुलाया और उन्हें साथ ले हाथ मे नगी तलवार लेकर आकाश-मार्ग से विमलापुरी को प्रस्थान कर दिया।

× × ×

गुणावली का पत्र लेकर विमलापुरी का दूत यथासमय विमलापुरी लौट आया और राजा चन्द्र को गुणावली का पत्र दे दिया। एकान्त मे बैठ कर राजा चन्द्र गुणावली का पत्र पढने लगे पत्र पढते-पढते वे आनन्द विभोर हो गये और सोचने लगे— 'मैंने व्यर्थ ही गुणावली को उलाहने दिये। वह तो सचमुच ही गुणावली है। उसके एक-एक शब्द मे मेरे प्रति प्रेम और भक्ति टपक रही है।'

गुणावली का पत्र जहाँ तहाँ आँसुओ से भीग गया था। कही कही अश्रुजल से स्याही फैल गयी थी—अक्षर मिट गये थे। उससे गुणावली का अतिशय प्रेम ही प्रगट हो रहा था। पत्र पढने के अनन्तर राजा चन्द्र आभापुरी जाने के लिए व्याकुल हो उठे। वे अब जल्दी ही अपने श्वसुर मकरध्वज से आज्ञा लेकर आभापुरी जाना चाहते थे। उन्हे किस दिन प्रस्थान करना है,

इसी की उधेडबुन मे लगे रहे। तभी सहसा वीरमती का एक देव प्रगट हुआ और राजा चन्द्र से कहने लगा—

"राजन्! वीरमती आपको मारने यहाँ आकाश-मार्ग से आ रही है। हम सभी देवो ने उसे बहुत समझाया, पर उसने हमारी बातो पर कोई ध्यान नही दिया। मैं आपको उससे सावधान करने गुप्त रूप से यह सूचना देने आया हूँ।"

राजा चन्द्र उसी समय उठ खडे हुए और वीरमती को मार्ग मे ही रोकने का निश्चय कर रणसज्जा करने लगे। उन्होने रण-वेश धारण किया, वक्ष पर कवच, भुजाओ पर रक्षावरण और सिर पर शिरत्राण-मुकुट—रणकिरीट धारण किया और चतुरंगिनी सेना लेकर एक अश्व पर सवार होकर वीरमती का उचित स्वागत करने चल दिये।

आकाश मे उडते हुए वीरमती ने ऊपर से ही राजा चन्द्र को देखा तो क्रोध के मारे उसका चेहरा लाल हो गया। उसकी आँखो से चिनगारियाँ निकल रही थी और मुख से इस प्रकार दुर्वचन निकलने लगे—

"अरे चन्द्र! अच्छा हुआ तू मुझे रास्ते मे ही मिल गया। वरना मुझे ढूंढना पडता। मैंने बडी भूल की जो कुक्कुट-रूप मे तुझे जीवित छोड दिया, वरना मुझे यहाँ आने का कष्ट न करना पडता। लेकिन कोई बात नही। जो हुआ सो हुआ, अब तू थोडी ही देर का मेहमान है। मैं तुझे विमलापुरी से यमपुरी पहुँचा दूँगी। मेरे रहते तू आभापुरी नही जा सकेगा।"

यह कहकर वीरमती ने ऊपर से तलवार फेंकी। सनसनाती हुई वीरमती की तलवार राजा चन्द्र के वक्ष मे लगी। वक्ष पर कवच होने के कारण उसका कुछ नही बिगडा। लेकिन वीरमती

की वही तलवार पुन वापस होकर वीरमती के सीने मे जाकर लगी और वीरमती को घायल कर पुन राजा चन्द्र के पास आ गई। छटपटाती हुई वीरमती धरती पर आ गिरी। अभी वह जीवित थी और फटी-फटी आंखो से वह पास खडे राजा चन्द्र को देख रही थी। अब भी वह क्रोध मे भरी थी, पर विवश थी। उसकी तलवार उसे ही ले बैठी। राजा चन्द्र ने भी अपना कर्तव्य निश्चित किया। दुष्टो को तो समाप्त ही कर देना चाहिए। अत जैसे धोबी कपडे को पछाडता है, ऐसे ही राजा चन्द्र ने वीरमती के पैर पकडकर उसे एक शिला पर पटक दिया। उसके प्राण-पखेरू उड गये और अपने दुष्कर्मो के कारण उसे छठे नरक मे जाना पडा। बुरे-भले कर्मो का अपना फल-परिणाम अवश्य होता है। पापियो की सदा यही गति होती है।

इधर आकाश मे देवगण इकट्ठे हो गये और उन्होंने राजा चन्द्र पर फूलो की वर्षा की तथा उनका जय-जयकार किया। यथासमय राजाचन्द्र वीरमती को मारकर विमलापुरी लौट आये। वीरमती के मरने का समाचार सुनकर राजा मकरध्वज बहुत ही प्रसन्न हुए और प्रेमला भी बहुत खुश हुई। सज्जनो की मृत्यु पर हमेशा आंसू बहाये जाते है और दुर्जनो की मौत पर सभी हर्ष मनाते है।

आकाश-मार्ग द्वारा एक देव आभापुरी पहुँचा और वीरमती के मारे जाने का समाचार गुणावली को दिया। यह सवाद पाकर गुणावली बहुत प्रसन्न हुई। अब वह निर्भय और निश्चिन्त थी। गुणावली ने यह शुभ सवाद महामात्य सुमति को सुनाया। महामन्त्री ने राजा चन्द्र की विजय घोषणा नगर मे करवा दी। आभापुरी की प्रजा के दुखानल का अंधेरा मिट गया था और

अब राजा चन्द्र के सुशासन का विहान हो चला था। सभी नर-नारी इस निश्चित आशा से प्रसन्न थे कि अब शीघ्र ही राजा चन्द्र आकर हमारे नेत्र सफल करेगे। उनके शासन मे राजतन्त्र मे भी लोकतन्त्र का सुख पायेगे। इतना ही नहीं, नगरी के गण्यमान्य व्यक्तियों ने मिलकर राजा चन्द्र को पत्र भी लिखा। जिसमे उनसे शीघ्र ही आभापुरी आने की प्रार्थना की गई थी। एक पत्र महामन्त्री ने भी आग्रहपूर्वक लिखा कि आप शीघ्र ही आभापुरी को सनाथ कीजिए। एक दूत सभी पत्र लेकर विमलापुरी के लिए रवाना हो गया।

वीरमती के मारे जाने से यद्यपि गुणावली बहुत प्रसन्न रहती थी, पर पतिव्रता स्त्री के लिए पति-वियोग मे कोई भी सुख, सुख नहीं होता। पति के बिना गुणावली के लिए सब कुछ ऐसा ही था, जैसे नमक के बिना स्वादिष्ट भोजन। एक दिन भवन-वाटिका के एकान्त मे बैठी हुई गुणावली विचार कर रही थी—

'इतने दिन हो गये, पर स्वामी अभी नहीं आये। यद्यपि वे मुझे बहुत प्यार करते हैं, फिर भी आखिर तो पुरुष ही हैं। पुरुष मे भी प्रकृत रूप से भ्रमरवृत्ति हुआ करती है। भौंरा फूल-फूल का रस लेता फिरता है। नई चीज हरेक को अच्छी लगती है। मेरे स्वामी भी प्रेमला के प्रेमजाल मे फँस गये है, इसीलिए मुझे भूल गये हैं हालाकि प्रेमला ने मेरा हित ही किया है। उसी के निमित्त मे तो मेरे स्वामी को मनुष्यत्व प्राप्त हुआ है। फिर भी आखिर तो वह मेरी सौत है। वह कब चाहेगी कि वे मेरे पास आयें? मेरा कोई हितैषी नहीं है, जो उन्हे यहाँ आने के लिए प्रेरित करे।'

गुणावली भवनवाटिका मे बैठी यह सब विचार कर रही थी। तभी समय डाल पर बैठा एक तोता इस प्रकार कहने लगा—

"महारानी गुणावली ! तुम इतनी खिन्न व चिन्तित क्यों हो ? अपना दुख मुझसे कहो। अवश्य ही मैं तुम्हारी मदद करूँगा। तुम मेरी सामर्थ्य पर भी भरोसा रखो, क्योंकि मै देव-लोक का पछी हू।"

डाल के पछी की अनुकूल और सहानुभूतिपूर्ण बाते सुनकर गुणावली को बहुत सान्त्वना मिली। प्रसन्नमन होकर उसने शुक से कहा—

"हे शुक ! मेरे स्वामी मेरे हृदय मे होते हुए भी मुझसे बहुत दूर है। वे मेरे पास आना भूल गये हैं। क्या तू मेरा इतना काम करेगा कि उन्हे मेरे पास आने की याद दिला दे और मेरी व्यथा उनसे कह दे ?"

तोते ने आश्वासन दिया—

"बहिन ! तू चिन्ता मत कर। मैं तेरा काम करूँगा। तू एक पत्र लिखकर मुझे दे दो। उस पत्र को मैं तेरे स्वामी के पास पहुँचा दूंगा।"

गुणावली तुरन्त एक पत्र लिखने बैठ गई। वह पत्र लिखती जाती थी और उसकी आंखो से टप-टप आंसू गिरते जाते थे। भावाभिभूत गुणावली इतना भी नही देख पाई कि जो कुछ वह लिखती जाती थी, वह अनलिखा होता जाता था। पत्र लिखकर उसने तोते को दे दिया और देवलोक का वह तोता पत्र लेकर विमलापुरी के लिए उड गया और अठारह सौ योजन की दूरी तय करके विमलापुरी पहुँच गया। तोते ने राजा चन्द्र को गुणा-वली का पत्र दे दिया। राजा चन्द्र पत्र पढने लगे—

"जाने सब तेरो हियो, मेरे हिय की बात।
मम आभा फीकी पडी, कटे न मोरी रात॥"

आगे पत्र मे बीच-बीच से वाक्याश गायब थे, अक्षरो पर से आँसू बहे हुए थे। लेकिन राजा चन्द्र ने आँसुओ से भीगा वह अनलिखा पत्र भी पढ लिया। मुख्य बात तो यही थी—'जानै सब तेरो हियो मेरे हिय की बात।'

राजा चन्द्र ने तुरन्त गुणावली के पास जाने का निश्चय कर लिया और अपने मन की बात प्रेमलालच्छी से भी कही। प्रेमला ने उनसे विमलापुरी रहने का आग्रह करते हुए कहा—

"प्राणेश्वर! क्या कुछ ही महीनो मे आपका मन मुझसे और विमलापुरी से भर गया? आखिर आप आभापुरी क्यो जाना चाहते हैं? अगर बहिन गुणावली की याद सता रही है तो उन्हे भी यही बुला लीजिए। गुणावली की और मेरी वियोग-अवधि लगभग बराबर ही है। उन्हे तो विवाह के वर्षो बाद आपका वियोग सहना पडा और मुझे तो विवाह मण्डप से निकलते ही आपके दर्शन नही मिले। मेरे पिता ने अपना आधा राज्य तथा दोनो देशो के बीच का भूभाग देकर आपको स्वतन्त्र राजा बना दिया है। इसके अलावा आप राजमाता के रूप मे भी यहाँ सम्मानित है। सुसराल तो युग की सार होती है। मेरी सखियाँ आपको जीजा कहकर पुकारती है। मैं आपको आभापुरी नही जाने दूँगी।"

राजा चन्द्र ने कहा—

"प्राणेश्वरी! किसी भी दशा मे मनुष्य को अपना कर्तव्य नही भूल जाना चाहिए। मैं यहाँ सुखो मे रहूँ और मेरी प्यारी

प्रजा और रानी गुणावली दुखी मे रहे, तो मुझे कर्तव्यच्युत प्राणी ही मानना चाहिए।

"प्यारी प्रेमला! तुम ठीक कहती हो कि सुसराल सुख की सार होती है। लेकिन तुमने आधी ही बात कही है। पूरी बात इस तरह है—

"सुसराल सुख की सार, जो रहो दिन दो-चार।
जो रहो मास दो मास, लेकर खुरपी छीलो घास॥

"हे प्रिये! ससुराल मे अधिक दिन रहने से सम्मान घट जाता है। स्त्री की शोभा पतिगृह मे ही है। विवाह के बाद तुम्हे भी स्थायी रूप से पीहर नही रहना चाहिए। अपनी जन्म-भूमि स्वर्ग से भी ज्यादा सुखदायिनी होती है। कहावत है कि 'विदेश के फूल भी अच्छे नही और स्वदेश के कांटे भी अच्छे हैं।' अत तुम्हे भी आभापुरी चलने के लिए तैयार रहना चाहिए।"

राजा चन्द्र का दृढ निश्चय और सर्वथा उपयुक्त विचार जानने के बाद प्रेमला ने कहा—

"स्वामी! छाया काया को कही नही रोक पाती और काया छाया को लिये-लिये फिरती है। मेरा सुख तो आपके चरणो मे है। न मुझे आभापुरी अच्छी लगती है और न विमलापुरी, बल्कि जहां भी मुझे आपके चरण मिलेंगे, वह स्थान ही मेरे लिए स्वर्ग-पुरी बन जाएगा। आप चलने की तैयारियां कीजिए। मैं भी अपनी ससुराल देखने को उत्सुक हूं। स्वामी! मैं आभापुरी जाकर सबसे पहले वह आम्रवृक्ष देखूंगी, जिसके कोटर मे बैठकर आप मुझे सनाथ करने यहां आये थे। भला हो, उस मरने वाली वीरमती का जो आपको लेकर यहां आ गई। मेरे लिए तो वह शुभाम्द ही बन गई। वह आम्रवृक्ष मेरा सुखदाता है।"

राजा चन्द्र अपने श्वसुर राजा मकरध्वज के पास पहुँचे और बोले—

"महाराज! आभापुरी से बहुत बुलावे आ चुके हैं। नगरी के गण्यमान्य व्यक्तियो के पत्र आये हैं, मेरे मन्त्री के पत्र आये हैं और गुणावली ने भी लिखा है। अत अब मैं शीघ्र ही आभापुरी जाऊँगा। आप मुझे वहा जाने की अनुमति प्रदान कीजिए।"

आभानरेश राजा चन्द्र की बात सुनकर राजा मकरध्वज भावी विछोह की कल्पना से सिहर उठे। फिर उन्होने धैर्यपूर्वक अपनी मोहजन्य सिहरन को सयत किया और इस प्रकार बोले—

"हे आभानरेश! मैं तुम्हे न तो आभापुरी जाने से इन्कार ही कर सकता हूँ और न विमलापुरी मे रोक ही सकता हूँ। एक ओर मोहजन्य पीडा और विछोह की वेदना है तो दूसरी ओर कर्तव्य की भावना।

"हे राजा चन्द्र! किसी ने ठीक ही कहा है कि बिगडा हुआ हाथी हाथ मे नही रहता, माँगे हुए गहने भी सदा किसी के पास नही रहते, परदेशी की प्रीति हमेशा नही रहती और मेहमानो मे किसी के घर नही बसते। इसलिए कर्तव्यवश न चाहते हुए भी मैं तुम्हे जाने की अनुमति दूँगा। लेकिन मैं तुम्हे अपने हृदय मे तो जबर्दस्ती रोक लूँगा—हृदय से कैसे जाओगे?"

राजा चन्द्र को महाराज मकरध्वज से भी अनुमति मिल गई। सब नगरवासियो को भी राजा चन्द्र और प्रेमलालच्छी के जाने की खबर लग गई। नगरवासी भी विछोह के दुख से व्याकुल होने लगे। राजा चन्द्र ने जाने की तैयारी शुरू कर दी। रथ, घोडे हाथी सज गए। पैदल सेना भी सज गई। रत्नो और मुहरो से वाहन लद गए।

विदाई के समय सबकी आंखे गीली थी । राजा मकरध्वज और प्रेमला की माता की तो हिचकी ही बंध गई थी । वेटी की विदाई का दृश्य बडा कारुणिक होता है । वर्षो की पाली पोसी वेटी तुरन्त पराई हो जाती है । प्रेमला के लिए विमलापुरी अब पराई होती जा रही थी । अपना महल, भवनवाटिका और सखियो को छोडते समय प्रेमला का कलेजा मुंह को आ रहा था। उसकी आँखें झर-झर झर रही थी । राजा मकरध्वज ने वेटी को शिक्षाएँ दी और आशीर्वाद दिया । अन्त मे, प्रेमला अपनी माता के गले से लिपट गई । रोते-रोते उसकी माँ ने विदा के बोल कहे—

वेटी ! पुत्री को जन्म देकर ही माता मान लेती है कि यह तो पराई धरोहर है । सयानी होते ही पराई हो जायगी । पुत्री ही क्या पुत्र का भी यही हाल है । वह भी पास से दूर होता जाता है । गर्भ से गोद मे, गोद मे पालने मे, पालने से आंगन मे, आगन से घर के बाहर होता है । इस तरह सन्तान तो पास से दूर होती जाती है ।

"वेटी ! लेकिन ससार मे एक रिश्ता ऐसा भी है, जो दूर से पास होता है—हर तरह से दूर और हर तरह से निकट। वेटी ! पति-पत्नी का रिश्ता ही एक ऐसा रिश्ता है । भला कहां आभापुरी और कहां विमलापुरी ? कौन प्रेमला और कौन राजा चन्द्र । इतनी दूर से भी दो हृदय आज निकट हो गए—एक हो गए ।

'वेटी ! यो तो तू स्वय ही समझदार और बुद्धिमती है । फिर भी मैं तुझे सीख देती हूँ कि सदा अपने स्वामी के चरणो की अनुगामिनी रहना । गुणावली को सदा अपनी बडी बहिन का-सा सम्मान देना और सदा धर्म मे तत्पर रहना । धर्म से बडा कुछ भी नही है । याद रख, पूर्वभव मे तूने जो धर्म-पुण्य किया, उसी के

कारण तेरा उत्तम कुल मे जन्म हुआ, स्वस्थ सुन्दर शरीर मिला और आभापुरी जैसी ससुराल तथा राजा चन्द्र जैसे देवोपम और धर्मनिष्ठ स्वामी मिले। इसके अलावा जो तूने पापकर्म किये, उनके कारण तुझे विवाह के तुरन्त बाद ही लम्बे समय तक पति-वियोग सहना पड़ा। इसलिए धर्म का साथ कभी मत छोड़ना।"

राजा मकरध्वज ने प्यारी बेटी प्रेमला को दासियाँ, मेवा, मिष्टान्न और धनधान्य विदा मे दिया। सास ने राजा चन्द्र की आरती उतारी और विदा का तिलक किया। वाद्य ध्वनि, दल-बल और वाहनो सहित राजा चन्द्र ने प्रेमला के साथ प्रस्थान किया। राजपरिवर तथा नगरजन नगरसीमा तक राजा चन्द्र को छोड़ने आये। एक बार तो राजा चन्द्र की जय से आकाश गूँज उठा।

मार्ग मे रुकते-ठहरते राजा चन्द्र आभापुरी की ओर बढ़ने लगे। शिवकुमार नट की मण्डली भी उनके साथ थी, जो स्थान-स्थान पर राजा चन्द्र और उनके साथी पार्षदो का मनोरंजन करती जाती थी। बीच मे जो भी नगर व देश पड़ते जाते थे, राजा चन्द्र किसी को अपने वश मे करते और वहाँ के राजा को अपना प्रतिनिधि बनाकर आगे चल देते थे। किसी राजा को अपनी मैत्री प्रदान करते थे। जिन देशो को वे जीतते थे, उनकी चतुरंगिनी सेना भी अपनी सेना मे मिलाते जाते थे। इस तरह उनका सैन्य दल बढ़ता ही जाता था।

मार्ग मे पड़ने वाले देशो की अनेक राजकन्याओ के साथ राजा चन्द्र ने विवाह भी किया। प्रारम्भ मे एक ही रानी गुणावली के पति राजा चन्द्र अब बहुदारा भोगी राजा होते जा रहे थे। उनके पूर्व पुण्यो का ऐसा ही प्रभाव था कि जो भी राजपुत्री

उनके साथ विवाह करती थी, वह अपने को धन्य मानती थी। नववधुओं से रथ भरते जा रहे थे। राजा चन्द्र के ठाट-बाट और सैन्य दल तथा वाहनों को देखकर ऐसा लगता था कि ऐश्वर्य, वैभव साकार होकर उनके साथ जा रहा है।

धन की उत्तम गति दान है, यह जानकर राजा चन्द्र मुक्त-हस्त से दान भी करते जाते थे। जैसे नाव में बढे हुए पानी को उलीचा जाता है, उसी तरह विजित राजाओं से जो भी धन प्राप्त होता था, राजा चन्द्र उसे याचकों को दान करते जाते थे।

: ८ :

राजा जयसिंह की राजधानी पोतनपुर नगर आया तो नगर से बाहर ही राजा चन्द्र ने पडाव डाल दिया। पोतनपुर के महा-मन्त्री सुबुद्धि की पुत्री लीलावती उनकी धर्म-बहिन थी। जब वे कुक्कुट रूप मे थे, तब उन्होने मनुष्यत्व प्राप्त होने के अनन्तर लीलावती से मिलने का आश्वासन दिया था। अत उन्होंने अपने आगमन की सूचना लीलावती के पास भेजी। राजा चन्द्र—मेरे धर्म भ्राता को निज रूप प्राप्त हो गया है और वे मुझसे मिलने आये हैं, यह जानकर लीलावती को बहुत प्रसन्नता हुई। उसने अपने पति धनद श्रेष्ठी के पुत्र लीलाधर से कहा—

'स्वामी जब आपने विदेश जाने का यह निश्चय कर लिया था कि प्रात काल मुर्गे की पहली आवाज पर मै विदेश के लिए चल दूंगा तो मेरे पिता ने नगर के सब मुर्गे बाहर भिजवा दिये थे। इसीलिए आप कई दिन तक प्रस्थान नही कर पाये थे। उन्ही दिनो हमारे नगर मे एक नटमण्डली आई थी। उसके साथ एक मुर्गा था। उसी की बोली मे आप विदेश पधारे थे। आपके जाने के बाद मैने वह मुर्गा अपने पास मँगवाया। यद्यपि उस मुर्गे ने मेरे साथ शत्रु का-सा व्यवहार किया था, फिर भी वह मुर्गा बहुत प्यारा लगा था। वह तो मुझसे भी ज्यादा दुखी था।

'स्वामी! राजा चन्द्र ही मुर्गे के रूप मे मेरे पास पधारे थे। मैने उनको अपना भाई बनाया था। अब उन्हे निज रूप प्राप्त हो गया है। वे यहाँ मुझसे मिलने आये हुए है।"

लीलावती की बात सुनकर लीलाधर को बहुत प्रसन्नता हुई और वह राजा चन्द्र को सम्मानपूर्वक लेने गया। राजा चन्द्र अपने पडाव से चलकर लीलाधर के घर आये और लीलावती से मिले। आते ही उन्होने मुस्कराकर कहा—

"बहिन लीला ! मैं वही मुर्गा हूँ, जिसने कुकडूँकूँ करके तुम्हारे पति को विदेश भगा दिया था।"

सुनकर लीलावती मुस्कराई और बोली—

"लेकिन अब आपको कटोरी मे पानी नही पिलाऊँगी।"

राजा चन्द्र ने बहिन लीलावती को भेंट-सामग्री दी। वे लीलाधर के श्वसुर श्रेष्ठी धनद तथा उसके पिता मन्त्री सुबुद्धि तथा राजा जयसिंह से भी मिले। कुछ दिन वे पोतनपुर मे ही रुके। उसके बाद धर्मभगिनी लीलावती से विदा लेकर आगे बढ गये।

मार्ग मे राजा चन्द्र किसी नगर के बाहर पडाव डाले पडे हुए थे। अचानक ही उन्हे किसी स्त्री के रोने की आवाज सुनाई दी। धर्मवीर और दयावीर राजा निर्भीकता से उठे, अपना खड्ग हाथ मे लिया और रोने की आवाज के साथ ही बढते चले गये। उद्यान मे एक पेड के नीचे बैठी हुई एक विद्याधरी सुन्दरी करुण स्वर मे रो रही थी। उसका रूप रति को भी लज्जित कर रहा था। राजा चन्द्र को देख स्त्री ने ऊपर नजर उठाई और राजा चन्द्र से बोली—

"राजन् ! मेरा उद्धार कीजिए। मेरा जीवन आपके ही आश्रित है।"

राजा चन्द्र ने आश्वासन दिया—

"देवी ! तुम्हे क्या कष्ट है ? मुझे अपना कष्ट बताओ, मैं

तुम्हारा कष्ट दूर करूँगा। भले ही तुम्हारे लिए मुझे यमराज से लड़ना पड़े। यह शरीर यदि किसी के काम न आये तो मनुष्य का जन्म लेना ही व्यर्थ है।"

उस दिव्य रमणी ने कहा—

'हे आभानरेश! मैं विद्याधर की पुत्री हूँ। मेरा पति बड़े उग्र स्वभाव का है। मुझसे कलह करके वह मुझे मध्य रात्रि में यहाँ अकेला छोड़ गया है। अब मैं बेसहारा हूँ। जैसे जल के बिना नदी और वृक्ष के बिना लता होती है, वैसे ही पुरुष के बिना मेरा जीवन अधर में लटक रहा है। लेकिन आप जैसे पुरुष सिंह को पाकर मेरा सब अभाव मिट गया। विधाता ने मुझे आपके लिए और आपको मेरे लिए बनाया है। अब आप मुझे अपनी बाँहों का सहारा दीजिए। मुझे आशा है कि वीर क्षत्रिय होने के नाते आप एक अबला को सहारा देंगे।"

आभापति राजा चन्द्र ने कहा—

'सुन्दरी! तुम्हें मति भ्रम हो गया है। तुम स्वयं धर्म से गिर रही हो और मुझे भी गिराने की कोशिश कर रही हो।

"सुन्दरी पति ही पत्नी की गति है और उसका सर्वस्व है। अन्धा, बहरा, कोढ़ी, दीन और क्रोधी—इतने अवगुण होने पर भी स्त्री का पति सर्वथा पूज्य व सेवनीय है। मैं तुम्हें अपनी धर्म बहिन मानता हूँ और इसी नाते तुम्हारे पति से तुम्हारा मेल करा दूँगा।"

राजा चन्द्र की बात सुनकर विद्याधर पुत्री ने पुनः कहा—

आभापति! किसी सुन्दरी के स्नेह को ठुकराना बुद्धिमानी नहीं है। [illegible]

[illegible]

दुष्ट पति के साथ अब रहना ही नही है ? आप राजा हैं, आप तो अनेक रानियाँ रख सकते हैं। फिर क्यो आप आना-कानी कर रहे है ?"

राजा चन्द्र ने विद्याधरी को पुन समझाया—

'सुन्दरी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन सर्वोत्तम है तथा अपनी विवाहिता पत्नी से रमण करना भी धर्म विहित है। पर पराई स्त्री को पत्नी भाव से देखना भी घोर अधर्म है। आज तक जिस-जिसने परदारा-भोग किया, उसे कुपरिणाम ही भोगना पडा। रावण की दशा देख लो। उसका पूरा वश ही सीता की कोपाग्नि मे जल गया। मणिरथ और मदनरेखा का प्रसग ही ले लो। मणिरथ बुरी मौत मारा गया और मरकर नरक पाया। इसी तरह इन्द्र और अहल्या, द्रौपदी और पद्मरथ आदि के प्रसग भी हमे यही शिक्षा देते है कि परदारा-भोग से बचो। तुम्हे समर्पण का अधिकार ही कहाँ है ? क्या सिंह कभी झूठा शिकार खाता है ?

'सुन्दरी ! अब मैं तुम्हारी आधी बात भी नही सुनूंगा। चुपचाप मुझे अपने पति के पास ले चलो। मैं उन्हे भी समझाऊँगा कि स्त्री का निरादर नही करना चाहिए।"

राजा चन्द्र की परदारा-सहोदर व्रत की दृढता और उनकी धर्मनिष्ठा से परम प्रसन्न होकर उक्त विद्याधर-पुत्री एकदम अदृश्य हो गई और उसके स्थान पर एक देव प्रकट हुआ। देव ने राजा चन्द्र को प्रणाम करते हुए कहा—

'धर्मवीर राजा चन्द्र ! तुम्हारी जय हो। देवसभा मे देवराज इन्द्र से जैसा सुना, वैसा पाया। तुम परीक्षा मे पूरे

सफल हुए। सचमुच यह वसुन्धरा आप जैसे नर-रत्न को पाकर धन्य हो गई और आपके दर्शन करके मैं भी धन्य हो गया।"

उक्त देव ने राजा चन्द्र की जिज्ञासापूर्ण मुख मुद्रा देखकर उनके पूछने से पहले स्वय ही कहा—

"हे आभापति ! एक दिन देवसभा मे बैठे हुए देवराज इन्द्र कह रहे थे कि आभापुरी मे एक राजा चन्द्रकुमार राज करते थे। उनकी विमाता ने उन्हे मुर्गा बना दिया। अब उन्हे पुन निज रूप प्राप्त हुआ है और वे अब विमलापुरी से आभापुरी जा रहे है। उन जैसा धर्मनिष्ठ राजा धरती पर दूसरा नही है। स्वर्गपुरी मे अनेक देव है तथा धरती पर अनेक सदाचारी मनुष्य है, लेकिन राजा चन्द्र जैसा स्वदारा सन्तोषी दूसरा कोई नही है।

"राजन् ! देवराज इन्द्र के इस कथन पर मुझे विश्वास नही हुआ और मुझे आपकी धर्मनिष्ठा पर सन्देह होने लगा। अत आपकी परीक्षा के लिए मैने विद्याधरी का दिव्य रूप बनाया था। आप अपने व्रत पर दृढ रहे। मेरा सन्देह दूर हो गया।"

यह कह बार बार नमस्कार कर देव अपने लोक को चला गया। राजा चन्द्र उद्यान मे अपने पडाव पर आ गये। प्रात काल उठकर नित्यकर्म से निश्चिन्त हुए और फिर धर्म-क्रियाएँ की तथा आगे के लिए प्रस्थान कर दिया।

उठी थी। अब तो एक-एक क्षण उसे भारी पड रहा था। उसका बस चलता तो वह नगर के बाहर उनके डेरो पर पहुँच जाती, पर राज-मर्यादा ने उसके पैरो मे जजीरें डाल दी थी।

इधर राजा चन्द्र के नगर-प्रवेश की तैयारियां हो रही थी। आभापुरी के हर घर मे दीपमालाएँ जगमगा रही थी। सभी चौराहे और राजमार्ग सजाये जा रहे थे। आभापुरी की जनता नये-नये कपडे पहनकर ऐसे सज रही थी, मानो आज कोई त्योहार हो। सुमति मन्त्री वाद्यो के साथ सैन्य दल को लेकर राजा चन्द्र की अगवानी को जा रहा था और उधर रानी गुणावली मान-भवन मे बैठी विचार कर रही थी—'आज मैं अपने स्वामी से मान करूंगी। वे नारियां कितनी धन्य हैं, जो प्रणयमान का सुख लेती हैं। जिसका मनाने वाला मानधन हो, उसे तो मान करना ही चाहिए।'

मान नारी का धन होता है। मान मनवाते समय उसे बडा प्रणयसुख मिलता है।

जब राजा चन्द्र दूर थे तो गुणावली उनसे मिलने के लिए छटपटा रही थी और अब ज्यो-ज्यो मिलन की घडियां निकट आती जा रही थी, त्यो-त्यो वह मान करने के लिए—रूठने के लिए व्यग्र होती जा रही थी। गुणावली सोच रही थी—'मैं रूठूंगी और उनसे कहूंगी, आपने मेरे पास आने मे इतने दिन क्यो लगा दिये ? जाइए मैं आपसे नही बोलती। वे फिर मेरी ठोडी के नीचे अपनी तर्जनी मोडकर लगायेंगे और मेरा मुंह ऊपर उठाकर मेरी आंखो मे आंखे डालकर कहेंगे—गुणावली ! सबसे पहले तो मैं तुम्हारा ही हूं। तुम्हारा प्रेम ही तो मुझे यहाँ खींचकर लाया है। तुम मुझसे क्यो रूठती हो। लेकिन तुम्हारा

सफल हुए। सचमुच यह वसुन्धरा आप जैसे नर-रत्न को पाकर धन्य हो गई और आपके दर्शन करके मैं भी धन्य हो गया।"

उक्त देव ने राजा चन्द्र की जिज्ञासापूर्ण मुख मुद्रा देखकर उनके पूछने से पहले स्वय ही कहा—

"हे आभापति ! एक दिन देवसभा मे बैठे हुए देवराज इन्द्र कह रहे थे कि आभापुरी मे एक राजा चन्द्रकुमार राज्य करते थे। उनकी विमाता ने उन्हे मुर्गा बना दिया। अब उन्हे पुन निज रूप प्राप्त हुआ है और वे अब विमलापुरी मे आभापुरी जा रहे हैं। 'उन जैसा धर्मनिष्ठ राजा धरती पर दूसरा नहीं है। स्वर्गपुरी मे अनेक देव हैं तथा धरती पर अनेक सदाचारी मनुष्य हैं, लेकिन राजा चन्द्र जैसा स्वदारा सन्तोषी दूसरा कोई नही है।

"राजन् ! देवराज इन्द्र के इस कथन पर मुझे विश्वास नहीं हुआ और मुझे आपकी धर्मनिष्ठा पर सन्देह होने लगा। अत आपकी परीक्षा के लिए मैंने विद्याधरी का दिव्य रूप बनाया था। आप अपने व्रत पर दृढ रहे। मेरा सन्देह दूर हो गया।"

यह कह बार-बार नमस्कार कर देव अपने लोक को चला गया। राजा चन्द्र उद्यान से अपने पडाव पर आ गये। प्रात काल उठकर नित्यकर्म से निश्चत हुए और फिर धर्म-क्रियाएँ की तथा आगे के लिए प्रस्थान कर दिया।

धीरे-धीरे आभापुरी निकट आती जा रही थी। अब तक राजा चन्द्र ने सात सौ राजकन्याओ से विवाह कर लिया था और अनेक राजाओ को अपने अधीन कर चुके थे। सात सौ नववधू रथो मे सवार थी। राजा चन्द्र ने आभापुरी के निकट ही पडाव डाल दिया और अपने आगमन की सूचना मन्त्री सुमति के पास भिजवाई। यह सवाद सुनकर गुणावली बहुत ही अधीर हो

उठी थी। अब तो एक-एक क्षण उसे भारी पड रहा था। उसका वस चलता तो वह नगर के बाहर उनके डेरो पर पहुँच जाती, पर राज-मर्यादा ने उसके पैरो मे जजीरें डाल दी थी।

इधर राजा चन्द्र के नगर-प्रवेश की तैयारियां हो रही थी। आभापुरी के हर घर मे दीपमालाएँ जगमगा रही थी। सभी चौराहे और राजमार्ग सजाये जा रहे थे। आभापुरी की जनता नये-नये कपडे पहनकर ऐसे सज रही थी, मानो आज कोई त्योहार हो। सुमति मन्त्री वाद्यो के साथ सैन्य दल को लेकर राजा चन्द्र की अगवानी को जा रहा था और उधर रानी गुणावली मान भवन मे बैठी विचार कर रही थी—'आज मैं अपने स्वामी से मान करूँगी। वे नारियाँ कितनी धन्य हैं, जो प्रणयमान का सुख लती हैं। जिसका मनाने वाला मानधन हो, उसे तो मान करना ही चाहिए।'

मान नारी का धन होता है। मान मनवाते समय उसे बडा प्रणयसुख मिलता है।

जब राजा चन्द्र दूर थे तो गुणावली उनसे मिलने के लिए छटपटा रही थी और अब ज्यो-ज्यो मिलन की घड़ियां निकट आती जा रही थी, त्यो-त्यो वह मान करने के लिए—रूठने के लिए व्यग्र होती जा रही थी। गुणावली सोच रही थी—'मैं रूठूंगी और उनसे कहूँगी, आपने मेरे पास आने मे इतने दिन क्यो लगा दिये ? जाइए मैं आपसे नही बोलती। वे फिर मेरी ठोडी के नीचे अपनी तर्जनी मोडकर लगायेंगे और मेरा मुँह ऊपर उठाकर मेरी आंखो मे आंखे डालकर कहेंगे—गुणावली ! सबसे पहले तो मैं तुम्हारा ही हूँ। तुम्हारा प्रेम ही तो मुझे यहाँ खींचकर लाया है। तुम मुझसे क्यो रूठती हो। लेकिन तुम्हारा

यह रूठना बनावटी है, क्योंकि आंसुओ से भीगे पत्र मे तुमने लिख था—"जानै सब तेरो हियो, मेरे हिय की बात।" भीतर से तो मैं मान जाऊंगी, पर बनावटी तौर पर रूठी ही रहूंगी। लेकिन मेरी बनावट ज्यादा देर नही चल पायेगी, अन्त मे तो वे मुझे वक्ष से लगा लेंगे।'

इस तरह मीठी कल्पनाओ मे डूबी हुई गुणावली आनन्द विभोर हो रही थी। उधर राजा चन्द्र नगर-प्रवेश कर रहे थे छज्जो पर चढी स्त्रियां फूलो की वर्षा कर रही थी। राजा चन्द्र की जय जयकारो से आकाश गूंज उठा था। आज सब प्रसन्न थे सभी हर्ष सागर मे डूबे हुए थे। आकाश मे देवगण भी राजा चन्द्र की जय-जयकार कर रहे थे और देवागनाएं पुष्पवर्षा कर रही थी।

राजा चन्द्र के नगर-प्रवेश का दृश्य बडा ही सुन्दर था। हाथी, पैदल, रथी और अश्वारोही हाथो मे ध्वजा लिये आगे-आगे चल रहे थे। उनके पीछे राजा चन्द्र की नवपरिणीताएँ— सात सौ राजकन्याएँ रथो मे बैठी चल रही थी। उसके बाद राजा चन्द्र एक बडी रत्नजटित अम्बारी वाले हाथी पर बैठकर चल रहे थे। उनके पीछे भी सेना थी, दाएँ-बाएँ भी अंगरक्षको का दल था। उनके सिर पर छत्र शोभा पा रहा था और दोनो पार्श्वों से चँवर ढोरे जा रहे थे। राजा चन्द्र दोनो हाथो से याचको को दान भी देते जाते थे। कोकिल कण्ठी नगर-वालाएँ मंगल गीत गा रही थी। राजा चन्द्र सिर झुकाकर सबके अभिवादन का उत्तर देते जा रहे थे।

यथासमय राजा चन्द्र अपने महल के तोरण मे प्रविष्ट हु और सिंहद्वार के पास ही हाथी से उतरे। फिर मन्त्री आदि क विदा कर महलो मे पहुँचे। दासियाँ मार्ग मे फूल बिछाती जात थी। राजा चन्द्र ने इधर-उधर दृष्टि घुमाकर गुणावली क देखा, पर उन्हे गुणावली कही नही दीखी। प्रणयी राजा च तुरन्त समझ गये कि आज गुणावली ने मान किया है। अन्य स रानियो को उनके महलो मे ठहराकर गुणावली के मानकक्ष पहुँचे। लेकिन प्राणप्रिय को देखकर गुणावली अपने मान इर भूल गई और विद्युत्गति से उनके पैरो मे गिर पडी। राजा च ने उसे छाती से लगा लिया। जैसे कुछ अचानक याद आ ग

हो, ऐसा दर्शाते हुए गुणावली अपने प्रणयी स्वामी के बाहुपाश से मुक्त होते हुए बोली—

"इतने दिनो बाद आपको मेरी याद कैसे आ गई ? आप मुझे भूल क्यो गए ? मै आपसे नही बोलूंगी।"

राजा चन्द्र गुणावली के इस मान पर न्यौछावर हो गए और गुणावली को अपनी ओर खीचते हुए बोले—

"प्रिये ! झूठा मान अब नही चलेगा। अपने हृदयदर्पण मे झांककर देखो, क्या मैं तुम्हे कभी भूल सकता हूँ ?"

बस, इतने से ही गुणावली निहाल हो गई और उनके वक्ष पर सिर रखकर खुशी के आंसू बहाने लगी। राजा चन्द्र ने अपने करचीर से उसके प्रेमाश्रुओ को पोछ डाला। इसके बाद उन्होंने सब रानियो को गुणावली से मिलाया। प्रेमलालच्छी तो गुणावली से ऐसे लिपट गई, जैसे बिछुडी हुई अपनी सगी बहिन से मिली हो। अन्य सात सौ रानियो ने भी गुणावली को अग्रजा का-सा सम्मान दिया। राजा चन्द्र ने वह स्थान दिखाया, जहां से कुक्कुट रूप मे राजा चन्द्र ने नटो के लिए सोने की कटोरी गिराई थी और वीरमती उन्हे मारने दौडी थी। इसी स्थान से राजा चन्द्र ने मुर्गे की बोली मे शिवमाला से कहा था कि वह वीरमती से मुझे मांग ले। दो-चार दिन तो इधर-उधर की अपनी-अपनी सुनाने मे ही लग गये। फिर एक दिन राजा चन्द्र, गुणावली, प्रेमलालच्छी तथा अन्य सात सौ रानियो को लेकर राजोद्यान मे पहुँचे और राजोद्यान के रथ-पथ के किनारे खडा वह आम्रवृक्ष दिखाया, जिस पर बैठकर वीरमती और गुणावली विमलापुरी गई थी और वे स्वय वृक्ष के कोटर मे छिपकर

विमलापुरी पहुँचे थे। वृक्ष देखने के अनन्तर प्रेमला ने गुणावली से कहा—

"दीदी! अगर तुम ऐसा न करती तो आज मुझे ऐसे स्वामी कैसे मिलते? तुम्हे धन्यवाद कैसे दूं? मालूम पडता है, पूर्व जन्म मे भी हम दोनो एक ही पति की चरणदासी रही होगी।"

गुणावली ने कहा—

"बहिन प्रेमला! मुझे तो तुम्हारा ही आभार मानना चाहिए, क्योकि अपने कपट-कर्म से मैं तो अपने स्वामी को पिंजरे का पंछी बना चुकी थी। तुम्ही ने उन्हे नवजीवन दिया है। वास्तव मे इन पर असली अधिकार तो तुम्हारा ही होना चाहिए।"

इस तरह बाते करते हुए पूरा दिन उद्यान मे ही बीत गया। सूर्यास्त तक सब राजपरिवार महलो को लौट आया।

राजा चन्द का जीवन यथावत् हो गया। सात सौ दो रानियो के बीच उनके दिन बडे सुख से बीतने लगे। सभी रानियो के बीच बैठकर राजा चन्द्र ऐसे शोभित होते थे, जैसे तारागणो के बीच राका का चन्द्रमा शोभित होता है अथवा ऐसा मालूम पडता था कि राजा चन्द्र रूपी सागर मे रानियो रूपी नदिया निमग्न हो रही है अथवा ऐसा लगता था कि गायो के झुण्ड मे वृषभ शोभायमान हो रहा है। सभी रानियो की पति मे प्रीति थी और आपस मे भी सौहार्द तथा बहनापे का भाव था। सब मिलजुलकर रहती थी। किसी मे ईर्ष्या का भाव न था। सब रानियो के आग्रह और अनुमोदन पर राजा चन्द्र ने गुणावली को पट्टमहिषी अथवा पटरानी का पद दिया था और प्रेमलालच्छी को द्वितीय स्थान दिया गया था।

राजा चन्द्र की राजसभा मे पहले की तरह अब भी छहो ऋतुओ की रूपकमयी विद्यमानता रहती थी। चारण कवि उनका यश गाया करते थे। वे न्यायनीति के साथ प्रजा का पालन करते थे। वीरमती के कुशासन मे दबी प्रजा अब सुख की सांस ले रही थी।

जिन दिनो मानव दुख के दिनो की याद करते हैं, वे दिन सुख के दिन होते हैं। सुख के दिनो मे ही दुख के दिनो की चर्चा होती है। काफी समय बीतने के अनन्तर ही राजा चन्द्र, गुणावली और प्रेमलालच्छी पुराने दिनो की चर्चा भी किया करते थे। जो बातें कई बार हो चुकी थी, उन्हे ही बार-बार दुहराने मे अच्छा लगता था। एक दिन राजा चन्द्र गुणावली के महल मे बैठे थे। प्रसन्नवदना गुणावली ने राजा चन्द्र से कहा—

"प्राणेश्वर! अगर मैं सास की बातो मे आकर विमलापुरी न गई होती तो आपको प्रेमलालच्छी कैसे मिलती? अत आपको मेरा अहसान मानना चाहिए।"

राजा चन्द्र ने भी हँसकर कहा—

"और तुम्हारी बदौलत मुझे सोलह वर्ष तक पिंजरे का पछी बना रहना पडा। इसका भी तो उपकार मानना चाहिए?"

गुणावली क्या कम थी? उसने तपाक से कहा—

"यदि आप पिंजरे के पछी न बनते तो पुन विमलापुरी कैसे पहुँचते? मेरी इस बुराई मे भी भलाई निकल आई।"

इसके बाद गुणावली ने कुछ गम्भीर होकर पुन कहा—

"स्वामी! जब आप कुक्कुटरूप मे थे तब मैं मानवी होकर भी विहगी थी। मैं भी तो वीरमती के कष्टो मे तडपती रही।

जब आप शिवमाला के साथ चले गये, उसके बाद तो वीरमती ने मेरी बहुत दुर्दशा की। आपके निजरूप मे आने के बाद ही मैं मनुष्य बन पाई हूँ। उफ् ! ऐसी दुष्टा सास विधाता किसी को न दे।"

राजा चन्द्र ने भी गम्भीर होकर कहा—

"प्रिये ! तुम्हें स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता नही है। तुम्हारी प्रीति और पति-भक्ति मे सन्देह करना सूर्य मे शीतलता देखने के समान है। तुम तो मेरी प्राणेश्वरी हो। मेरे अन्त पुर की भी तुम साम्राज्ञी हो। आभापुरी का राज्य मैं सम्हालूंगा और महलो का गृह-राज्य तुम सम्हालोगी। अपनी बहिनो से चाहे जैसा काम लो।"

इसी तरह कभी-कभी प्रेमला और राजा चन्द्र मे बातें होती रहती। एक दिन प्रेमला ने कहा—

"स्वामी ! विवाह के बाद रगमहल मे चोपड खेलते समय आप कह रहे थे कि आभापुरी मे बडे अच्छे क्रीडा भवन हैं, वहां के चौपड भी बहुत अच्छे है। आपने गगाजल की भी बहुत प्रशसा की थी। सो एक दिन भी न तो आपने चोपड का खेल दिखाया और न कभी गगाजल ही पिलाया।

राजा चन्द्र ने विनोद मे कहा—

'प्रिये प्रेमला ! तुम्हारा प्रेम जल तो मुझ गगाजल से भी ज्यादा अच्छा लगता है और तुम सब रानियो को पाकर मैं अब चौपड भी भूल गया हूँ। हम तुम अकेले होते तो जरूर चौपड खेलते। मेरे लिए तो तुम्ही सब चौपड हो।"

इसी तरह हंसी-खुशी से दिन बीत रहे थे। एक दिन राजा

चन्द्र ने विशेप सभा का आयोजन किया। नगर के प्रतिनिधि और गण्यमान्य नागरिको को बुलाया गया। प्रजा के आम लोग भी एकत्र थे। राजा चन्द्र ने वृक्ष कोटर मे बैठकर विमलापुरी जाने, प्रेमला से कनकध्वज बनकर विवाह करने, वीरमती द्वारा मुर्गा वनने से लेकर अब तक का ममस्त इतिवृत्त सबको सुनाया। सभी लोग चकित और हर्पित हुए। राजा चन्द्र ने शिवकुमार नट, नटकन्या शिवमाला तथा अन्य नटो के प्रति भी अपना आभार प्रकट किया। यद्यपि राजा चन्द्र पहले ही शिवकुमार नट को इतना धन दे चुके थे कि वह छोटा-मोटा राजा ही बन गया था। इनके अतिरिक्त उन्होने इस वार भी उसे सम्मानित और पुरस्कृत किया। इस विशेप सभा मे वे सातो राजा भी आये थे, जो अपने सात हजार सैनिको को लेकर कुक्कुटरूपी राजा चन्द्र की रक्षा मे सदा साथ रहते थे। राजा चन्द्र ने उन्हे भी सम्मानित किया।

राजा चन्द्र का यश चारो ओर फैल गया। आभापुरी की प्रजा उन्हे अपना पिता मानती थी और वे प्रजा को अपनी सतान मानते थे। रनिवास मे भी राजा चन्द्र को स्वर्गोपम सुख प्राप्त था। उनकी सभी रानियाँ तरह-तरह से उनको सुख प्रदान करती थी। कोई तेलमर्दन करती, कोई उवटन करती, कोई उन्हे गाना गाकर सुनाती और कोई उन्हे चुटकुले सुनाती थी। कोई कोई काव्य-समस्या और पहेलियो से उनका मनोरजन करती थी। ऐसा लगता था, मानो राजा चन्द्र देवराज इन्द्र हैं और उनकी रानियाँ देवागनाएँ है।

यो तो सभी रानियो मे परस्पर प्रीति थी, पर गुणावली और प्रेमला मे अत्यधिक प्रेम था। वे कभी अलग न होती थी,

सदा साथ रहती थी। कोई भी अनजान व्यक्ति उन्हे निस्सन्देह बहिने ही समझ सकता था। राजा चन्द्र की भी दोनो मे समान प्रीति थी।

अपने-अपने क्रम से दिन, सप्ताह, मास और वर्ष के रूप मे दिन गुजर रहे थे। समय बदल रहा था—आगे भी बढ रहा था, पर बदलने और आगे बढते समय की गति मालूम नही पडती थी। सुख के दिनो मे दिनो का बीतना कौन जान पाता है?

× × ×

एक दिन गुणावली ने रात्रि के अन्तिम प्रहर मे शुभ स्वप्न देखा। देवलोक से च्युत होकर किसी देव का जीव गुणावली के गर्भ मे स्थित हुआ। पट्टमहिषी गुणावली गर्भवती हैं, यह जानकर राजा चन्द्र बहुत ही प्रसन्न हुए। नौ मास पूरे करने के अनन्तर उसने एक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र क्या था, राजमहलो का उजाला था। बडी धूमधाम से उसका जन्मोत्सव मनाया गया। राजपुत्र का नाम रखा गया—'गुणशेखर'।

गुणावली के बाद शुभस्वप्न देखकर प्रेमलालच्छी ने भी गर्भ धारण किया और उसने भी एक सर्वांग सुन्दर पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम रखा गया—'मणिशेखर'। पांच धायो के सरक्षण मे दोनो कुमारो का लालन-पालन होने लगा। दोनो की जोडी राम-लक्ष्मण की-सी जोडी थी माताओ के गुण और पिता का रूप और गुण—दोनो कुमारो मे समाहित थे। राजा चन्द्र जब उन्हे देखते तो ऐसा अनुभव करते कि मेरा बचपन दुगुना होकर ही मेरे आंगन मे खेलता है।

गुणशेखर और मणिशेखर माता-पिताओ को ही प्रिय नहीं थे, आभापुरी की समस्त प्रजा की आंखो के भी तारे थे। जब

भी वे घोडे पर सवार होकर निकलते तो लोग उन्हे देखने ही रह जाते । यथासमय दोनो कुमार शस्त्र-शास्त्र की विद्याओ मे भी पारगत हो गये । इधर ये दोनो कुमार वृद्धि को प्राप्त होते जा रहे थे, उधर राजा चन्द्र का राज्य भी दिनोदिन बढ़ता जा रहा था । भरत क्षेत्र के तीनो खण्डो मे उनका यश-सौरभ फैला हुआ था । अनेक राजाओ ने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली थी । पूर्व पुण्यो के प्रताप से राजा चन्द्र सुख वैभव और ऐश्वर्य मे झूल रहे थे । ससार मे सुखी रहने के लिए जो कुछ चाहिए, वह सब उन्हे प्राप्त था । सुन्दर स्वस्थ शरीर, प्रीतिमती मात सौ दो रानियां, विस्तृत राज्य, अनेक देशो व राज्यो के सरक्षक सम्राट, दूर-दूर तक यश का विस्तार और अपने ही अनुरूप सुयोग्य, सुन्दर और गुणवान पुत्र । और चाहिए भी क्या ?

राजा चन्द्र की धर्म मे निष्ठा थी । वे नित्य दान करते थे । नगर मे अनेक दानशालाएँ उनकी ओर से खुली हुई थी । एक तरह से वे चतुर-कुशल व्यापारी भी थे, क्योकि अपने पुण्यो की पूंजी भी निरन्तर बढाते जा रहे थे । मध्यम श्रेणी का व्यापारी अपनी पूंजी सुरक्षित रखता है, न घटाता है और न बढाता है । अधम श्रेणी का व्यापारी गांठ की पूंजी को भी गंवा देता है, और उत्तम श्रेणी का व्यापारी अपनी पूंजी अधिकाधिक बढाता है । अपने पुण्यो की पूंजी बढाने वाले राजा चन्द्र उत्तम कोटि के व्यापारी थे, उनकी धर्मनिष्ठा का प्रभाव उनके पुत्रो पर भी था ।

राजा चन्द्र अपने भोगावली कर्मोदय के परिणामस्वरूप सुखो का भोग कर रहे थे । राजा-प्रजा सभी सुखी थे । आभापुरी आदर्श नगरी थी, वहां की राजभक्त प्रजा आदर्श प्रजा थी और सुशासक राजा चन्द्र आदर्श नृपति थे ।

: १० :

आभापुरी के बाहर कुसुमाकर नाम का राजोद्यान है। यदा-कदा और विशेष रूप से वसन्तोत्सव के दिन राजा चन्द्र अपने परिवार सहित यहां आते हैं। वसन्तोत्सव वाले दिन तो पूरी, नगरी ही यहां आती है। हर तरह से यह राजोद्यान राजा चन्द्र का है, फिर भी यहां उनका साम्राज्य नही है, यहां शान्ति का साम्राज्य है। विटपी पर बैठने वाले पक्षीगण ही यहां की प्रजा है। जब विहगो का कलरव होता है, तभी शान्ति और नीरवता की उपस्थिति का भान होता है। इसमे सफल और छायादार वृक्ष है, जलविहार-कुण्ड और वापियां हैं और पचरंगी फूलो की क्यारियां भी हैं। उद्यान के बीचोबीच प्रस्तर निर्मित रथ-पथ बना हुआ है जो आगे चलकर धनुषाकार हो जाता है। इसी पथ पर एक पुराना आम्रवृक्ष भी है, जिस पर बैठकर गुणावली वीरमती ने विमलापुरी को गमन किया था।

आज का दिन धन्य है, क्योकि राजोद्यान मे अशोक वृक्ष के नीचे मुनिवर सुव्रतस्वामी विराजमान हैं। उद्यानपाल ने मुनि के पदार्पण की सूचना राजा चन्द्र को दी। यह शुभ सवाद सुनते ही आभानरेश ने अपना बहुमूल्य हार वनरक्षक को पुरस्कार मे दे दिया। राजा ने मुनि आगमन की घोषणा नगर मे करवा दी। प्रसन्नता का ज्वार उमड आया। राजोद्यान की ओर नर-नारियो की नदी प्रवाहित हो चली। राजा चन्द्र भी सपरिवार

कहते है। सभी के पास यह षट्सम्पत्ति है। अपनी सम्पत्ति को पहचानो। फिर तुम्हारे बराबर धनी कौन है ?

"सदैव याद रखो, ससार अनित्य है, एकमात्र धर्म ही नित्य है। ससार त्याग करने के लिए श्रमण-मुनि बनकर वन मे जाना ही पर्याप्त नही है। वास्तविक त्याग मन से होता है। मन से त्याग होते ही फिर चाहे ससार मे रहो या वन मे एक ही बात है। मन मे त्याग न होने पर, वन मे जाने पर भी ससार साथ-साथ जायेगा और सब भोग भोगायेगा। बच नही पाओगे।

"उपदेश तो कितने ही सुने हैं, पर उसका कुछ अश भी जीवन मे न पाल सको तो हजार उपदेश देने पर ही सब निष्फल है। कोई दूसरा तुम्हारे लिए कुछ भी नही कर सकेगा, खुद को ही करना होगा।"

मुनिसुव्रत स्वामी का उपदेश सुनकर सभी को बडा आनन्द हुआ। अनेक श्रोता प्रतिबुद्ध हुए। अनेक ने श्रावक व्रतो को धारण किया। कुछ चिकने घडे भी रहे। उन पर कोई प्रभाव नही हुआ। राजा चन्द्र के हृदय मे छिपा वैराग्य बीज अकुरित हो गया। बस, अब तो लहलहाते वृक्ष बनने की ही देर थी। उन्होने निश्चय किया—'अब तक बहुत भोग भोग लिये। पिंजरे का पछी बनकर सोलह वर्ष तक मारा-मारा फिरता रहा और सात सौ रमणियो के साथ काम-भोग तथा ऐश्वर्य का भोग भी खूब भोगा। अब तो गुरु की शरण मे जाकर आत्म-कल्याण ही करना चाहिए।

विचार करते-करते राजा चन्द्र को अपना पूर्व भव जानने की जिज्ञासा हुई। उन्होने विनयी भाव से केवली प्रभु से पूछा—

"प्रभो ! मैंने पूर्व भव मे ऐसा कौन-सा पाप किया था, जिसके उदय से मैं सोलह वर्ष तक पिंजरे का पछी बनकर मारा-मारा फिरता रहा ? किस पुण्य प्रभाव से मैं पुन मनुष्य बना ? मेरी विमाता मुझसे वैर क्यो रखती थी ? प्रभो ! मुझे यह देवोपम ऐश्वर्य भी क्योकर प्राप्त हुआ ? भगवन् ! मेरी जिज्ञासा शान्त करके मुझे कृतार्थ कीजिए ।"

राजा चन्द्र के सब प्रश्नो को सुनने के बाद महामुनि कुछ क्षणो तक शान्त रहे और फिर बोले—

"राजन् ! यह जीव अनादि काल से बधे कर्मों का भोग भोगने के लिए जन्म-मरण के चक्कर मे घूमता चला आ रहा है, यथा—पुनरपि जननं पुनरपि मरण पुनरपि जननी जठरे शयनम् । अत अपने वर्तमान जीवन को देखकर व्यक्ति को अपने पूर्वकृत शुभाशुभ कर्म बधो का अनुमान अवश्य हो जाता है । क्योंकि कर्म का यह शाश्वत नियम है—

याद्दशं क्रियते कर्म, ताद्दश भुज्यते फलम् ।
याद्दशमुप्यते बीजं प्राप्यते ताद्दशं फलम् ॥

"अर्थात् जैसा कर्म किया जाता है, वैसा ही उसका फल मिलता है । जैसा बीज बोया जाता है, (उसके वृक्ष से) वैसे ही फल की प्राप्ति होती है ।

"आभा नरेश ! तुम स्वय, तुम्हारी पत्नियाँ, माताएँ तथा कोढी राजकुमार कनकध्वज आदि सभी पूर्वकृत कर्मों के कारण इस भव मे एक दूसरे से जुडे—निकट आये और पूर्वकृत कर्मों के कारण ही सुख-दुख सहे । कर्म किसी को नही छोडता । वह कैसा निर्मम और चमत्कारी है, यह सब तुम्हे अपना पूर्व भव सुनने के बाद स्पष्ट हो जायगा । मैं तुम्हे तुम्हारा पूर्व भव सुनाता हूँ ।

बडी प्रेरणाप्रद कहानी है, तुम सबके पूर्वभव की। ध्यान देकर सुनो।"

सभी श्रोता दत्तचित्त होकर मुनि द्वारा सुनाई जा रही कहानी सुनने लगे।

× × ×

भारत क्षेत्र मे वैदर्भ देश बडा ही सुरम्य, उपजाऊ, धन-धान्य से भरा पूरा और अत्यन्त समृद्ध था। इस देश की राजधानी थी तिलकपुरी। तिलकपुरी अलकापुरी-सी सुन्दर और सुहानी नगरी थी। यहां बडे धनी और समृद्ध श्रेष्ठी रहते थे। इनके भवन बडे सुन्दर दर्शनीय और विशाल थे। बाग-बगीचे, उद्यान, सरोवर, अच्छे भवन, चौडे राजमार्ग, शोभा-सम्पन्न बाजार, देवमन्दिर, पूजागृह, पौषधशालाएँ, पाथागार, दानशालाएँ आदि सभी कुछ था तिलकपुरी मे।

वैदर्भ देश के राजा मदनप्रभ राजनगरी तिलकपुरी मे रहकर सन्तानवत् अपनी प्रजा का पालन करते थे। वे बडे न्यायपरायण राजा थे। उनकी पटरानी थी कनकमाला, जो विदुषी और पतिव्रता नारी थी। इन्ही की कोख से एक कन्या का जन्म हुआ, जिसका नाम तिलकमजरी रखा गया था। राजकन्या तिलकमजरी माता पिता की अकेली सन्तान थी, इसलिए बहुत प्यारी थी।

राजा मदनप्रभ के मन्त्री थे, सुबुद्धि, जो बहुत ही बुद्धिमान, दूरदर्शी और शासन प्रशासन मे राजा मदनप्रभ के दाहिने हाथ थे। इनके भी रूपमती नाम की एक पुत्री थी।

राजकन्या तिलकमजरी और मन्त्रिकन्या प्रीतिमती मे अनन्य प्रीति थी। वे देखने पर जुडवां बहनें-सी लगती थी। दोनो के

रूप रग और आकृति मे भी काफी साम्य था। लगता ऐसा था कि—

एक साथ दो रति, दो उर्वशी अथवा दो शचियाँ धरा पर अवतीर्ण हुई है। जुडवा बहने होना तो दूर पर वे तो दूर के रिश्ते की बहनें भी नही थी। पर उनके प्रगाढ प्रेम, एक दूमरे के लिए त्याग, अपनत्व आदि को देखकर वे सगी बहनो से भी बढ कर थी।

बचपन मे दोनो ही साथ-साथ खेली, साथ ही पढी और अब युवती होने पर भी साथ-साथ ही रहती थी। कभी रूपमती सवेरे मे शाम तक तिलकमजरी के आवास पर रहती और कभी तिलकमजरी रूपमती के पास ही रात को भी मोती। प्रेमवश वे कभी एक दूमरे से अलग होना नही चाहती थी।

"सखी रूप! फिर जाने हम कब मिलेंगी? एक न एक दिन तो हमे बिछुडना ही है। तू अपने पति के साथ जायेगी और मैं अपने के साथ।"

रूपमती बोली—

"सखी तिलक! इसका भी उपाय है। तूने तो मोचा नहीं, पर मैंने सोच लिया है। बोल, तू मानेगी मेरी बात?"

"अरी मानूंगी क्यो नही?" तिलकमजरी ने कहा—"जो मैं चाहती हूँ, यही तो तेरी बात है। फिर तेरी बात क्यो नही मानूंगी?"

"तो सुन।" रूपमती ने कहा—"हम आज यह प्रतिज्ञा करें कि एक ही पति की पत्नियाँ बनेंगी। अर्थात् जिसके साथ तेरा

विवाह हो, उसी के साथ मैं विवाह करूँ और जिसके साथ मेरा विवाह हो, उसी के साथ तू करे।"

यह सुनते ही तिलकमजरी रूपमती के कण्ठ से लिपट गई। बोली वह—

"बडी चतुर है तू ! पर मौत पर किसका वश है ? क्या मौत भी हमे अलग नही करेगी ?"

रूपमती बोली—

"मरने के वाद तो आँखें खुल जाती है। फिर इस स्वप्नवत् ससार का सुख दुख किसी को नही व्यापता। जैसे स्वप्न के सुख-दुख, मिलन-विछोह स्वप्न मे ही यथार्थ लगते हैं और जागने पर कही कुछ नही रहता, वैसे ही तू मरने के वाद की चिन्ता मत कर।

"सखी तिलक ! फिर भी तेरे सतोप के लिए कहती हूँ कि इस भव का प्रेमवध अगले भव मे भी मिलता है। मृत्यु के वाद अगले जन्म मे भी हम निकट ही रहेगी।"

वात मे से वात निकलती ही है। अव प्रसग दूसरा आ गया था। तिलकमजरी वोली—

"रूप सखी ! तेरी ये जन्म-पुनर्जन्म की अनदेखी वातें कैसे सच मान लूं ? तुझे तो धर्म की बीमारी लग गई है। जब भी कोई प्रसग हो तू आत्मा, पुनर्जन्म, मोक्ष आदि की अटपटी वातें ही करती है। किसने देखा है परलोक ?

"रूप यदि तेरी वातें मैं सच भी मान लूं तो वीते पर क्या सोचना ? पूर्वभव बीती वात है। उस पर विचार करने से क्या लाभ ? पर-भव आगे का भविष्य है। उसकी भी क्यो चिन्ता की जाए ? हमे तो वर्तमान ही देखना चाहिए।"

"बस, यही हम एक नही हैं।" रूपमती ने तिलकमंजरी से कहा—"इसका अन्त इसी पर है कि यदि धर्म 'है' तो एक दिन तुझे मेरी बात माननी पडेगी और यदि तेरी धारणाएँ सत्य हैं तो मैं मान लूंगी। तब तक के लिए वाद-विवाद बन्द।"

"अच्छा बन्द।" तिलकमंजरी बोली—"अब तो विवाह की बात पक्की रही। हम एक वृक्ष की लताएँ बनेंगी। फिर तो हमारा निर्णय हमारे पति ही किया करेंगे। अब चल उठ। उद्यान चलती है। मौसम अच्छा है। आज झूला झूलेंगी।"

फिर दोनो सखियां रथ मे बैठ उद्यान को चली गई।

× × ×

तिलकमंजरी और रूपमती मे बहुत कुछ साम्य होते हुए भी एक स्थान पर दोनो मे छत्तीस का सम्बन्ध था। मन्त्रिकन्या रूपमती निर्ग्रंथ धर्म की उपासिका, साधु-साध्वियो की सेविका उत्तम श्राविका और धर्मनिष्ठ थी। इसके विपरीत राजकन्या तिलकमंजरी के लिए तो धर्म एक ढकोसला और पाखण्ड था। इसी बात को लेकर दोनो मे विवाद भी खूब होता था। पर इस तर्क वितर्क के बावजूद भी दोनो के प्रेम मे कोई अन्तर नही आता था। अब यह विवाद पुराना पड गया था, इसलिए दोनो ही अब पिष्टपेषण मे अपना समय बर्बाद नही करती थी।

एक बार कही से विहार करते हुए कुछ साध्विका तिलकपुरी मे आई। वे नगरी की पौषधशाला मे ठहरी।

एक दिन राजकन्या तिलकमंजरी अपनी सखी मन्त्रिकन्या के घर पर ही थी। तभी दो साध्वियां उसके घर भिक्षा के लिए आई। श्राविका रूपमती ने दोनो साध्वियो को बहुमानपूर्वक

आहार वहराया। जब वे चली गईं तो तिलकमजरी ने रूपमती से कहा—

"रूप ! तू जानती है ये साध्वियाँ कौन होती हैं ? मैं बताती हूँ तुझे। समाज और कुल से बहिष्कृत वे स्त्रियाँ जिनके खाने-पीने का कोई ठिकाना नही होता, वे ही साध्विया बन जाती है। मुफ्त का माल उडाना और तुझ जैसी भोली स्त्रियो को फुसलाना ही इनका काम होता है। तू इन निठल्लियो को क्यो खिलाती है ? इतना ही नही ।"

"बस-बस-बस।" अपने दोनो कानो पर हाथ रखते हुए रूपमती ने तिलकमजरी को आगे कहने से रोकते हुए कहा—"तू नही जानती इनको। मैं जानती हूँ। तूने इनके बारे मे जो कुछ कहा है, वह अपनी कल्पना से ही कहा है। मैं अपने अनुभव की बात कहती हूँ।

"सखी ! राजकन्याएँ तथा श्रेष्ठि पुत्रियाँ भी सैकडो हजारो की संख्या मे साध्वियाँ है। अनेको राजा भी निर्ग्रंथ श्रमण हैं। ये क्या मुफ्त का माल उडाने के लिए साधु बनते हैं ?

"अरी पगली ! महाव्रतो का पालन करना अंगारो पर चलना है। महाव्रतो के पालन करने वाले ये श्रमण-श्रमणियाँ घोर तपस्वी होते हैं। शरीर चलाने के लिए ही भोजन करते हैं। भिक्षा मे जैसा आहार मिल जाए, वैसा ही खाते हैं। सभी इन्द्रियो को वश मे करने वाले सयमी धन्य है। सच पूछो तो इन्ही का जीवन सार्थक है। मैं तेरी बातो मे कभी नही आ सकती। आज के बाद कभी इनकी निन्दा मत करना। तू तो पाप से डरती नहीं। पर मैं तो डरती हूँ। साधु-निन्दा सुनना भी पाप है।'

रहस्यमय ढग से मुस्कराई तिलकमजरी और बोली—

"मेरे लिए पाप-पुण्य नाम की कोई चीज है ही नहीं। मैं क्यो डरूँ ? पर मैं अपनी बात पर दृढ हूँ। ये सब चोर होते हैं। भिक्षा के बहाने दिन मे मौका देख जाते है और रात को चोरियाँ करते हैं। एक दिन मैं तुझे सिद्ध करके दिखा दूंगी।"

यह कह राजकुमारी तिलकमजरी अपने घर आ गई और सोचने लगी कि एक भिखमगिनी के पीछे रूपमती ने आज मेरा अपमान किया है। मैं इस साध्वी को एक दिन नीचा दिखाऊँगी। तभी मेरी नाक ऊँची होगी।

सयोग से तिलकमजरी को एक दिन अवसर मिल गया। एक दिन वह रूपमती के आवास पर पहुँची तो रूपमती अपना टूटा हुआ मुक्ताहार पिरो रही थी। हार लगभग पूरा हो चुका था। दोनो सखियाँ बैठी बाते कर रही थी। तभी कुछ साध्वियाँ भिक्षा के लिए आ गईं। हार को वही छोड रूपमती भिक्षा लाने के लिए भीतर चली गई।

तिलकमजरी ने मौका देखकर रूपमती का हार एक साध्वी की शाटिका (साडी) के पल्ले मे बांध दिया। सरलमना साध्वी तिलकमजरी की इस हरकत से अनजान रही। थोडी ही देर बाद रूपमती भीतर से आहार लेकर आई। साध्वियो को आहार देने के बाद वह उनके साथ कुछ दूर तक गई। फिर जब लौटी तो उस थाल पर दृष्टि डाली, जिसमे हार था।

हार को गायब देख रूपमती ने तिलकमजरी से मुस्कराकर कहा—

"तुझे पसन्द है तो तू ही ले ले मेरा मुक्ताहार। पर ऐसे छिपाती क्यो है ?"

"अरे तो मैं तेरा हार चुराऊँगी ?" तिलकमजरी ने उत्तेजित स्वर मे कहा—"मैं ऐसा मजाक कभी नही करती।"

कुछ घबराकर बोली रूपमती—

"तो फिर कहाँ गया मेरा हार ? मैंने तो यही समझा था कि तूने मजाक मे छिपाया होगा। फिर तो क्या उसे धरती ही निगल गई ? मेरी तो कुछ समझ मे नही आता ?"

तिलकमजरी बोली—

"धरती क्यो निगल जाती ? चुराने वाला चुराकर चला भी गया।

"अरी पगली ! मैं तो पहले ही कहती थी कि ये सफेद कपडे जो साध्वियाँ घूमती है, वे बडी चोर होती हैं। पर तू इन्हे जाने क्या समझती है ? मेरी आँख बचाकर साध्वी ने जो हार चुराया था। मैं चुपके से देखती रही, पर तेरे डर से नही बोली। मैं कुछ कहती तो तू ही कहती कि मेरी गुरुणी साध्वी पर इल्जाम लगाती है, अब पकड उन्हे।

'तिलक ! मै तेरी बात स्वप्न मे भी नही मान सकती।" चाहे कोई देव-व्यन्तर हार उठाकर ले गया हो। पर मैं यह मानने को तैयार नही हूँ कि साध्वी ने हार चुराया है।"

"तू मानेगी रूप, अवश्य मानेगी।" तिलकमजरी ने दृढता के साथ कहा—'चल मेरे साथ। उपाश्रय चलती हैं हम दोनो। साध्वी के पास से ही हार बरामद कराऊँगी। मैंने अपनी आँखो से उसे चुराते देखा है। आज चोर को रंगे हाथो पकडकर बताती हूँ।'

तिलकमजरी ने रूपमती को हाथ पकडकर उठाया। रूपमती उसके साथ चल नही रही थी पर जोरजबर्दस्ती तिलक-

मजरी ने उसे उठाया और दोनो उपाश्रय पहुँची। उसी समय दोनो साध्वियाँ भी गोचरी करके लौटी थी। मुख्य साध्वी ने रूपमती से कहा—

"श्राविके! तुम कुछ देर बाहर बैठो। हम भोजन आहार ले लें।"

आहार एकान्त मे ही लिया जाता है। इस श्रमण नियम का स्मरण कर रूपमती बाहर जाने लगी तो तिलकमजरी ने उसका हाथ पकडकर कहा—

"कहाँ जाती है रूप? फिर तो यह छिपा देगी हार को। पहले इसकी तलाशी लेनी है।"

इस तरह बरबस रूपमती को रोकने के बाद तिलकमजरी ने साध्वी से रूखे स्वर मे कहा—

"साध्वीजी! इस बेचारी का हार तो दे दो। साध्वी होकर हार चुराते तुम्हे शर्म नही आई?" वेशकी लाज

"हार? कैसा हार?" साध्वी ने आश्चर्य मिश्रित क्षोभ के साथ कहा—"सयम लेने से पहले राजकुमारी हमने बहुत हार पहने। अब तो उधर दृष्टि भी नही जाती। तुम्हे भ्रम हुआ है। सोने-मिट्टी मे हमारे लिए कोई भेद नही है।"

"मैं रूपमती नही हूँ जो तुम्हारी बातो मे आ जाऊँगी।" तिलकमजरी ने कडककर कहा—

"मैने अपनी आँखो से तुम्हे हार चुराते देखा है। यदि नही दोगी तो मैं पूरी नगरी के सामने तुम्हारी करतूत का बखान करूँगी। तब तुम्हे बहुत नीचा देखना पडेगा।"

राजकुमारी की इस भर्त्सना से साध्वी को अपार पीडा हुई। उसने अपने भिक्षा पात्र उसके सामने रख दिये और कहा—

"ये सब देख लो।"

राजकुमारी ने साध्वी के सभी पात्र देखने का नाटक किया और कपड़े भी टटोले। फिर जहाँ उसने हार बांधा था, साड़ी के उस छोर को पकड़कर कहा—

"देखो इसमे बंधा है। यह रहा।"

हार खोलकर तिलकमंजरी ने रूपमती के सामने रख दिया और साध्वी की बार-बार भर्त्सना की। साध्वी ने कहा—

"मैं इससे बिल्कुल अनजान हूँ कि मेरे वस्त्र मे हार कैसे बंध गया? अब तुम मानो या न मानो, पर हार मैंने अब से पहले देखा भी नही था। यह सब कोई माया है?

रूपमती ने भी तिलकमंजरी से कहा—

"तिलक! यह अच्छी बात नही है। तूने नाहक ही साध्वी जी का अपमान किया है और उन पर झूठा आरोप लगाया है। जिस नाटकीय ढंग से तूने हार बरामद किया है, उससे स्पष्ट है कि साध्वी निर्दोष है और कोई षड्यन्त्र इसके पीछे है?

तिलकमंजरी कुछ नही बोली। उसका चोर चेहरा फक हो गया। यद्यपि उसकी चतुराई रूपमती से छिपी नही रह सकी, फिर भी साध्वी की भर्त्सना करने से उसे सन्तोष हुआ। दोनो घर आ गई। बात समाप्त हो गई।

इधर इस झूठे आरोप से साध्वी को बड़ी आत्म ग्लानि हुई। उसने सोचा कि मिथ्यात्वी होने के कारण राजकुमारी ने जान-बूझकर मुझे चोर बनाया है। कल को यह नागरिकों के सामने भी कहेगी कि साध्वी से मैंने चोरी का हार बरामद किया है। मेरी बात कोई भी सच नहीं मानेगा। जिन-शासन की हीलना

होगी और साध्वियों के विश्वास को ठेस पहुँचेगी। इससे तो मुझे मर जाना ही अच्छा है।

साध्वी अपने संयम पथ से किंचित् भटक गई। धीरज से डोल गई। साधकों और संयमियों को लोक-प्रवाह की परवा ही नहीं करनी चाहिए। लेकिन यह साध्वी तो आर्त-रौद्र ध्यान करने लगी और भावावेश में आकर गले में फाँसी का फन्दा डाल लिया।

तभी सुरसुन्दरी संयोग से वहाँ आ गई। सुरसुन्दरी एक श्रेष्ठिकन्या थी। वह विदुषी और श्राविका थी। उसका घर तिलकपुरी में उपाश्रय के निकट ही था। जब वह उपाश्रय में पहुँची तो साध्वी को फाँसी लगाते देखा। झटपट उसने साध्वी को पकड़ लिया और उसका पाश खोलकर उससे पूछा—

"साध्वी होकर आप यह क्या कर रही थीं? क्या आप नहीं जानतीं कि आत्म-हत्या पाप है। महापाप है!

साध्वी ने आँसू बहाते हुए पूर्ण घटना सुरसुन्दरी को सुनाई और फाँसी लगाकर मरने का कारण समझाया। श्राविका सुरसुन्दरी बड़ी गम्भीर व बुद्धिमती थी, उसने साध्वी को धैर्य बँधाया और अनेक प्रकार से समझा कर उसके विवेक को जागृत किया। बच गई साध्वी। पर दूसरे ही दिन उसने तिलकपुरी नगरी से अन्यत्र विहार कर दिया। उसका अन्तर मन पीड़ित व संतप्त था।

समय बीतता रहा। साध्वी द्वारा तथाकथित चोरी की बात तिलकमंजरी और रूपमती दोनों के ही मन-मस्तिष्क में निरन्तर रही। दोनों के माता-पिता दोनों के लिए अलग-अलग वर की

खोज मे थे। अपनी पुत्रियो की प्रतिज्ञा की बात उन्हे मालूम न थी।

उन्ही दिनो वैराट नामक देश मे जितशत्रु नाम के राजा राज्य करते थे। वहत्तर कलाओ मे पूर्ण पारगत उनके शूरसेन नाम का एक पुत्र था। वह युवा और रूपवान था। राजा जितशत्रु भी अपने इस पुत्र के लिए सुयोग्य राजकन्या की खोज मे थे। उनका मन्त्री इसी आशय से तिलकपुरी आया। सब विधि योग्य अनुकूल देख जितशत्रु के मन्त्री ने राजा मदनप्रभ से शूरसेन के लिए तिलकमजरी की माँग की।

घर बैठे सुन्दर सुयोग प्राप्त हो गया था। अत राजा मदनप्रभ ने शूरसेन को अपना जामाता बनाना स्वीकार कर लिया और तिलकमजरी की सम्मति माँगी तो उसने कहा—

"यदि मेरी सखी रूपमती भी यह विवाह स्वीकार करे तो मुझे यह ब्याह मजूर है। हम दोनो ने एक ही पुरुष के साथ विवाह करने का निश्चय किया है।"

इस सम्बन्ध के लिए महामन्त्री सुबुद्धि को भी क्या आपत्ति होती? रूपमती तो तैयार ही थी।

तिलकमञ्जरी और रूपमती—दोनो का विवाह वैराट देश के राजकुमार शूरसेन के साथ सानन्द सम्पन्न हो गया। अनेक हाथी, घोडे रत्नादि के साथ शूरसेन दोनो पत्नियो को साथ लेकर अपने देश चला गया।

कुछ दिन अच्छे बीते। तिलकमञ्जरी और रूपमती—दोनो सखियो मे काफी हेल-मेल रहा। पर अब उनकी सखियो वाली भावना लोप हो गई थी और सौत वाली भावना उग्र होने लगी।

सौतिया डाह तो लोक मे प्रसिद्ध है ही । सौत मौत से भी बढकर होती है । तिलकमजरी और रूपमती प्रेम सरिता मे अवगाहन करने वाली अनन्य सखियाँ थी और अब ईर्ष्याग्नि मे जलने वाली सौतें ।

शूरसेन दोनो को साधकर चलता था । उसकी भी बडी बुरी हालत थी । एक को मनाता तो दूसरी रूठ जाती । अन्त मे उसने खीझकर दोनो को दोनो के हाल पर ही छोड दिया । दोनो के भवन अलग-अलग थे—दास-दासी भी अलग-अलग । पर पति तो एक था, सो ईर्ष्या समाप्त नही हुई । जब भी अवसर मिलता एक दूसरे को नीचा दिखाने और व्यग्य वचन कहने मे कोई नही चूकती थी ।

एक बार तिलकपुरी के राजा मदनप्रभ की राजसभा मे एक चिडीमार एक सुन्दर मैना लेकर आया । वह मैना मानवी भाषा बडी अच्छी बोलती थी । उसे अनेको शास्त्रोक्तियाँ और श्लोक भी याद थे । राजा ने पर्याप्त—मुँह माँगा द्रव्य देकर वह मैना चिडीमार से खरीद ली ।

अपनी बेटी पर बहुत प्यार करते थे राजा मदनप्रभ, सो लाल आँखो वाली वह मैना उन्होने अपनी बेटी तिलकमजरी के पास भेज दी । पिता की यह अनुपम भेट पाकर तिलकमजरी बडी प्रसन्न हुई । अब उसका अधिकाश समय मैना के साथ ही बीतता था । वह उसे मेवा खिलाती । उसके लिये सोने का सुन्दर सा पिंजडा बनवाया और उसी के साथ अपना जी बहलाती रहती ।

एक दिन रूपमती भी तिलकमजरी की मैना से बातें करके अपना मन बहलाने लगी । तभी तिलकमजरी भी वहाँ आ गई

और उसके हाथ से मैना का पिंजड़ा झटक लिया तथा व्यंग्य
बोली—

"इस पर तेरा क्या अधिकार है ? यह हमारे पति की नही है, बल्कि मेरे पिता की मेरे लिए भेजी गई भेंट है। ऐसा ही शौक है तो अपने पिता से अपने लिए दूसरी मैना मँगवाले।"

रूपमती को बात लग गई। तिलकमंजरी से कुछ न कह उसने एक दूत तिलकपुरी अपने पिता के पास भेजा और उसे अपना पत्र भी दिया। उस पत्र मे आग्रह था कि मेरे लिए भी ऐसी सुघर सलोनी मैना भेजो, जैसी राजा मदनप्रभ ने अपनी बेटी तिलकमंजरी को भेजी है।

रूपमती भी मन्त्री सुबुद्धि की इकलौती सन्तान थी। वे भी उसे बहुत चाहते थे। बेटी का सन्देश पाकर उन्होने जंगलो और पहाडो पर मैना की खोज कराई। पर वैसी मैना नही मिली सो नही मिली। उनके भेजे चिडीमारो मे से एक चिडीमार नीले-पीले रंग की कोसी जाति की एक चिडिया ले आया। मन्त्री सुबुद्धि ने कोसी जाति की वही सुन्दर-आकर्षक चिडिया रूपमती के पास भेज दी। उसे वह चिडिया बहुत पसन्द आई। क्योकि रूपाकर्षण मे उसने तिलकमंजरी की मैना को पछाड दिया था।

रूपमती ने एक विशेष रक्षक कोसी चिडिया की देख-भाल के लिए नियुक्त कर दिया था। उसने भी उसके लिए सोने का पिंजड़ा बनवाया। लेकिन रूपमती की चिड़िया तिलकमंजरी की मैना की तरह मिठबोली नहीं थी।

एक दिन तिलकमंजरी और रूपमती अपने-अपने पक्षियों को सामने सामने बैठी थीं। दोनो के दास-दासियाँ भी वहाँ थे। ...ी ने अपनी चिड़िया के रूप की शेखी मारते हुए कहा—

'मेरी कोसी की पतली-सी पूंछ ही इतनी सुन्दर है कि तेरी मैना न्यौछावर हो जाये। इसकी चोंच मे भी तुलना करके देख ले। इसका रंग कैसा नीला-पीला सलोना है।"

"रूप की क्या है। बात तो गुण की है।" तिलकमजरी ने कहा—"अगर तुलना ही करने बैठी है तो इसके बोलने की तुलना कर।"

फिर तिलकमजरी ने अपनी मैना से बुलवाया तो उसने तिलकमजरी के सभी प्रश्नो का उत्तर बडे मीठे स्वर मे दिया। तिलकमजरी के पक्ष की दासियो ने ताली पीटकर हर्ष प्रकट किया।

रूपमती की कोसी चिडिया तो बोलना जानती ही न थी। बोलती भी तो अपनी भाषा मे टें-टें ही करती। मानववाणी सीखने मे वर्षों लगते है। अत जब रूपमती ने अपनी चिडिया को बोलने को उकसाया तो वह कुछ नही बोली। बहुत कोशिश करने पर भी रूपमती असफल रही। इस पर तिलकमजरी ने उसका खूब मजाक उडाया।

खिसिया गई रूपमती। उसे भोली-भाली चिडिया पर बडा क्रोध आया। इतने दास-दासियो मे इसने मेरी बे-इज्जती कराई है, इस क्षोभ से क्रुद्ध होकर उसने कोसी को पिंजडे से बाहर निकाला और उसके पख नोचने शुरू कर दिये। कोसी को पालने वाले रक्षक ने रूपमती को बहुत रोका, बहुत समझाया और कहा कि इस मासूम निरपराध पक्षी को मत मारो। पर क्रोध मे पागल बनी रूपमती ने एक न सुनी और पख नोचकर कोसी को दूर फेंक दिया। बेचारी तडपती रही। सोलह प्रहर तक तडपने के बाद उस पक्षिणी ने आर्त-रौद्र ध्यान मे प्राण त्यागे।

जिस समय कोसी तड़पते हुए अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रही थी, उस समय रूपमती की दासी ने नमस्कार मंत्र चिड़िया को नवकार मन्त्र सुनाया। अन्त समय में महामन्त्र सुनने और उस पर आदर के कारण पक्षिणी के जीव ने शुभ आयुष्य का बंध किया।

जब पक्षिणी मर गई तो रूपमती को अत्यधिक दुःख हुआ। बहुत पछताई वह। पर अब तो पश्चात्ताप ही था। करने वाला पहले नहीं सोचता इसीलिए फिर बाद में पछताता है। अगर पहले सोचने तो बाद में सोचने की नौबत ही न आये। रूपमती ने अपनी प्यारी कोसी का विधिवत दाह संस्कार उदास मन से किया।

इस कुकृत्य पर तिलकमंजरी ने भी रूपमती की बहुत भर्त्सना-आलोचना की। उसने कहा—

"वैसे तो बड़ी धर्मनिष्ठ बनती है और दया-दया चिल्लाती है। इसे मारते समय तेरा दया धर्म कहाँ चला गया था? बिना अपराध के एक भोले प्राणी को तूने जिस निर्दयता से मारा है, ऐसा तो मैं कदापि नहीं कर सकती। मुझे तो आश्चर्य होता है। तेरा दया व्रत ढोंग और दिखावा तो नहीं है?

बात ठीक ही थी। रूपमती मौन ही रही। कर्मबंध की विडम्बना यह थी कि कोसी के मरण में तिलकमंजरी को भी श्रेय था, क्योंकि उसने ही उसे बुलवाने के लिए रूपमती को उकसाया था। इस तरह प्रेरणा करने का तिलकमंजरी तथा जीव हिंसा करने का रूपमती ने दुस्सह कर्मों का बंध किया।

चूँकि रूपमती धर्मनिष्ठ श्राविका थी, इसलिए उसने आत्म-

ग्लानि पूर्वक प्रायश्चित-पश्चात्ताप करके अपने कर्मबंध-दृढता को कुछ हलका (शिथिल) करने का प्रयास भी किया था।

तिलकमंजरी ने एक और ढंग से कर्मबंध किया। उसने रूपमती द्वारा कोसी को मारने पर निर्ग्रंथ धर्म की निन्दा की थी कि तुम्हारा दया प्रधान निर्ग्रंथ धर्म एक ढकोसला मात्र है। अर्थात् सच-सच कहना और झूठ-झूठ करना, यही रूप है श्रमण-निर्ग्रंथ धर्म का।

तिलकमंजरी के ये वचन रूपमती को तीर से चुभते थे, पर कुछ कहने को विवश थी। उसके इस कार्य ने निर्ग्रंथ धर्म को अवहेलना का विषय बना दिया था। बड़ी युक्तियों से शूरसेन ने दोनों पत्नियों के सौतिया क्लेश को कुछ दिनों में शान्त किया।

× × ×

आभापुरी के राजोद्यान में मुनिसुव्रतस्वामी राजा चन्द तथा अन्यों को उनका पूर्व भव सुना रहे थे। यह कहानी समाप्त करने के बाद मुनिश्री ने राजा चन्द से कहा—

"राजन्! जो कोसी चिड़िया रूपमती द्वारा पंख नोचकर मारी गई थी, वह तुम्हारी विमाता वीरमती बनी। वैताढ्य पर्वत पर गगनवल्लभ नामक नगर है। वहाँ विद्याधर राजा पवनवेग राज्य करते थे। उनकी रानी थी वेगमती। वेगमती की कोख से कोसी चिड़िया के जीव ने वीरमती के रूप में जन्म लिया। वही वीरमती आभानरेश तुम्हारे पिता राजा वीरसेन की बड़ी रानी बनी।

"रूपमती ने पश्चात्ताप और प्रायश्चित से अपने कर्मबंध की गुरुता को कुछ कम किया था। अत उसने पुरुषवेद का बंध

किया । रूपमती का जीव राजा वीरसेन की दूसरी रानी चन्द्रावती की कोख से जन्मा ।

“राजन् ! पूर्व भव मे तुम्ही रूपमती थे । अब तुम राजा चन्द हो । पूर्वभव मे तुमने जिन निर्ग्रन्थ गुरु, निर्ग्रन्थ धर्म का पालन किया था और पात्रदान किया था, उसी पुण्य के कारण तुम ऐश्वर्यवान आभानरेश बने ।

‘राजन् ! रूपमती के रूप मे तुमने विमाता वीरमती को, जब वह कोसी पक्षिणी थी—सोलह प्रहर तक तड़पाकर मारा था । तुमने उसे पिंजड़े मे बन्द भी किया था । उसी का बदला उसने तुमसे लिया है । तभी तो तुम सोलह वर्ष तक ‘पिंजरे का पछी’ बन कर मुर्गे के रूप भटकते रहे । सोलह प्रहर का सोलह वर्ष हो गया । इसमे आश्चर्य कुछ भी नही । कर्म ऐसे ही प्रभावी होते है ।

“राजन् ! कोसी पक्षिणी का रक्षक इस जन्म मे तुम्हारा मत्री सुमति बना है ।”

‘राजन् ! सुरसुन्दरी नामक जिस श्रेष्ठि कन्या ने साध्वी को फांसी लगाकर मरने से बचाया था, वह तुम्हारी रानी गुणावली है । मिथ्या दृष्टि राजकुमारी तिलकमजरी इस भव मे तुम्हारी दूसरी रानी प्रेमलालच्छी है । इसने साध्वी पर मिथ्या आरोप लगाया था—हार की चोरी का आरोप । अत इस जन्म मे भी उसे सिंहलकुमार कनकध्वज को कोढी बनाने का मिथ्या आरोप लगा और उसे विष कन्या करार दिया गया ।”

“राजन् ! जो साध्वी लोकनिंदा के भय से फांसी लगाकर मरना चाहती थी, उसी साध्वी का जीव इस भव मे सिंहल का

कोढी राजकुमार कनकध्वज हुआ है। अब तुम्ही देखो कर्मों का कैसा प्रभाव होता है। फांसी खाने के प्रयास मात्र मे साध्वी को कोढी राजकुमार बनना पड़ा।"

"राजन् ! तिलकमजरी की मैना का जीव इस भव मे कनकध्वज को पालने-वाली कपिला धाय बना है। मैना के रूप मे यह जीव पारस्परिक क्लेश का निमित्त बना था। इस भव मे भी उसे उसी कार्य का निमित्त बनना पडा।"

"राजन् ! तिलकमजरी और रूपमती दोनों का पति राज-पुत्र शूरसेन इस भव मे शिवकुमार नट बना है। रूपमती की जिस दासी ने कोसी चिडिया को नवकार मन्त्र सुनाया था, वह इस भव मे शिवकुमार नट की पुत्री शिवमाला है। इसी तरह मैना का पालने वाला रक्षक इस भव मे सिहल देश का मन्त्री हिंसक बना है।"

"राजन् ! कर्म प्रेरित पूर्व भव के जीव तुम इस भव मे भी किसी-न-किसी ढग और वहाने से पुन मिले हो। कर्मनद के प्रवाह मे वरवस ही वहना पडता है। पूर्वभव के वैर-प्रीति इस भव मे भी अपना प्रभाव दिखा रहे हैं। पूर्व भव मे तुम रूपमती थे और नट कन्या शिवमाला तुम्हारी दासी थी। उसी पूर्व प्रेम-सम्बन्ध के कारण उसने तुम्हे मुर्गे के रूप मे वडे यत्न और प्यार मे रखा था। वीरमती का वैर-वर्ताव तो तुम देख ही चुके हो।

अपना पूर्व भव सुनकर राजा चन्द्र की तो जैसे आँखें खुल गईं। कर्मों की ऐसी विचित्रता देखकर वह भयभीत-सा हो गया।

पूर्व भव का वर्णन करके मुनिराज पुन बोले—

"आभापति ! कर्मों की माया कैसी विचित्र है। पूर्व भव मे

लोग इस जन्म मे कर्मानुसार फँसे जहाँ-के-तहाँ एक-दूसरे से बँध गये। किये का फल हरेक को भोगना पड़ता है। संसार में जिसने जैसा किया, वैसा फल पाया। इसलिए हर क्षण, हर समय, हर कार्य सोच-समझ कर और सजग सावधान होकर करना चाहिए। कर्ता करते समय तो हँस-हँस कर कर्म करता है और भोक्ता भोगते समय हाय-तोबा करता है। हाय-तोबा करने से परिणाम से छुटकारा कभी नहीं मिलता, बल्कि और नवीन कर्मों का बन्ध करना पड़ता है।

"प्राणियो! खूब सोच लो। धर्म और शुभ कर्म ही तुम्हारा उद्धार कर सकता है। अगर भवसागर पार करना है तो धर्म की नाव को पकड़ लो वरना जन्म-मरण मे गोते मारते रहोगे।"

मुनि की देशना और अपना पूर्वभव सुनने के बाद राजा चन्द्र को इस ससार की असारता स्पष्ट दिखाई देने लगी। उन्होंने गृह-त्याग करके दीक्षा लेने का निश्चय और भी दृढ कर लिया और अपने निश्चय को सुनाते हुए मुनि सुव्रतस्वामी से कहा—

"हे तरण-तारण प्रभो! मुझे भी इस भवसागर से पार कीजिए। यह ससार मुझे एक बन्दीगृह-सा लग रहा है। मैं भी आपकी चरण-नौका का सहारा पाकर आत्म-कल्याण करना चाहता हूँ। प्रभो मुझे चरित्र ग्रहण कराइए।"

केवली प्रभु ने आज्ञा देते हुए राजा चन्द्र से कहा—

"राजन्! जिस कार्य मे तुम्हे सुख हो, वही करो। किन्तु कार्य मे विलम्ब मत करो।

अनुज्ञा प्राप्त कर राजा चन्द्र राजमहल को लौट आये सभी रानियो तथा पुत्रो के सम्मुख अपना निश्चय सुनाया।

मोह के आवेग मे सबने राजा चन्द्र को रोकना चाहा, पर जो जाग्रत् हो चुका है, उसे कौन रोक पाता है ? अत अन्त मे सबको सहमत होना पडा ।

राजा चन्द्र ने मन्त्रियो और सभासदो को बुलाकर अपने पुत्रो को सिहासनासीन किया । गुणावली के अगजात राजकुमार गुणशेखर को आभापुरी का राज्य दिया और प्रेमलालच्छी के पुत्र मणिशेखर तथा अन्य पुत्रो को दूसरे देशो का राज्य भार सौपा । अपने सब उत्तरदायित्व से मुक्त होकर राजा चन्द्र ने दीक्षा की तैयारियाँ की । राजा चन्द्र को तैयार होते देख उनकी सात सौ रानियां, शिवकुमार नट, नटकन्या शिवमाला, मन्त्री सुमति आदि के मन मे भी दीक्षा लेने का शुभ विचार और शुभ सकल्प जाग्रत हुआ । अपने पूर्व कर्मो का चमत्कार ये सब भी तो देख चुके थे । उनके निश्चय से राजा चन्द्र और भी प्रसन्न हुए ।

गुणशेखर और मणिशेखर ने सबके दीक्षा-समारोह का आयोजन किया । सुन्दर शिविकाओ मे बैठकर दीक्षार्थी राजमार्ग से होकर कुसुमाकर राजोद्यान की ओर जाने लगे । आभापुरी के नर-नारी हर्ष-शोक के मिले-जुले वातावरण मे डूब-उतर रहे थे । राजपथ पर खडे नर-नारी आंसू बहाते हुए दोनो ओर से पुष्प वर्षा कर रहे थे ।

उद्यान के निकट पहुँचकर सभी दीक्षार्थी शिविकाओ मे उतर पडे और पैदल चलकर मुनि के समीप पहुँचे । गुणशेखर और मणिशेखर ने मुनि सुव्रत स्वामी से निवेदन किया—

"प्रभो ! हमारे पिताजी शिवसुख प्राप्त करने आपकी शरण मे आये हैं । इन्हे आप इस भव-पारावार से पार उतारिये ।"

राजा चन्द्र महाव्रतो को पालने का [illegible] फिर भी मुनि सुव्रतस्वामी ने उन्हें सावधान करते हुए [illegible]—

“राजन् ! महाव्रतो का पालन करना [illegible] आप अच्छी तरह विचार कर ले । जैसे मोम के [illegible] के चने चबाना कठिन है, उसी तरह चारित्र का पालन [illegible] कठिन है ।

“राजन् ! चारित्र ग्रहण करने के बाद भौतिक [illegible] इच्छा करना या उनकी ओर लौटना, इससे ज्यादा अच्छा यह है कि चारित्र ग्रहण ही न किया जाए ।”

मुनि की चेतावनी सुनकर राजा चन्द्र ने कहा—

“मुनिवर ! आपका कथन यथार्थ है । लेकिन मैं करूँगा, इसलिए कर सकता हूँ । मुझे करना है, इसलिए करूँगा । महाव्रतो का पालन भी मनुष्य ही करते हैं । मैं भी एक मनुष्य हूँ । मुझे अहकार बिल्कुल नही है, पर विश्वास और भरोसा है कि आपके श्रीचरणो के सहारे अवश्य तैर जाऊँगा ।”

राजा चन्द्र की दृढता से मुनिवर बहुत सन्तुष्ट हुए और उन्होने यथाविधि राजा चन्द्र को चारित्र ग्रहण कराया । राजा चन्द्र ने स्वय ही केश लुचन किया और मुनिवेश धारण करके राजर्षि चन्द्र बन गये । देवो ने पुष्पवृष्टि करके हर्ष प्रकट किया । तद-नन्तर शिवकुमार नट, नटकन्या शिवमाला, सात सौ रानियाँ, न्त्री सुमति आदि ने भी दीक्षा अगीकार की । शिवकुमार नट र नटकन्या शिवमाला ने तो मानो ससारिक वास पर चढना ड़ पारलौकिक दिव्य वास पर चढने का अभ्यास शुरू किया था । दीक्षा-कार्य के अनन्तर मुनिश्री ने सभी शिष्यो सहित ुरी से अन्यत्र विहार कर दिया । राजर्षि चन्द्र इत्यादि

नव मुनि भी उनके साथ थे। गुणशेखर-मणिशेखर उन्हे दूर तक पहुँचाने गये। राजर्षि चन्द्र ने धर्म-शिक्षा देकर और समझा-बुझा कर पुत्रो को विदा किया।

गुरु के सान्निध्य मे रहकर राजर्षि चन्द्र आदि ने ज्ञानाभ्यास, व्रत-तप, ध्यान आदि की कठिन साधना प्रारम्भ कर दी। धीरे-धीरे वे अपने निबद्ध कर्मों का क्षय करने लगे। राजर्षि चन्द्र निरतिचारपूर्वक चारित्र का पालन करते थे। उग्र तपश्चर्या द्वारा राजर्षि क्षपक श्रेणी पर चढने लगे। मोह को भी वे पराजित कर चुके और अन्त मे चारो घनघाती कर्मों का क्षय करके उन्होने केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया। केवल दर्शन व ज्ञान के सूर्योदय से लोकालोक प्रकाशित हो गये और उनकी समस्त भ्रान्ति मिट गई।

देवताओ ने केवली मुनि चन्द्र का केवल-ज्ञानोत्सव मनाया। स्वर्ण-कमल पर शोभित होकर केवली मुनि चन्द्र ने देव-मानव दोनो को धर्मोपदेश दिया। देवताओ ने दुन्दुभिनाद करके हर्ष प्रकट किया। इसके बाद मुनिवर चन्द्र विहार करके सिद्धाचल पर्वत पर पहुँचे और वहाँ सलेखना व्रत आदि करके शरीर त्याग कर मोक्ष पद प्राप्त किया।

सात सौ साध्वियो, साध्वी शिवमाला, मुनि शिवकुमार, मुनि सुमति आदि ने चारित्र पालन द्वारा देवलोक प्राप्त किया। साध्वी गुणावली और साध्वी प्रेमलालच्छी ने भी उग्र तपश्चर्या द्वारा देवगति प्राप्त की। ये सब मुनि व साध्वियां महा विदेह क्षेत्र मे पुन जन्म लेकर सिद्ध पद प्राप्त करेंगे।



उपयोगी साहित्य

- □ जैन कथामाला [भाग १ से ३८]
  जैन इतिहास, रामायण, पुराण, आगम आदि की सरस, प्रेरणाप्रद एवं ज्ञानवर्धक... कारी रोचक कथाओं का सुन्दर प्रवाहपूर्ण भाषा में आलेखन।
  ३८ भाग का पूरा सेट — १०।७५

उपन्यास

- □ पिंजरे का पंछी (द्वितीय संस्करण) — ५)
- □ छाया — ५)
- □ तलाश — ३)
- □ अग्निपथ — ५)

प्रवचन

- □ साधना के सूत्र — १०)
- □ पर्युषण पर्व-प्रवचन — ५)
- □ सुगम साहित्यमाला [१ से १२] — ६)
- □ अर्चना और आलोक — ५)
- □ अर्चना के फूल — ५)
- □ महामन्त्र नवकार —)७५

शीघ्र प्रकाश्य

- ☐ आन पर बलिदान (उपन्यास)
- ☐ अहिंसा की विजय ,,
- ☐ जैन कथामाला भाग ३९ से ४१

(जैन महाभारत की कहानियाँ)

सम्पर्क करें :

मुनिश्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन

पीपलिया बाजार, ब्यावर

☐☐